





# कल्याण

ॐ  
परमधाम  
सत्यलोक  
(ब्रह्मलोक)  
तपलोक  
जनलोक  
महर्लोक  
स्वलोक  
भुवर्लोक  
भूलोक  
अतल  
वितल  
सुतल  
तलातल  
महातल  
रसातल  
पाताल



ॐ  
परमधाम  
सत्यलोक  
(ब्रह्मलोक)  
तपलोक  
जनलोक  
महर्लोक  
स्वलोक  
भुवर्लोक  
भूलोक  
अतल  
वितल  
सुतल  
तलातल  
महातल  
रसातल  
पाताल

वर्ष ४३

परलोक और पुनर्जन्माइ

संख्या १

१९५७



दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।  
 उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥  
 साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।  
 हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥  
 हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥  
 जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा ॥  
 जयति शिवा-शिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ॥  
 जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥  
 रघुतति राघव राजाराम । पतितपावन सीताराम ॥

[ संस्करण १,६०,००० ]

## जीवनका फल

सियाराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है ।  
 श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिँएँ पुनि रामहि को थलु है ॥  
 मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों रामहि को बलु है ।  
 सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है ॥

—तुलसीदासजी

वार्षिक मूल्य  
 भारतमें रु. १.००  
 विदेशमें रु. १३.३५  
 ( १५ शिल्लिंग )

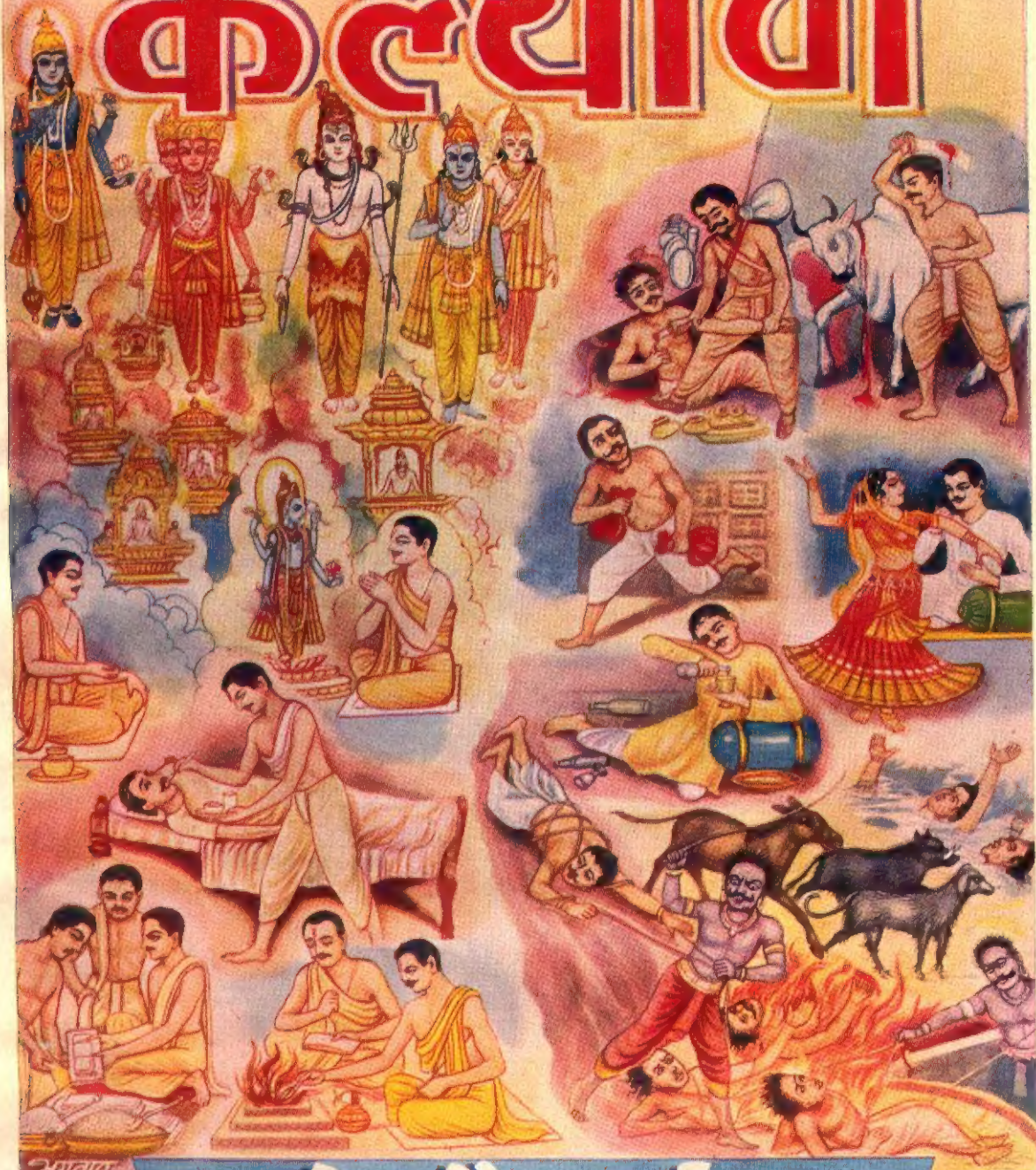
जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥  
 जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥  
 जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य  
 रु. १.००  
 विदेशमें १३.३५  
 ( १५ शिल्लिंग )

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री  
 मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर



# कल्याण



भगवान्

वर्ष ४३

परलोक और पुनर्जन्म

संख्या १







## ‘कल्याण’के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

( १ ) जगतमें जितना-जितना भौतिकवाद और भोगवादका प्रसार-प्रचार हो रहा है, उतना ही उतना ही भगवान्, धर्म, परलोक, पुनर्जन्म और दैवी सम्पदामें विश्वास घट रहा है और उसी अनुपातमें कामोपभोगमयी दम्भ, दर्प, अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, असत्य, द्वेष, वैर, हिंसा, अशान्ति, विषाद, भय, स्वेच्छाचार, भ्रष्टाचार और अत्याचाररूपिणी आसुरीसम्पदाका विस्तार हो रहा है एवं बुद्धिके तमसाच्छन्न होनेके कारण इसीमें मनुष्य प्रगति, उन्नति, विकास, अभ्युदय, सुख आदिकी मिथ्या कल्पना करके मिथ्या सुखकी आशा-वृष्णासे जला जा रहा है। मानव-जीवनका उद्देश्य ‘भगवत्प्राप्ति’ या ‘आत्मसाक्षात्कार’ है—इसको वह प्रायः भूल-सा गया है। शिक्षा, सेवा, समृद्धि तथा बाह्य त्यागके और राजनीति, समाजसुधार, धर्म तथा अध्यात्मके स्थल—आदि सभी क्षेत्रोंमें न्यूनाधिक रूपसे प्रायः भोगोन्मुखी विनाशी प्रवृत्ति चल रही है। इसके फलस्वरूप विनाश, दुःख, पतन आदि भी बढ़ते जा रहे हैं। पता नहीं, क्या परिणाम होगा। इस परिस्थितिमें भगवत्प्रेरणावश इस ‘परलोक और पुनर्जन्माङ्क’का प्रकाशन इसीलिये किया जा रहा है कि किसी अंशमें पतन और विनाशकी ओर जानेवाले प्रबल प्रवाहमें कहीं कुछ रुकावट हो। इस अङ्कमें ऐसी ही सामग्री संग्रह करनेका प्रयास किया गया है। इसमें गहन दार्शनिक विषय भी हैं और सरल सहज उद्बोधक प्रसङ्ग भी हैं। घटनाएँ भी दी गयी हैं। चित्र भी हैं। इससे यह विद्वान्, अविद्वान् सभीके लिये उपयोगी है। हमारा उद्देश्य तो केवल ‘भगवत्प्रीति’ और ‘भगवत्सेवा’ ही है। कुछ न भी होगा तो भगवान् तो अपनी वस्तुको स्वीकार कर ही चुके हैं। यही परम लाभ है।

( २ ) इस विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठकी पाठ्य-सामग्री है। सूची आदि अलग हैं। तिरंगे, इकरंगे, बहुत-से चित्र भी हैं। अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थिति-वश नहीं दिये जा सके हैं। पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं। चित्र बहुत समीप-समीप न रहें, इसलिये उनके कथा-प्रसङ्गोंके साथ न दिये जाकर प्रायः इधर-उधर लगाये गये हैं। पाठक महोदय क्षमा करें।

( ३ ) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदि सभी प्रकारका खर्च गतवर्षकी अपेक्षा भी बहुत अधिक बढ़ जानेसे ‘कल्याण’में घाटा लग रहा है। नौ रुपये मूल्यमें घाटेकी पूर्ति नहीं हो रही है। पर अभी वही मूल्य रक्ता गया है। इस स्थितिमें हम अपने ग्राहकोंसे इस बार इतना विशेषरूपसे अनुरोध करते हैं कि वे अपना पवित्र कर्तव्य समझकर ‘कल्याण’के अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेका प्रयत्न करें।

( ४ ) कई कारणोंसे इस बार भी विशेषाङ्क बहुत देरसे जा रहा है। गत बारहवाँ अङ्क भी विलम्बसे गया है। परिस्थितिसे विवश होनेके कारण ही ऐसा करना पड़ा। ग्राहक महानुभावोंको बार-बार पत्र लिखने पड़े। हमें इस बातका बड़ा खेद है। प्रेमी ग्राहक महोदय कृपया क्षमा करें।

( ५ ) ‘कल्याण’का विशेषाङ्क तो निकल गया है। पर इस समय देशमें चारों ओर जैसी



अशान्ति, अव्यवस्था, उच्छृङ्खलता, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदिका विस्तार हो रहा है, उसे देखते कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण' का प्रकाशन कब तक हो सकेगा या किस रूप में होगा। अतएव ग्राहकों को यह मानकर संतोष करना चाहिये कि उनके भेजे हुए नौ रुपये के पूरे मूल्य का उन्हें यह विशेषाङ्क मिल गया है। अगले अङ्क भेजे जा सके तो अवश्य जायेंगे, नहीं तो उनके लिये मन में शोभ न करें—परिस्थिति वश ही ऐसी प्रार्थना करनी पड़ रही है।

( ६ ) जिन सज्जनों के रुपये मनीआर्डर द्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जाने के बाद शेष ग्राहकों के नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनीआर्डर का कार्ड तुरंत लिख दें ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण' को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

( ७ ) मनीआर्डर रूप में और वी० पी० भेजने के लिये लिखे जाने वाले पत्र में स्पष्ट रूप से अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नये ग्राहक बनते हों तो 'नया ग्राहक' लिखने की कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर 'कल्याण' के नाम भेजें। उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

( ८ ) ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखने से आपका नाम नये ग्राहकों में दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'परलोक-पुनर्जन्माङ्क' नयी ग्राहक-संख्या से पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्या से वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डर द्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचने के पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियों में आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनों को 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजने की कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्न से आपका 'कल्याण' नुकसान से बचेगा और आप 'कल्याण' के प्रचार में सहायक बनेंगे। आपके 'विशेषाङ्क' के लिफाफे पर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानी से नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।

( ९ ) 'परलोक-पुनर्जन्माङ्क' सब ग्राहकों के पास रजिस्टर्ड-पोस्ट से जायगा। हम लोग जल्दी से-जल्दी भेजने की चेष्टा करेंगे, तो भी सब अङ्कों के जाने में लगभग तीन सप्ताह तो लग ही सकते हैं। इसलिये ग्राहक महोदयों की सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्या के क्रमानुसार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकों को हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

( १० ) 'कल्याण'-व्यवस्था-विभाग, 'कल्याण'-सम्पादन-विभाग, 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी); और 'साधक-संघ' के नाम गीताप्रेस के पते पर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)—इस प्रकार लिखना चाहिये।

( ११ ) सजिल्द अङ्क भी देर से ही जा सकेंगे। ग्राहक महोदय क्षमा करें।



श्रीहरि:

## परलोक और पुनर्जन्माङ्ककी विषय-सूची

विषय

पृष्ठ-संख्या

विषय

पृष्ठ-संख्या

१-सर्वप्रकाशक ज्योतिर्मय भगवान् [ कविता ]	क	११-परलोक और पुनर्जन्मका सत्य सिद्धान्त	
२-जन्म-मरणरूप संसारसे छूटकर भगवान्के परमपदको कौन प्राप्त होता है ? [ संकलित ]	ख	( परमपूज्य गुरुजी—श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर )	१९
३-अमृतलोक [ कविता ] ( पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शाली, 'राम' साहित्याचार्य )	ग	१२-ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके परलोक तथा पुनर्जन्म-सम्बन्धी विचार ( पुराने लेखोंसे संकलित )	२१
४-आत्माकी अमरता ( अनन्तश्रीविभूषित श्रीभृंगेरीमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवविद्यातीर्थ स्वामीजी महाराज )	घ	१३-अन्तर्के भावानुसार गति [ कविता ]	२४
५-जीवनका सनातन प्रश्न ( अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद श्रीद्वारकाधारादापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवसच्चिदानन्द-तीर्थ स्वामीजी महाराज )	१	१४-वेदमें मृतात्माकी अष्टविध दशा ( वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर पूज्य स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज )	२५
६-मानव-जीवनका उद्देश्य ( पू० अनन्त-श्रीविभूषित श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेव-तीर्थजी महाराज )	२	१५-पुनर्जन्मके सिद्धान्त ( पूज्यपाद श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज श्रीपीताम्बरापीठ )	३४
७-जीवन और मृत्युका रहस्य ( अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज )	३	१६-कौन स्वधर्म-भ्रष्ट कैसे प्रेत होते हैं ? [ संकलित ] ( मनुस्मृति १२।७१-७२ )	३६
८-पुनर्जन्मकी दृष्टिसे मानवका कर्तव्य ( अनन्तश्री-विभूषित श्रीकांचीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीजी महाराज )	४	१७-द्वन्द्वमयी सृष्टि ( श्रीस्वामीजी श्रीप्रेमानन्दतीर्थजी महाराज; प्रेषक—श्री-ओङ्कारनाथजी मुट्टू )	३७
९-भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त ( अनन्तश्रीविभूषित निखिलमहीमण्डलैकदेशिक सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज )	५	१८-पागलकी झोली [ परमपद ] ( महात्मा अनन्तश्रीविभूषित ठाकुर श्रीसीतारामदास ओङ्कारनाथ महाराज )	३८
१०-मृत्यु-मीमांसा ( अनन्तश्रीविभूषित आचार्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वैकटाचार्यजी महाराज तर्कशिरोमणि )	६	१९-वैकुण्ठ प्राप्त कते [ कविता ]	४८
	७	२०-मृत्युके समय भगवन्नाम और उसका फल ( महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजना-नन्दजी महाराज )	४९
	८	२१-मोक्ष-सोपान (अनन्तश्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज )	५१
	९	२२-तीर्थंकर और सिद्ध ( आचार्य श्रीतुलसीजी )	५५
	१०	२३-पूर्वजन्म और भावसिद्धि ( आचार्य श्री-प्राणकिशोर गोस्वामी महाराज )	५७
	११	२४-बीज और जीव ( अनन्तश्री स्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज )	६३
	१२	२५-पुनर्जन्मका मौलिक आधार ( स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी )	६६
	१४	२६-पुनर्जन्म—अनुमान, अनुभव और शास्त्रसिद्धि ( आचार्य श्रीविनोबाजी )	६८



- २७-परलोक और पुनर्जन्म ( जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीरामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रत्नाचार्यजी महाराज, पंढरपुर ) ... ७०
- २८-मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति ( आचार्य श्रीविठ्ठलेशजी महाराज ) ... ७८
- २९-जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, कैवल्य और पूर्णत्व ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट० ) ... ८०-८५
- ( १ ) जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति ... ८०
- ( २ ) कैवल्यके विभिन्न अर्थ ... ८३
- ( ३ ) आगमोंके अनुसार पूर्णत्वकी प्राप्ति ... ८४
- ३०-प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग प्राप्त करो [ कविता ] ... ८५
- ३१-मृत्यु तथा पुनर्जन्म [ श्रीअरविन्दके कुछ पत्र ] ( श्रीअरविन्द, भाषान्तरकार श्रीमन्नन्दन, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी ) ... ८६
- ३२-भक्ति न करनेपर दूसरे जन्ममें पराये बौल बनोगे [ संकलित कविता ] ( श्रीसूरदासजी ) ... ८९
- ३३-पुनर्जन्म-सिद्धान्त ( स्वामी श्रीअसङ्गानन्दजी, रामकृष्णमिशन, बेलूरमठ, हवड़ा ) ... ९०
- ३४-जन्मान्तर-रहस्य [ संकलित गद्य ] ( लोकमान्य तिलक ) ... ९३
- ३५-मृत्यु-विवेचन ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट० ) ... ९४-९७
- ( १ ) मृत्यु-विज्ञान ... ९४
- ( २ ) मृत्युकालीन सत्-चिन्तन ... ९५
- ( ३ ) कालभेदसे मृत्युकी प्रशंसा ... ९५
- ( ४ ) मृत्यु-राज्यका विस्तार ... ९६
- ( ५ ) समष्टि मृत्यु और व्यष्टि मृत्यु ... ९६
- ३६-गति-विज्ञान और समुच्चय-रहस्य ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट० ) ... ९७
- ३७-प्रभुके धाम पहुँचकर नहीं लौटते [ कविता ] ... ९८
- ३८-मृत्युविज्ञान ( वेदतत्त्वान्वेषक श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव' ) ... ९९
- ३९-मृत्यु-महोत्सव ( प्रो० श्रीशिवानन्दजी एम० ए० ) ... १०२
- ४०-अवसर बीतनेपर पछतानेसे क्या लाभ ? [ संकलित कविता ] ( श्रीतुलसीदासजी ) ... १०५
- ४१-मृत्युपर कुछ विचार ( डा० श्रीसुदर्शन-सिंहजी ) ... १०६-११४
- ( १ ) अन्तिम भावके अनुसार गति ... १०६
- ( २ ) आत्मत्याग, आत्महत्या, स्वेच्छामृत्यु ... १०६
- ( ३ ) असामान्य जन्म एवं मृत्यु ... १०९
- ( ४ ) परेच्छाभोग एवं अकालमृत्यु ... १११
- ४२-प्रभु-कृपा बिना जलन नहीं बुझती [ संकलित कविता ] ( श्रीसूरदासजी ) ... ११४
- ४३-मृत्युकी विभीषिका और उसका निराकरण ( श्रीरामलालजी ) ... ११५
- ४४-जन्म और मृत्युका रहस्य ( श्रीवीरेन्द्रस्वरूपजी अग्रवाल ) ... ११९
- ४५-आयुको काटनेवाले छः दोष ( श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन ) ... १२१
- ४६-मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर [ संकलित गद्य ] ( महामना मदनमोहन मालवीय ) ... १२३
- ४७-मृत्यु और व्यक्तित्व ( प्रो० इन्दुप्रभा आश्रय एम० ए०, एम० एड्० ) ... १२४
- ४८-जन्म-मरणरूपी दुःख-सागरसे तरनेका उपाय [ संकलित गद्य ] ( महर्षि दयानन्द सरस्वती ) ... १२५
- ४९-देवयान और पितृयान, पुनर्जन्म तथा मुक्ति ( श्रीसुशान्तजी ब्रह्मचारी ) ... १२६
- ५०-देवयान या अर्चिमार्ग—उत्तरायण शुक्लपक्ष और दिवामार्गसे मृत्यु ( श्रीस्वामी पराङ्मुखाचार्यजी महाराज ) ... १२८
- ५१-आयुष्कालका रहस्य या आयुकी अभिवृद्धि ( डा० श्रीत्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेठ ) ... १३०
- ५२-जीवनका एकमात्र सत्य [ संकलित गद्य ] ( श्रीअरविन्द ) ... १३२
- ५३-देह-विवेचन ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट० ) ... १३३-१४१
- ( १ ) देहस्वरूपका विचार ... १३३
- ( २ ) आतिवाहिक देह ... १३६
- ( ३ ) देहसिद्धि ... १३७
- ५४-जन्म-मरणके चक्रसे छुटकारा [ संकलित गद्य ] ( स्वामी विवेकानन्द ) ... १४१



५५-कर्मयोनि और भोगयोनि ( ठाकुर श्रीमुदर्शनसिंहजी ) ...	१४२
५६-कायसिद्धिके प्रकार ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्० ) ...	१४४
५७-अनर्थका साधन अर्थ [ संकलित ] ( महर्षि कश्यप, पद्मपुराण, सृष्टि० १९। २५०-५३ ) ...	१५१
५८-पडप्चा-रहस्य देह-विचार ( श्रीकुलमार्तण्ड राजगुरु पण्डित श्रीयोगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, विद्याभूषण, साहित्यरत्न ) ...	१५२
५९-प्रभु-पदमें स्थान प्राप्त हो [ कविता ] ...	१५९
६०-परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा ( पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति ) ...	१६०, ६६८
६१-पुनर्जन्म ( आचार्य श्रीमुन्दारामजी शर्मा 'सोम' एम्० ए० ) ...	१६७
६२-जन्मान्तर-रहस्य ( पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र का० व्या० सा० स्मृ० तीर्थ ) ...	१७३
६३-पुनर्जन्म ( श्रीशिखरकुमार सेन, एम्० ए०, बी० एल्०, सम्पादक 'द्रुथ' ) ...	१७५
६४-परलोक-तत्त्व ( श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम्० ए० ) ...	१७८
६५-किस पुण्यसे कौनसे भेष्ट फल या सुखकी प्राप्ति होती है [ संकलित ] ( गरुडपुराण २। १४। १८ ) ...	१७९
६६-परलोक, पुनर्जन्म और मोक्षतत्त्व ( डा० श्रीनीरजाकान्त चौधरी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी० ) ...	१८०
६७-पुनर्जन्मका प्रयोजन ( श्रीअनिलवरण राय )	१८९
६८-हिंदुओंका पुनर्जन्ममें विश्वास और उसके लौकिक लाभ ( डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभास्कर, दर्शनकेसरी ) ...	१९२
६९-पुनर्जन्म—एक दार्शनिक विवेचन ( साहित्य-महोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' शास्त्री, एम्० ए०, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, सांख्यदर्शन-योगदर्शनाचार्य, वेदान्ताचार्य,	

साहित्यरत्न, साहित्यालंकार ) ...	१९४, ६७६
७०-जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य ( श्रीश्रीराममाधव चिंगले, एम्० ए० ) ...	२००, ६८२
७१-लोक-परलोकमें भयदायक कर्म न करे [ संकलित गद्य ] ( महर्षि भृगु ) ...	२०६
७२-पुनर्जन्मके आधार ( श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए० ) ...	२०७
७३-जन्म-मरणके भयानक दुःखसे छूटनेका उपाय [ कविता ] ...	२०९
७४-अनेक संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति ( श्रीरामलालजी ) ...	२१०
७५-नारायणके भजनमें मन-इन्द्रियोंकी सफलता [ संकलित गद्य ] ( सनक मुनि ) ...	२१२
७६-परलोक और पुनर्जन्म ( पं० श्रीसभापतिजी मिश्र, बी० ए०, साहित्यरत्न, विद्यावाचस्पति ) ...	२१३
७७-काल-विवेचन ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०-डी०, लिट्० ) ...	२१५—२१९
( १ ) काल-संकर्षण ...	२१५
( २ ) कालका आवर्तन ...	२१६
( ३ ) काल और महाकालका रहस्य ...	२१७
७८-पापका फल अकेला ही भोगता है [ संकलित गद्य ] ( महर्षि उत्तङ्ग ) ...	२१९
७९-मनोविज्ञान और पुनर्जन्म ( श्रीगौरी-शंकरजी द्विवेदी ) ...	२२०
८०-निष्काम भावसे नारायणकी पूजा करो [ संकलित गद्य ] ( श्रुति जानन्ति ) ...	२२४
८१-कालातीत भगवान् महाकाल ( श्रीजगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी ) ...	२२५
८२-काल-विज्ञान ( श्रीजयरामजी वशिष्ठ )	२२८—२३७
( १ ) कालतत्त्व ...	२२८
( २ ) काल-विभाजन और कालचक्र ...	२३१
( ३ ) कालचक्रसे निवृत्ति ...	२३३
८३-कर्मका श्रेणी-विभाग और क्लिष्ट-अक्लिष्ट कर्म ( महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्० ) ...	२३७—२४२



- ( १ ) कर्मका श्रेणी-विभाग ... २३७
- ( २ ) कौन कर्मफल-प्रदानके समय नियामक है ? ... २३९
- ( ३ ) क्लिष्ट और अक्लिष्ट कर्म ... २४०
- ८४-पुनर्जन्म, कयामत और मुक्ति ( 'श्रीमण्डन मिश्र' ) ... २४२-२४३
- ( १ ) कर्मविपाक और विकासवाद ... २४२
- ( २ ) कयामतका दिन ... २४३
- ( ३ ) मुक्तिका द्वार सबके लिये खुला ... २४३
- ८५-कर्मनुसार देहप्राप्ति [ संकलित गद्य ] ( महर्षि व्यास ) ... २४३
- ८६-कर्मसम्बन्धी विचार ( ठाकुर श्रीसुदर्शन-सिंहजी ) ... २४४-२५०
- ( १ ) कर्मभोग एवं कर्मप्रायश्चित्त ... २४४
- ( २ ) कर्मफल-पद्धति ... २४७
- ८७-कर्मफलभोगमें परतन्त्रता [ संकलित गद्य ] ( महर्षि व्यास ) ... २५०
- ८८-कर्मविपाक-मीमांसा ( डा० श्रीशान्ति-प्रकाशजी आत्रेय, एम० ए०, पी-एच० डी० ) ... २५१
- ८९-भगवद्भक्ति और पुनर्जन्म ( श्रीके० वा० भातखंडे, बी० ए०, बी० टी० ) ... २५४
- ९०-भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता ( आचार्य श्रीशुकरजी उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय ) २५६
- ९१-भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता ( श्रीजय-नारायणलालजी ) ... २५४
- ९२-प्रियतम-मुख मुखभरा [ कविता ] ... २५७
- ९३-भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता ( पं० श्रीउमाशंकर-जी अग्निहोत्री शास्त्री, मानसमहारथी, भागवताचार्य ) ... २६८
- ९४-मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व ( श्रीश्री-कान्तशरणजी, समस्त तुलसीसाहित्यके भाष्य एवं तिलककार ) ... २६९
- ९५-मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व ( याज्ञिक-सम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य ) ... २७१
- ९६-वेदोंमें पुनर्जन्म और मोक्षका सैद्धान्तिक विवेचन ( श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा ) ... २७५
- ९७-परलोक और पुनर्जन्मका वैदिक रहस्य ( कविरत्न पं० श्रीदेवीप्रसादजी शास्त्री 'पाराशर' ) ... २७८
- ९८-अमृतत्व कौन प्राप्त करता है ? [ संकलित ] ( पद्मपुराण, सृष्टि०, अ० १९ ) ... २७९
- ९९-ब्रह्मद्रवमयी गङ्गा ( पं० श्रीवलदेवजी उपाध्याय, एम० ए०, डी० लिट्० संचालक, अनुसंधान-संस्थान, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय ) ... २८०
- १००-गीतामें भगवान्के स्वरूप, परलोक, पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन ... २८२
- १०१-वैदिक वाङ्मयमें पुनर्जन्म ( श्रीरामनाथजी 'सुमन' ) ... २९१
- १०२-पुनर्जन्म और परलोकसाधक तर्क ( श्रीब्रज-वल्लभशरणजी, वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ ) ... २९३
- १०३-जन्मान्तर-तथ्य ( श्रीशैलेशजी ब्रह्मचारी ) ... २९५
- १०४-आध्यात्मिक पुनर्जन्म ( श्रीमण्डन मिश्र ) ... २९७
- १०५-पुनर्जन्म ( वैद्य श्रीकन्हैयालालजी मेड़ा, व्याकरणायुर्वेदाचार्य ) ... २९७
- १०६-पूर्वजन्म-सिद्धान्तकी विश्वव्यापी मान्यता, सत्यता और उसके प्रसारका उद्गम ( श्रीवल्लभदासजी विज्ञानी 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार ) ३०१
- १०७-मानव मोहवश अनर्थ-संचय कर रहा है [ कविता ] ... ३०२
- १०८-पुनर्जन्मका आधार ( प्रो० श्रीहेमचन्द्रनाथ बनर्जी ) ३०३
- १०९-घोर यमयातनासे राम ही बचाते हैं [ संकलित कविता ] ( कवितावली ) ... ३०६
- ११०-कृतकर्म और पुनर्जन्म ( श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी एम० ए० ( द्वय ), साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, साहित्यसुधाकर ) ... ३०७
- १११-इहलोककी चिन्ता नहीं; परलोककी चिन्ता [ संकलित गद्य ] ( महात्मा गांधी ) ... ३०८
- ११२-आत्माकी सत्ता एवं नित्यता पुनर्जन्मकी साधक [ 'न्यायदर्शन'के आधारपर ] ( श्री-नारायणजी शर्मा, शास्त्री, 'राजीव', एम० ए०, 'प्रभाकर' ) ... ३०९
- ११३-जन्म-मरण-दुःखनाशके लिये ही आहार करे [ संकलित ] ( योगवासिष्ठ, नि० उ० २१।१० ) ... ३११
- ११४-दर्शन और परलोकवाद ( पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी ) ... ३१२
- ११५-पुनर्जन्म-निवारणका सुलभ उपाय—अर्चा-वतारके आलम्बनसे भगवदर्चा ( श्रीच० भास्कर रामकृष्णमाचार्यकुल ) ... ३१९
- ११६-आत्मज्ञानसे मुक्ति ( पं० श्रीभृगुनन्दनजी मिश्र ) ... ३२२



- ११७-प्राप्ति स्थिति एवं उसकी प्राप्ति के साधन  
( श्रीधामनिखरूपकी गुप्त ) ... ३२४
- ११८-दुष्कर्मका परिणाम और प्रायश्चित्त  
( श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री,  
धर्माधिकारी ) ... ३२७
- ११९-सात दिनका मेहमान [ कहानी ] ( पं०  
भीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्-  
विद्यालंकार' ) ... ३२८
- १२०-आ दिन मन पंखी उड़ि जैहैं ! ( श्री-  
कृष्णदत्तजी भट्ट ) ... ३३१
- १२१-जीवका गर्भवास और देह-रचना ( वैद्य  
पं० भीमन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल'  
एम० ए०, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्या-  
युर्वेदरत्न ) ... ३३६
- १२२-जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता [ पुनर्जन्म ]  
( गुरु श्रीरामप्यारजी अग्निहोत्री ) ... ३४०
- १२३-मानसमें पुनर्जन्म एवं परलोक-प्रत्यय ( डा०  
श्रीनिभुवननाथजी चौबे, एम० ए०,  
पी-एच० डी० ) ... ३४२
- १२४-भगवान्से हीन जीवन जल जाय [ संकलित  
कविता ] ( श्रीतुलसीदासजी ) ... ३४४
- १२५-महाकवि कालिदासके काव्योंमें जन्मान्तर-  
दर्शन ( पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा ) ... ३४५
- १२६-आद-तत्त्व-प्रश्नोत्तरी ( श्रीराजेन्द्रकुमारजी  
षवन् ) ... ३४६
- १२७-आद-तर्पणका रहस्य तथा आवश्यकता एवं  
आद-तर्पणकी वैज्ञानिकता ( श्रीबल्लभदासजी  
यिल्लानी 'त्रजेश' ) ... ३४७
- १२८-मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा [ कविता ] ... ३४९
- १२९-आद और परलोक ( पं० श्रीजानकीनाथजी  
शर्मा ) ... ३५०
- १३०-आदसे जातिस्मरता और मोक्ष—एक  
विशेष उदाहरण ( पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा ) ... ३५१
- १३१-तर्पण और आद ( श्रीमूलनारायणजी  
मालवीय ) ... ३५३
- १३२-आयुर्वेदमें पुनर्भव ( डा० पं० श्रीवासुदेवजी  
शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदबृहस्पति ) ... ३५५
- १३३-आयुर्वेद ( भारतीय वैद्यक-शास्त्र ) की  
दृष्टिसे देह-विवेचन और देह-निवृत्ति
- ( प्राध्यापक पं० काकुभाई दुर्गाशास्त्रर इवे  
'भानु', संस्कृत-साहित्य-व्याकरण-वेदान्त-  
ज्योतिष-आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत-काव्य-पुराण-  
कृत्यतीर्थ, जैनदर्शनशास्त्री, पालिविशारद,  
संस्कृत-साहित्य-धर्मशास्त्र-पुराण-आयुर्वेद  
उत्तमा ) ... ३५७
- १३४-प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे  
सम्बन्ध ( याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी  
शर्मा, गौड़, वेदाचार्य ) ... ३५९
- १३५-यमराजके कुत्ते [ श्री'मण्डन मिश्र' ] ( ऋग्वेद  
१०।१४।१०-१२ ) ... ३६१
- १३६-ज्योतिषमें पुनर्जन्म और परलोक ( राजज्योतिषी  
पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्योतिषाचार्य ) ... ३६२
- १३७-'कुलगौरव' और 'कुलकलङ्क' [ कविता ] ... ३६३
- १३८-जन्म-मृत्यु और ग्रह-विचार ( डॉ० श्री-  
नारायणदत्तजी श्रीमाली, एम० ए०, पी-एच०  
डी० ) ... ३६४
- १३९-भगवद्भक्तका महत्त्व [ संकलित ] ( देवी-  
भागवत, नवम स्कन्ध ) ... ३६५
- १४०-रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते  
( पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम० ए०, डी०  
लिट० ) ... ३६६
- १४१-धर्मकी महत्ता [ संकलित ] ... ३६६
- १४२-'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते'  
( श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ) ... ३६७
- १४३-विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते  
( श्रीरेवानन्दजी गौड़, एम० ए०, सा० रत्न,  
सा० व्या० आचार्य, काव्यतीर्थ आदि ) ... ३६८
- १४४-पुनर्जन्म न विद्यते ( श्रीलक्ष्मीनारायणसिंहजी ) ... ३७०
- १४५-जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है ( आचार्य  
श्रीबलरामजी शास्त्री, एम० ए०, साहित्य-  
रत्न ) ... ३७३
- १४६-श्रीभगवान्का दिव्यधाम एवं उसकी प्राप्ति  
( पण्डित श्रीओङ्कारदत्तजी शास्त्री ) ... ३७५
- १४७-परमधामका वर्णन ( स्वामी श्रीनिर्विकारानन्दजी  
सरस्वती ) ... ३७६
- १४८-भगवान् विष्णु ही दूबनेसे बचानेवाले जहाज  
हैं [ संकलित ] ... ३७८



- १४९-श्रीवैकुण्ठधाम और उसकी प्राप्ति ( राष्ट्रपति-  
पुरस्कृत डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्०  
ए०, पी-एच० डी० ) ... ३७९
- १५०-श्वेतद्वीप—महागोलोक ( महामहोपाध्याय पं०  
श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी०  
लिट्० ) ... ३८६
- १५१-दिव्य गोलोकधाम ( पं० श्रीशिवनाथजी  
दुबे ) ... ३८७
- १५२-साकेत—दिव्य अयोध्या ( मानसतत्त्वान्वेषी  
पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी ) ... ३८८
- १५३-नित्य कैलास ( पं० श्रीशिवनाथजी दुबे ) ... ३९५
- १५४-दिव्य देवीद्वीप ( पं० श्रीशिवनाथजी दुबे ) ... ३९६
- १५५-परमधामका चिन्तन ( श्रीरामलालजी ) ... ३९८
- १५६-यम और उनका लोक ( 'श्रीमण्डन मिश्र' ) ... ३९९
- १५७-यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा  
पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन [ नारदपुराण,  
पूर्व०, अध्याय ३१ ] ... ४००
- १५८-पापसे बचकर धर्म-सेवन करो [ संकलित  
गद्य ] ... ४०१
- १५९-पापी यमपुर कैसे जाता है ? ( पं०  
श्रीमन्मन्मथलालजी मिश्र, ज्योतिषाचार्य ) ... ४०२
- १६०-पापी तथा पुण्यात्माओंकी कर्मानुसार गति  
और यमलोकका वर्णन ... ४०४
- १६१-परलोक-यातना ( परमहंसजी महाराज,  
श्रीरामकुटिया, रेवदर ) ... ४१६
- १६२-यमराजकी दूतोंकी चेतावनी [ संकलित ]  
( स्कन्दपुराण, काशीखण्डसे ) ... ४१८
- १६३-यमराजके द्वारा अपने दूतोंको उपदेश तथा  
चेतावनी [ संकलित ] ( श्रीमद्भागवत  
स्क० ६, अध्याय १—३ ) ... ४१९
- १६४-प्रभु-पदकमल-रसका ग्रहण करनेवाला जन्म-  
मरणको नहीं प्राप्त होता [ संकलित ] ... ४२०
- १६५-प्रेत-योनि ( श्रीविश्वनाथजी झा, कविराज ) ... ४२१
- १६६-श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे प्रेतयोनिका कल्याण  
( डा० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, एम्०  
ए०, पी-एच० डी०, षड्भाचार्य ) ... ४२२
- १६७-श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे प्रेतत्व-मुक्ति  
( श्रीस्वामीजी श्रीजगन्नाथाचारीजी  
'प्राणाचार्य' ) ... ४२४
- १६८-वैष्णवकी महत्ता [ संकलित ] ( ब्रह्मवैवर्त०,  
ब्रह्म०, ११ । ३९, ४४ ) ... ४२९
- १६९-जातिस्मरता ( जातिस्मरणां किकरः पं०  
श्रीजानकीनाथजी शर्मा ) ... ४३०—४३८
- ( १ ) 'जातिस्मरता'—अर्थ, लक्षण, परिभाषा  
एवं संक्षिप्त परिचय ... ४३०
- ( २ ) जातिस्मरताके अनेकानेक साधन—उपाय ४३०
- ( ३ ) जातिस्मर-व्रत ... ४३२
- ( ४ ) जातिस्मर-तीर्थ ... ४३३
- ( ५ ) विश्वकी सर्वप्रथम जातिस्मर देवी पार्वती ४३५
- ( ६ ) भगवान् आद्यशंकराचार्य तथा  
वाचस्पति मिश्रादिकी दृष्टिमें  
जातिस्मरताका स्वरूप ... ४३७
- १७०-हिंदू-धर्म और पुनर्जन्म-सिद्धान्त  
( श्रीरामनाथजी 'सुमन' ) ... ४३८
- १७१-मरणोत्तर जीवनपर पाश्चात्य मनीषी  
( ब्रह्मचारी श्रीअमिताभजी ) ... ४४०
- १७२-पाश्चात्य विज्ञान और मृत्यु ( डॉ०  
श्रीभीमलालजी आश्रेय, एम्० ए०, डी०  
लिट्०, अवकाशप्राप्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष  
दर्शन, मनोविज्ञान और भारतीय धर्म तथा  
दर्शन-विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,  
वाराणसी ) ... ४४३
- १७३-परम मधुर श्रीराधेश्याम [ कविता ] ... ४४४
- १७४-वैष्णवाचार्योंका परलोक और पुनर्जन्म-  
सिद्धान्त ( श्रीरंगरामानुजाचार्य, व्याकरण-  
न्याय-वेदान्ताचार्य ) ... ४४५
- १७५-श्रीमद्वल्लभाचार्यजी और पारलौकिक भ्रम  
( श्रीमाधवजी गोस्वामी ) ... ४४७
- १७६-सबमें नित्य भगवान्को देखूँ [ कविता ] ... ४४८
- १७७-सिखगुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहद्वारा  
प्रस्तुत दशम ग्रन्थमें पुनर्जन्म-सिद्धान्त  
( प्रोफेसर श्रीलालमोहर उपाध्याय, एम्०  
ए०, 'हिंदी' रिसर्चस्कॉलर, पी-एच० डी० ) ... ४४९
- १७८-रामस्नेही-मतमें जीवात्माकी स्थिति एवं गति  
( श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री महाराज,  
श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य ) ... ४५०
- १७९-पुनर्जन्म और परलोक ( रामस्नेही-  
सम्प्रदायाचार्य प्रधानपीठाधीश्वर सिंघल  
श्रीश्रीभगवदासजी शास्त्री महाराज ) ... ४५४



१८०—विश्वमें पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी व्यापकता ( श्रीरामनाथजी 'सुमन' ) ...	४५५	१९९—जैनधर्ममें जीवोंका परलोक ( श्रीमिलापचंदजी कटारिया, जैनविद्या-भूषण ) ...	४८२
१८१—इस्लामधर्म और परलोक ( पं० श्रीशिवनाथजी दुबे ) ...	४५६	२००—मृतात्माओंको बुलानेवाले विश्वस्त पुरुष कौन-कौन हैं ? और मृतात्माओंको बुलानेकी विधि क्या है ? ...	४८४
१८२—भारतीय दर्शनमें आत्माके साधक तर्क ( मुनि श्रीनयमलजी ) [ प्रे०—श्रीकमलेशजी चतुर्वेदी ] ...	४५८	२०१—पुनर्जन्म [ मूल—लामा अनागरिक गोविन्दजी ] ( अनु०—श्रीश्यामसुन्दरजी त्रिपाठी ) ...	४८५
१८३—जैनधर्मका कर्मवाद ( पं० श्रीचैनसुखदासजी न्यायतीर्थ ) ...	४६०	२०२—जैसा बीज—वैसा फल [ कविता ] ...	४८८
१८४—सबको उनका हिस्सा देकर खाओ [ कविता ] ...	४६२	२०३—बौद्धमतानुसार परलोक, कर्मफल-भोग ( पं० श्रीछेदीजी 'साहित्यालंकार' ) ...	४८९
१८५—जैनधर्ममें आत्मा, पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्त ( श्रीकैलाशचन्द्रजी शास्त्री ) ...	४६३	२०४—मृतात्माओंका आवाहन, मेरे प्रयोग और अनुभव ( डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार ) ...	४९०
१८६—जैन-मतमें पुनर्जन्म तथा कर्म-सिद्धान्त ( डा० श्रीराजनारायणजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार ) ...	४६६	२०५—परलोक-विद्यामें संकट ( श्रीमोहनजी वाण्येय ) ...	४९४
१८७—अन्नदान न करनेके कारण ब्रह्मलोकमें जानेके बाद भी अपने भुद्रेका मांस खाना पड़ा [ संकलित ] ...	४६९	२०६—मृतात्माका आवाहन क्या सत्य है ? ...	४९५
१८८—मैथुनी, अमैथुनी सृष्टि ( मुनि श्रीसुमेरमलजी ) ...	४७०	२०७—परलोकगत आत्माओंसे सम्पर्क ( श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्० एस्-सी०, बी० एड० ) ...	४९६
१८९—पुद्गलवादका रहस्य ( मुनि श्रीबुद्धमल्लजी साहित्य-परामर्शक ) ...	४७१	२०८—अच्छी संतानके लिये क्या करे ? ...	४९७
१९०—मरनेके समय रोगी क्या करे ? ...	४७३	२०९—पुराणोंमें वर्णित पुनर्जन्मकी कुछ कथाएँ ( पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा ) ...	४९८-५०४
१९१—जैन-दर्शनमें जन्म और मृत्युकी प्रक्रिया ( मुनि श्रीरूपचन्द्रजी ) ...	४७४	( १ ) प्रह्लादजीका पूर्वजन्म ...	४९८
१९२—अन्तराल गति ( साच्ची श्रीमती कनकप्रभाजी ) ...	४७५	( २ ) देवर्षि नारदके पूर्वजन्म ...	४९८
१९३—मृत्युके बाद क्या किया जाय ? ...	४७६	( ३ ) जुआरीसे राजा बलि कैसे हुआ ? ...	४९९
१९४—पुनर्जन्म और मोक्ष ( मुनि श्रीशुभकरणजी ) ...	४७७	( ४ ) नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त ...	५००
१९५—जैन-दर्शनमें आत्माका स्वरूप ( श्रीचम्पालालजी सिंघई, एम्० ए०, शोध-स्नातक ) ...	४७८	( ५ ) कुब्जा पूर्वजन्ममें कौन थी ? ...	५००
१९६—जैन-वाङ्मयमें शरीर-वर्णन ( पं० श्रीलालचन्द्रजी नाहटा 'तरुण' ) ...	४७९	( ६ ) कालियनाग एवं काकमुशुण्डिके पूर्वजन्म ...	५०२
१९७—जैसी पूजा, वैसा फल [ कविता ] ...	४८१	( ७ ) पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ? ...	५०३
१९८—यद्यपि भोजनसे पाप-नाश [ कविता ] ...	४८१	२१०—बदला लेने या देनेवाले सात प्रकारके पुत्र ...	५०४
		२११—रामराज्यकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी एक घटना—कुत्तेका न्याय ( आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न ) ...	५०५
		२१२—उपबर्हणका पुनर्जीवन ( पं० श्रीशिवनाथजी दुबे ) ...	५०७



२१३-श्रीकृष्णके हो जानेपर सब बन्धन कट जाते हैं [ संकलित ] ( श्रीमद्भागवत १०।१४।३६ ) ...	५१०
२१४-श्रीचित्रगुप्तका प्राकट्य, पद तथा कार्य ( श्रीरामसेवकजी सबसेना, विशारद ) ...	५११
२१५-भगवान् श्रीव्यास और कीड़ेका संवाद ( श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी )	५१३-५१५
( १ ) जातिस्मर कीड़ा ...	५१३
( २ ) जातिस्मर जड़भरत ...	५१४
( ३ ) जातिस्मर शूद्र ...	५१४
( ४ ) जातिस्मर चार पक्षी ...	५१४
२१६-पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिंदुत्वका दीपस्तम्भ ( श्रीगुरुजी श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर ) [ प्रे०-श्री'माधव' ] ...	५१५
२१७-नित्य सुखमय परमधामकी प्राप्ति [ कविता ]	५१५
२१८-चौरासी लाख योनि और पुनर्जन्मसे बचनेका उपाय ( श्रीनारायणजी पुरुषोत्तम सांगाणी ) ...	५१६
२१९-पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और कुट्टी ( पं० श्रीसूरजचंदजी 'सत्यप्रेमी' डाँगीजी ) ...	५१८
२२०-आठ चिरंजीवी ( योगाम्यासी श्रीमदनमोहनजी वानप्रस्थी ) ...	५१९
२२१-गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध और गो-सेवासे प्रेतत्व-मुक्ति ( आचार्य श्रीगदाधर रामानुजम् 'फलाहारी' )	५२१-५२३
( १ ) श्रीमद्भगवद्गीता ...	५२१
( २ ) गङ्गास्नान ...	५२२
( ३ ) गायत्रीजप ...	५२२
( ४ ) गयाश्राद्ध ...	५२२
( ५ ) गोसेवा ...	५२३
२२२-परकाय-प्रवेश-सिद्धान्त, प्रक्रिया एवं प्रमाण ( श्रीदयामाफान्तजी द्विवेदी 'आनन्द', एम्० ए० [ हिंदी, संस्कृत ], बी० एड०, व्याकरणाचार्य ) ...	५२४
२२३-पुनर्जन्म और परकाया-प्रवेश	५२७-५३४
( १ ) श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न ...	५२७
१. चूडाला-वृत्तान्त ...	५२८
२. श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेश ...	५२८
३. लिङ्ग-शरीर जीवका प्रेमीके पास जाना-दो घटनाएँ ...	५२९
( २ ) भक्त श्रीरामशरणदासजी ...	५३०
४. जसवीरका वृत्तान्त	

( ३ ) श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार	
५. श्रीएल-पी, कैरेल महोदयकी देखी दो घटनाएँ ...	५३२
२२४-हृन्हा-मृत्यु ...	५३४-५३६
( १ ) मृत्यु-विजयिनी भक्तिमती देवी श्री-भिरावाँ बाईजी ( भक्त श्री-रामशरणदासजी ) ...	५३४
( २ ) मृत्युको दूर हटानेकी सत्य घटना ( पं० श्रीमुनि देवराजजी विद्यावाचस्पति ) ...	५३६
२२५-यमदूत-दर्शन ( प्रे०-भक्त श्रीरामशरणदासजी )	५३७
२२६-परलोक-पुनर्जन्म और शोधकार्य ...	५३८
२२७-उज्ज्वल भगवत्प्रेमकी प्राप्ति [ कविता ] ...	५३८
२२८-पुनर्जन्मकी विदेशी घटनाएँ ( प्रो० श्रीहिमेन्द्रनाथ बनर्जी ) ...	५३९-५५३
( १ ) क्यूबानिवासी महिलाकी घटना-राचाले ग्राण्ड ...	५३९
( २ ) स्विट्जरलैंडकी घटना-गत्रियल उराह्व ...	५३९
( ३ ) अमेरिकाकी घटना-रोजनबर्ग ...	५४०
( ४ ) इटलीकी घटना-डा० गैस्टोन उगूसियोनी ...	५४०
( ५ ) जापानकी घटना-कटसुगोरो ...	५४०
( ६ ) परिचित मार्गकी पुनर्यात्रा-एक फौजी सिपाही ...	५४१
( ७ ) फ्रांसकी घटना-कुमारी थिरीज गे ...	५४१
( ८ ) थाईलैंडकी एक लड़कीकी घटना ...	५४२
( ९ ) थाईलैंडमें पुनर्जन्मकी घटना-साजेंट थियन ...	५४२
( १० ) आस्ट्रिया देशका प्रमाण-एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना ...	५४३
( ११ ) ब्राजीलके पौलो लोरेन्ज ( Paulo Loreng ) का प्रमाण ...	५४३
( १२ ) हंगलैंडकी एक लड़कीकी घटना ...	५४४
( १३ ) कनाडाकी एक महिला ...	५४५
( १४ ) इटलीकी एक लड़की ...	५४५
( १५ ) आस्ट्रेलियाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी घटना-श्रीअर्नेस्ट ब्रिगा ...	५४६



( १६ ) मा राजासुथाजाने	...	५४६
( १७ ) रूबीका मामला	...	५४६
( १८ ) कंकाकी एक और घटना—जयसेना	...	५४७
( १९ ) क्यूबाका एक लड़का	...	५४८
( २० ) जैनीफर और गेलियन	...	५४८
( २१ ) कुरान और पुनर्जन्म—टर्कीकी एक घटना—( इस्माइल )	...	५५०
( २२ ) पिछले जन्मके हत्यारेका नाम बतानेवाला बालक नेकाती उनल-कास्किरोन	...	५५१
( २३ ) लूना मार्कोनी	...	५५२
( २४ ) डूज-परिवार	...	५५३
( २५ ) अहमद एलावर	...	५५३
२२९—पुनर्जन्मकी घटनाएँ ( प्रेषक—प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी )	...	५५४—५५९
( १ ) प्रकाशकी घटना	...	५५४
( २ ) एक विचित्र घटना—मुनेश	...	५५४
( ३ ) मंजुकी घटना	...	५५६
( ४ ) विचित्र मिलन—राजल	...	५५६
( ५ ) स्वर्णलता	...	५५७
( ६ ) कुष्णकिशोर	...	५५८
( ७ ) गोपाल	...	५५८
२३०—जीवनभर हृदयसे भगवान्का स्मरण करो [ कविता ]	...	५५९
२३१—पुनर्जन्म तथा मृत्यु एवं पुनर्जन्मके समयान्तरकी कुछ घटनाएँ ( आचार्य श्रीवल्लभरामजी शास्त्री, एम० ए० [ हिंदी, संस्कृत ], साहित्यरत्न )	...	५६०—५६३
( १ ) बालक मुनीलदत्त	...	५६०
( २ ) बालक करीम उल्लाह	...	५६१
( ३ ) सादे तेरह महीने बाद पुनर्जन्म	...	५६१
( ४ ) बालक अवधेश	...	५६२
( ५ ) बालक लवकुश	...	५६३
२३२—प्रारब्ध नहीं बदल सकता	...	५६३
२३३—पुनर्जन्मकी कुछ घटनाएँ	...	५६४—५६८
( १ ) होटलवालेका पुनर्जन्म ( प्रे०—श्रीअजयकुमार बजाज )	...	५६४
( २ ) बालक सत्यनारायण ( प्रे०—श्रीधनश्यामलालजी गुप्त )	...	५६५
( ३ ) कम्पाउण्डरकी लड़की ( प्रे०—श्रीब्रजराज-सिंहजी )	...	५६६
( ४ ) श्रीअवधेशप्रसाद मिश्र ( प्रे० श्री-कन्हैयालाल मिश्र ( ए० आर० के० )	...	५६७

२३४—नौ वर्षतक प्रेत रहनेके बाद पुनर्जन्म तथा अन्य घटनाएँ ( भक्त श्रीराम-शरणदासदासजी )	...	५६८—५७२
( १ ) लड़का वीरसिंह	...	५६८
( २ ) दाह-संस्कारमें झुटिका गुण्यरिणाम	...	५६९
( ३ ) ठाकुर साहबका लड़का	...	५७१
२३५—कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं	...	५७२
२३६—मृतात्माओंके द्वारा—आवेशद्वारा और प्रकट होकर संवाद देना ( श्रीनिरंजनदासजी 'धीर' )	...	५७३—५७९
( १ ) मृत व्यक्तिके और्ध्वदैहिक कर्मोंकी आवश्यकता—( प्रेत-संवाद )	...	५७३
( २ ) मृत व्यक्तिका सशरीर प्राकट्य	...	५७४
( ३ ) मृत पत्नीका प्रकट होकर बात करना	...	५७४
( ४ ) ललिताबाई, आजगाँवकर	...	५७५
( ५ ) मृत मित्रसे बातचीत	...	५७६
( ६ ) रोजाली	...	५७६
( ७ ) लेबिब कैकिन ( प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी )	...	५७७
( ८ ) मानव-जन्मका संस्कार प्रेत-योनिमें भी ( श्रीउमाशंकरसिंहजी )	...	५७८—५७९
( क ) प्रेतने आत्मकस्याण किया	...	५७८
( ख ) प्रेतकी पुण्य-याचना	...	५७८
२३७—यमराजके दर्शन करके लौट आये [ मृत्युके पश्चात् लौटे हुए लोगोंकी घटनाएँ ] ( भक्त श्रीरामशरणदासजी )	...	५७९—५८५
( १ ) भोंगरी मनिहारिन	...	५७९
( २ ) श्रीरक्खामलजी	...	५८०
( ३ ) सागावाली अहीरिन	...	५८१
( ४ ) श्रीविश्वभरनाथजी बजाज	...	५८१
( ५ ) जानकी खटकिन	...	५८१
( ६ ) श्रीरुद्रदत्त	...	५८२
( ७ ) तुलसी बुआ	...	५८२
( ८ ) सर औकलैंड गैड्डीजका अनुभव ( श्रीनिरंजनदासजी 'धीर' )	...	५८२
( ९ ) श्रीबालाबख्खाजी [ पुत्रप्राप्ति ] ( श्री-कृष्णगोपालजी माथुर )	...	५८३
( १० ) अन्नदान करनेवाली बुढ़िया माई ( प्रे०—श्रीज्योतिनारायण तिवारी )	...	५८५
२३८—अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये गया-पिण्ड चाहते हैं	...	५८५
२३९—'कल्याण'में भूत-प्रेत-चर्चा क्यों ?—प्रेत-योनि कभी न मिले इसलिये ।	...	५८६



२४०—घोर प्रेत कौन होता है ? [ कविता ] ... ५८८	वाले मुसलमान पीर मुलेमान ( भक्त
२४१—पुनर्जन्ममें योनिपरिवर्तन ५८९—५९२	श्रीरामचरणदास पिलखुआ ) ... ६०३
( १ ) लड़कासे लड़की ५८९	२४६—परमधाम ... ६०६
( २-३ ) दो अद्भुत घटनाएँ ( भक्त- श्रीरामचरणदासजी )	२४७—मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ( कर्मानुसार गतियोंके भेद ) ... ६०७
१. मैं पिछले जन्ममें स्कूलमास्टर थी, फिर गौ बनी और अब एक लड़की हूँ ५८९	२४८—प्रार्थनाकी अद्भुत शक्ति ( प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी ) ... ६०९
२. नार्डकी लड़कीने अपने पूर्वजन्मकी घातें बतलायीं ... ५९०	२४९—स्वर्गसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण [ संकलित मार्कण्डेयपुराण १५। ४२-४४ ] ... ६१०
( ४-५ ) बर्माके प्रमाण—स्त्रीका जन्म पुरुष- रूपमें ( प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी ) ५९०	२५०—मृत्युके समय क्या करे ? ... ६११
( ६ ) लड़काकी घटना ... ५९१	२५१—मृत्यु, परलोक और और्ध्ववैहिक कृत्य ( शास्त्रार्थ-महाराथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री ) ... ६१२
२४२—दूरदर्शन, दूरानुभूति, भविष्य कथन ( प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी ) ... ५९२-५९४	२५२—नरकोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण [ संकलित मार्कण्डेयपुराण १५। ३९-४१ ] ६१४
( १ ) दूरदर्शन—पूर्वचेतावनी ( प्रेसीडेंट- लिकन ) ... ५९२	२५३—महामृत्युञ्जयका चमत्कार ( श्रीवेंकटलालजी ओझा ) ... ६१५
( २ ) एक युवक ... ५९३	२५४—अध्यात्म-लोकका विज्ञानात्मक आलोक ( श्री- युगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट- ला, विद्यावारिधि ) ... ६१६
( ३ ) कुमारी गीना बोशॉ ... ५९३	२५५—गया-भ्रादसे पुत्र ( श्रीवेंकटलालजी ओझा ) ६२१
( ४ ) एक सिपाही ... ५९३	२५६—परलोक-सुधारके साधन [ एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध संतके महत्त्वपूर्ण सन्तुपदेश ] ( भक्त श्रीरामचरणदासजी ) ... ६२२
( ५ ) मुखर ६० ... ५९४	२५७—लोक-परलोक-सुधारके अनिवार्य उपाय [ कविता ] ... ६२३
२४३—गया-पिण्ड सभीको दीजिये ... ५९४	२५८—हम अपना भला-बुरा स्वयं ही करते हैं [ श्रमण नारद ] ... ६२४
२४४—अनेक जन्मोंकी स्मृति [ १३ वर्षीया बालिका जोयद्वारा पूर्वजन्मोंका दावा ] ( प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी ) ... ५९५	२५९—सुन्दर परलोककी बात ( श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट ) ६२३
२४५—बहुत पहलेके पूर्वजन्मोंकी स्मृति तथा दूसरी भाषाका ज्ञान ( प्रो० श्रीहेमन्द्रनाथ बनर्जी ) ५९७—६०५	२६०—अपना सुख देकर दूसरोंका दुःख मिटानेमें महान् सुख और अपार पुण्य [ विदेहराजका अनुपम त्याग ] ... ६३८
( १ ) कोरियाकी घटना—बालक किन ऊँग योग ... ५९७	२६१—भ्रादकी अनिवार्य आवश्यकता ... ६३९
( २ ) पैशांस वर्यकी साहित्यिक रचनाएँ ( श्रीनिरञ्जनदासजी धीर ) ... ५९८	२६२—परमपद अथवा परमधाम-विज्ञान ( श्री- महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव 'अनुराग' ) ... ६४०
( ३ ) निपपुरके पुजारीद्वारा आगेट मणिपर खुदे शब्दोंका स्पष्टीकरण ... ५९८	२६३—भगवत्तत्त्व एक है [ कविता ] ... ६५१
( ४ ) मिस्रदेशकी प्राचीन भाषाका शुद्ध उच्चारण ... ५९९	२६४—कैवल्य-मोक्ष और परमधामके अधिकारी [ कविता ] ... ६५१
( ५ ) स्वयं कनफ्यूसियसद्वारा कूट कविताका उच्चारण ... ५९९	२६५—परलोकको सुधारनेके उपाय ( श्रीमती प्रेमवती देवीजी शर्मा ) ... ६५२
( ६ ) पुनर्जन्ममें धार्मिक मान्यताओंका स्थान [ डेविड मॉरिश ] ( प्रो० श्रीहेमन्द्र- नाथ बनर्जी ) ... ६००	२६६—कर्मफलकी ईश्वरीय वैज्ञानिक विधिव्यवस्था
( ७ ) एक अन्धे रामायणी बालककी कथा ( प्रे०—सुश्री सु० कुमारी ) ... ६०२	
( ८ ) एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहने-	























































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































































## परमधाम

निर्गुण-निराकार स्वरूपके एकत्व तथा उसकी सर्व-व्यापकता समझमें आनेवाली बात है, परंतु विविध विचित्र रूपोंमें प्रकट त्रिगुणातीत सगुण-साकारका एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकताकी बात समझमें नहीं आती। पर यह परम सत्य है कि वह सगुण-साकार तत्त्व नित्य अनेक होते हुए ही नित्य एक है और एक देशमें होते हुए ही सर्वत्र है। वह सबमें और उसमें सब हैं—इस अचिन्त्य, अनिर्वचनीय परमरहस्यका ज्ञान भगवत्कृपासाध्य ही है।

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण अयोध्यानिवासियोंसे एक ही साथ पृथक्-पृथक् मिले। भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें सहस्र-सहस्र कृष्णरूपमें प्रकट थे। क्या यह भगवान्की माया थी ? जादू था ? नहीं, यह वास्तवमें भगवान्की स्वरूप-स्थिति है। वे एक रहते हुए ही अनन्त स्थानोंमें, अनन्त भक्तोंके सामने पृथक्-पृथक् स्थित रहकर उनकी पूजा-अर्चना स्वीकार करते हैं। एक ही समय, एक ही साथ परस्पर-विरोधी गुणधर्मोंका आश्रय उनका स्वरूप है—‘अणोरणीयान् महतो महीयान्’। वे ही एक भगवान् विभिन्न नित्य दिव्य लीलारूपोंमें लीलायमान हैं। सत्यस्वरूप, सत्यसंकरूप भगवान्का कुछ भी असत्य नहीं है। लीलाके अनुरूप ही उनके अनादि-अनन्त विभिन्न दिव्य नित्यलोक हैं—उनमें सृष्टि-प्रलयका कोई संस्पर्श नहीं है। इन सत्य दिव्यलोकोंकी भाँति ही इनकी विभिन्न-विचित्र रचना, वहाँकी प्रत्येक अणु-महान् वस्तु, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक पार्षद-परिकर, प्रत्येक निवासी, वहाँके नद-नदी, वृक्ष-लता, गिरि-कूट, सर-सागर तथा वहाँकी सभी लीलाएँ भी सत्य दिव्य हैं। सभी भगवत्स्वरूप हैं। इसी प्रकार वे एकदेशीय होनेपर भी सर्वदेशीय तथा सर्वदेशीय होनेपर भी एकदेशीय हैं; क्योंकि सब भगवत्स्वरूपकी ही अभिव्यक्ति है।

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप या मणि-द्वीप आदि सभी दिव्य परमधाम हैं। पृथक्-पृथक् होते हुए ही वे नित्य एक ही दिव्य परमधामके स्वरूप हैं। परमधाम कोई महाविशाल, अतिविस्तृत प्राकृतिक महाद्वीप, लोक, देश या स्थानविशेष नहीं है। जैसे भगवान् प्रकृतिसे, प्रकृतिजनित तीनों गुणोंसे तथा सभी आवरणोंसे अतीत एवं प्राकृतिक पाञ्चभौतिक आकार—शरीरसे अतीत निजस्वरूपभूत गुण-देह हैं, वैसे ही उनके ये धाम तथा धामगत पदार्थमात्र भी भगवत्स्वरूप ही हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

( गीता ६.३० )

जहाँ भगवान्की नित्य दिव्य व्यक्त लीला है, वही दिव्य ‘रस’ और ‘भाव’का प्रकाश है। ‘रस’-स्वरूप भगवान् देव हैं और ‘भाव’-स्वरूपा उनकी अभिन्न-तत्त्व ह्लादिनी देवी हैं। भगवान् शक्तिमान् हैं, ह्लादिनी शक्ति हैं। दोनोंका नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण और प्रेममयी श्रीराधा, भगवान् श्रीविष्णु और भगवती श्रीलक्ष्मीजी, भगवान् श्रीराम और देवीश्रीरोमणि श्रीसीताजी, भगवान् श्रीशंकर और उनकी प्रिया सतीश्रीरोमणि श्रीसती देवी शक्तिमान् और शक्तिस्वरूप हैं। श्रीदेवी-स्वरूपमें विपरीत लीला है। वहाँ शक्तिका स्वामित्व है, शक्तिमान्की वश्यता है; पर वहाँ भी है—वही अभिन्न शक्ति-शक्तिमान् तत्त्व ही। ये सभी एक ही नित्य दिव्य लीलाके नित्य स्वरूप हैं, परम सत्य हैं, महात्माओं तथा संतोंके द्वारा अनुभूत, उपलब्ध और सेवित हैं।

जैसे एक ही भगवान्के प्रत्येक स्वरूपमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य सभी रूपोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है, वैसे ही उनके प्रत्येक दिव्यलोकमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य लोकोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है। उनमें कोई श्रेष्ठ और कनिष्ठ नहीं है। सभीमें नित्य एकत्व, समत्व तथा श्रेष्ठत्व है। भक्त अपने भावानुसार एकको सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ देखता तथा दूसरोंको उससे कनिष्ठ देखता है—उन दिव्य लोकोंका तथा भक्तहृदयका यह अनुपमेय अनन्य-वैचित्र्य सदा ही आह्लादजनक है, पर वैसे यह नित्य अमेदमें ही भेद-दर्शन है।

जहाँ ‘वैकुण्ठ’की प्रधानता है, वहाँ गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप आदि उसमें गौणरूपसे विद्यमान हैं और चतुर्भुज ‘भगवान् विष्णु’ ही वहाँ सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ ‘गोलोक’की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, साकेत, कैलास, देवीलोक गौणरूपसे विद्यमान हैं और ‘मुरलीमनोहर द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण’ ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ ‘साकेत’ की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, गोलोक, कैलास, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और ‘धनुर्धर भगवान् श्रीराम’ ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ ‘कैलास’का प्राधान्य है, वहाँ



वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'कर्पूरगौर भगवान् श्रीशंकर' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। इसी प्रकार भगवती श्रीदेवीजी तथा देवीलोककी प्रधानतामें कैलास, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत आदि गौणरूपसे विद्यमान हैं। दिव्य गणपति तथा दिव्य सूर्यलोकके लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। पर यह केवल समझनेकी ही बात या कोई 'अर्थवाद' नहीं है। वास्तवमें यह नित्य परम सत्य है।

प्रत्येक दिव्यलोक—परमधाम उसके प्रधान भगवत्-

स्वरूपकी महत्ताको घोषित करता हुआ उस रूपकी आराधना करनेवालोंकी निष्ठाको पुष्ट तथा संतुष्ट करता है और उन भक्तोंके तत्त्वज्ञानमें तनिक भी त्रुटि न रहनेपर भी उनको नित्य-नित्य लीलानन्द-महासुधारणवर्मे निमग्न रखता है।

वास्तवमें भगवान्के स्वरूपका रहस्य भगवान् ही जानते हैं। भगवान्की दृष्टि भगवान्से अभिन्न है और उनकी दृष्टिमें जो कुछ है, वही सत्य है। उनकी दृष्टिमें, ऐसा ही विश्वास होता है कि उनके अपने सिवा कुछ है ही नहीं।

## मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति

( कर्मानुसार गतियोंके भेद )

मनुष्य-जीवनका एकमात्र पवित्र उद्देश्य या परम ध्येय है—जन्म-मृत्युके चक्रसे नित्यमुक्ति। इसीको मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार, तत्त्वज्ञान, बोध, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कहते हैं। अनन्य तीव्र इच्छाके साथ उपयुक्त साधन करनेपर मनुष्य इसी जन्ममें अपने इस महान् ध्येयको प्राप्त कर सकता है। इसीलिये उसको मानवजन्म मिला है। पर वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र है—साधनानुकूल कर्म भी कर सकता है और इसके सर्वथा प्रतिकूल भी। कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है। मनुष्य साधना करके मुक्त भी हो सकता है; सत्कर्म करके विपुल भोगमय स्वर्गकी प्राप्ति भी कर सकता है; असत्-कर्म करके घोर यन्त्रणाभय नरकोंमें भी जा सकता है और पशु, पक्षी, कीट-पतंग तथा जड़ वृक्ष-वृत्ता-पाषाण भी बन सकता है। मानव-जीवनको व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें खोकर अनन्तकालीन दुःखका भविष्य निर्माण कर सकता है। इसीलिये कहा जाता है कि दुर्लभ मनुष्य-जन्मका एक क्षण भी व्यर्थ-अनर्थमें न खोकर केवल भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही लगाना चाहिये। स्वर्गके भोग-सुख मिलेंगे, तो वे भी वस्तुतः विनाशी तथा दुःखप्रद ही होंगे। कहीं कर्मके फलस्वरूप दुर्गति हो गयी, तब तो बहुत ही बुरी बात होगी। लेनेके देने पड़ जायेंगे। पर वर्तमानकालमें अधिकांशमें मनुष्य ऐसा भोगासक्त हो गया है कि वह जीवनके असली उद्देश्य भगवत्प्राप्तिको भूलकर अहंता-ममता, राग-द्वेष एवं काम-क्रोध-लोभसे अभिभूत हो ऐसे ही कर्म करता है, जिनसे जीवनभर यहाँ भी अशान्ति, दुःख, भय, विषाद तथा चिन्ता आदिसे प्रसक्त-संक्र

रहता है और भोगोंकी प्राप्तिके लिये पापकर्ममें लगा रहनेके कारण मृत्युके बाद आसुरी योनियोंको तथा नरकोंकी घोर यन्त्रणाओंको प्राप्त होता है। भगवानने गीतामें कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

( १६।२० )

“( ऐसे लोगोंको ) मेरी ( भगवान्की ) प्राप्ति तो होती ही नहीं, वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्ममें आसुरी योनि ( राक्षस, पिशाच, भूत-प्रेत या कुत्ते, सूअर, गधे आदि ) को प्राप्त होते हैं; फिर उससे भी अति नीच गतिमें अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं ।”

दुर्लभ मनुष्य-जीवनका यह कितना अवाञ्छनीय दुष्परिणाम है !

कर्मानुसार मनुष्य निम्नलिखित गतियोंको प्राप्त होता है—

( १ ) अहंता-राग-द्वेषसे सर्वथा रहित जीवन्मुक्त पुरुष अथवा इस भावके साधनसे सम्पन्न पुरुष, मरनेपर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। सूक्ष्म-कारण शरीर नष्ट हो जाते हैं। यह 'सद्योमुक्ति' है।

( २ ) भगवान्की भक्तिमें ही जीवन समर्पण कर देने-वाले भक्तको भगवान्के दिव्य पार्षद स्वयं आकर ज्योतिर्मय, स्वप्रकाश सच्चिदानन्दमय भगवत्स्वरूप नित्य परमधाम—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदिमें दिव्य विमान-द्वारा ले जाते हैं। वह वहाँ उस दिव्य धाममें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्द्धि आदि भगवत्-स्वरूपताको प्राप्त



करके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय भगवत्स्थितिमें रहता है। पर, प्रेमी साधक इस स्थितिको भी स्वीकार नहीं करते; वे साक्षात् सेवारूप बनकर नित्य भगवत्-सेवापरायण ही रहते हैं। देनेपर भी उपर्युक्त सालोक्यादिको ग्रहण नहीं करते। \* यही पराभक्ति या प्रेमाभक्तिको प्राप्त पुरुषका भगवत्सेवामें नित्य प्रवेश है।

ये दोनों ही परम गति हैं। यही मानव-जीवनकी परम सफलता है। यही अनादिकालसे भटकते हुए जीवका उससे मुक्त होकर, नित्य सत्य परमानन्द-स्वरूपको प्राप्त होना है।

(३) निष्काम भावसे परमार्थ साधन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता पुरुष देवयान—उत्तरायण या अर्चिमागसे दिव्य देवलोकमें देवताओंके द्वारा ले जाये जाकर, वहाँ अमर्यित होते हुए ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं और वहाँ ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं। संसारमें उनका पुनरावर्तन नहीं होता। यह 'क्रममुक्ति' है।

(४) सकाम भावसे शास्त्रोक्त सत्कर्म करनेवाले पुरुष पितृयाण—दक्षिणायन या धूममागसे दिव्य चन्द्रलोक-तक जाते हैं, यही भोगमय प्रकाशमय स्वर्गधाम है। इसके सहस्रों रूप हैं। पुण्यात्मा पुरुष इस जरा-व्याधिरहित स्वर्गमें देव-भोग-सुख प्राप्त करते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें लौट आते हैं।

(५) ज्ञान-विज्ञानरहित मोहग्रस्त भोगासक्त पाप-परायण मनुष्य मरनेके बाद वायुके सहारे चलनेवाले (वायुप्रधान) दूसरे शरीरको धारण कर लेते हैं, जो रूप, रंग और अवस्था आदिमें ठीक पहले (मृत) शरीरके जैसा ही होता है। यह शरीर माता-पिताके द्वारा उत्पन्न नहीं होता। यह कर्मजनित होता है और यातना-भोगके लिये ही मिलता है। तदनन्तर शीघ्र ही उसे दारुण पाशसे बाँधकर घोर भयंकर-आकृति क्रूरकर्मा यमदूत डंडोंसे पीटते तथा बड़ी बुरी तरह यातना देते हुए दक्षिण दिशामें यमलोककी ओर खींचकर ले जाते हैं।† वहाँ कर्मानुसार उसके लिये नरकादि यन्त्रणा-भोगकी व्यवस्था होती है।

\* सालोक्यसाष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

( श्रीमद्भा० ३।२९।१३ )

† बाव्यग्रसारी तद् रूपं देहमन्यं प्रपद्यते ।

तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भबम् ।

तत्प्रमाणवयोऽवस्था संस्थाने प्राग्भवं वया ॥

(६) जो न तो मुक्त होते हैं, न देवयान-पितृयाण मार्गसे जाते हैं और न नरकोंमें ही जाते हैं—ऐसे प्राणी कर्मानुसार यहाँ मच्छर, मक्खी, जूँ, लिखा, धुन आदिकी योनिको प्राप्त करते हैं।

कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि मनुष्य मरते ही तत्काल यहीं दूसरे मनुष्य-शरीरको अथवा पशु-पक्षी-तिर्यक् या वृक्ष-पाषाण आदिके शरीरको प्राप्त हो जाता है, अन्य लोकोंमें नहीं जाता। शाप-वरदानसे या प्रबल वासनायुक्त तत्काल पुनर्जन्मदायक कर्मोंके कारण ऐसा होता है। कई योगभ्रष्ट पुरुष भी मरनेपर तुरंत मनुष्य-शरीर प्राप्त करते हैं। इसके भी नियम हैं।

वैसे साधारणतः मरते ही दूसरा वायुप्रधान देह मिल जाता है, जिसे 'आतिवाहिक देह' कहते हैं; क्योंकि सूक्ष्म-शरीरधारी जीवको किसी आश्रयभूत शरीरकी आवश्यकता होती है। इसीसे कहा गया है कि जैसे जौक अपना अगला पैर अगले पत्तेपर रख देती है तब पिछलेको छोड़ती है अथवा पुराना वस्त्र त्यागते ही नवीन वस्त्र जैसे पहन लिया जाता है, वैसे ही मरते ही 'आतिवाहिक शरीर' मिल जाता है। तत्पश्चात् समयपर कर्मानुसार सुख-भोगार्थ 'देवादि शरीर' या पीड़ा भोगनेके लिये 'यातना-शरीर'की प्राप्ति होती है।

इन सब बातोंपर विचार करके मनुष्यको अपने जीवनके वास्तविक एकमात्र परम तथा चरम ह्येय भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही प्रवृत्त रहना चाहिये और वास्तवमें अहंता-राग-द्वेष-अभिनिवेशरूप अविद्यासे मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूपता या भगवान्के दिव्य परमधामको प्राप्त कर लेना चाहिये। इसमें जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। भगवत्कृपासे प्राप्त मनुष्यशरीर-रूप सुअवसर भविष्यमें भयानक दुःख देनेवाले व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें चला न जाय। शरीर क्षणभङ्गुर है; अतः किसी स्थिति-विशेषकी प्रतीक्षा न कर भजनपरायण हो ही जाना चाहिये। नामरूपके अभिमान तथा राग-द्वेषसे छूटनेपर ही मनुष्य परम पद या भगवान्को प्राप्तकर सफलजीवन हो सकता है; केवल संत-महात्मा, भक्त-प्रेमी या ज्ञानी कहलानेमात्रसे नहीं। कहलायें चाहे नहीं, पर बनें अवश्य।

ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः ।

दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कथं दक्षिणां दिशम् ॥

( भा० पु० १०।३४-३५ )



मले कहें कोई भी ज्ञानी मुक्त भागवत योगी संत ।  
राग-द्वेष-अहंता रहते कभी न होगा भवका अंत ॥  
राग-द्वेष-मुक्त हो जाओ, कहलाओ फिर मले असंत ।  
हो जाओगे सहज स्वयंतुम 'चिन्मय परमानन्द' अनन्त ॥

मनुष्य मरनेके बाद पुनः मनुष्य ही होता है—यह मत भ्रान्त है । वह कर्मानुसार मोक्ष या परमधामको प्राप्त हो सकता है, देवता या राक्षसयोनिमें जा सकता

है, मनुष्य भी बन सकता है और पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-पाषाण भी । अतएव मनुष्यको सावधानीके साथ सदा-सर्वदा ऐसे ही भजनरूप कर्म करने चाहिये, जिससे मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌को ही प्राप्ति हो । यही मानवका एकमात्र धर्म है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥

( श्रीमद्भा० १।१।६ )

## प्रार्थनाकी अद्भुत शक्ति

( लेखक—प्रो० श्रीहेमन्तनाथ बनर्जी )

क्या प्रार्थना असम्भवको सम्भव बना सकती है ?

जनवरी १९६५में मेरे मस्तिष्कसे कैंसरकी गिल्टी निकालनेके लिये तीन बार गम्भीर शल्यक्रिया की गयी । जिनमेंसे मैं जीवित बच निकली । मेरे इस अनुभवकी कहानी 'दी नाइट आइ डाइड' ( The Night I Died ) शीर्षकके अन्तर्गत मार्च, १९६६में प्रकाशित हो चुकी है ।

थोड़े दिन पूर्व डाक्टरोंको यह विश्वास हो गया था कि मैं पूर्णतः स्वस्थ हो गयी हूँ और अब पुनः खोपड़ीके उस भागको लगानेके लिये शल्यक्रिया की जा सकती है, जिसे उन्होंने पिछली शल्यक्रियाओंको ठीक करनेके लिये अपने स्थानसे हटा दिया था । मैं इस कठिन परीक्षासे बहुत घबराती थी । अस्तु, मेरे पति श्रीहग ( Hugh ) ने आवश्यक सामर्थ्य जुटानेके लिये प्रार्थना करनेमें मेरी सहायता की । हमने मेरे अस्पताल रहनेकी अवधिमें तीन छोटी बच्चियोंकी देख-भालका प्रबन्ध कर दिया और मैंने अपने-आपको इसके लिये तैयार कर लिया ।

डाक्टरोंने चतुर्थ शल्यक्रियाको सफल घोषित कर दिया और हम घावके भरनेकी प्रतीक्षा करने लगे । परंतु किसी कारणसे मेरा शरीर प्लास्टिककी उस प्लेट ( Plate ) को सहन नहीं कर पा रहा था, जिसे मेरी खोपड़ीमें तारके साथ लगाया गया था । सिरमें उस स्थानपर एक तरल पदार्थ-सा इकट्ठा होने लगा और इस स्थितिके कारण मुझे भयंकर सिरदर्दका सामना करना पड़ा । मेरे सिरकी वेदनाओंका अन्त तभी हुआ, जब डाक्टरोंने एक बहुत

बड़ी सुई, जिसे मैं घोड़ेवाली सुई ( Horse Needle ) कहती थी, उस तरल पदार्थको खींचनेके लिये उसमें घुसा दी । अब घावके टाँकोंके जल्दी ठीक न होनेके कारण एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी । शल्यक्रियाओंके इन विविध प्रयोगोंके कारण मेरी स्वचा बहुत ही मुलायम और जलसिक्त हो गयी थी और ठीक ही नहीं हो पाती थी ।

एक शनिवारको मुझे बहुत असह्य पीड़ा होने लगी । यह सब देखकर डाक्टर बहुत चिन्तित हुए । उन्हें आशा थी कि अबतक घाव भरना आरम्भ हो गया होगा । डाक्टरने कहा—'हमें इसे कम-से-कम एक सप्ताह और देना चाहिये और तब सम्भवतः तुम्हें घर जानेकी अनुमति मिल सकेगी ।' मैंने पूछा कि 'यदि उस समयतक भी टाँके न भरे और तरल पदार्थ बहता रहा तब ?' उसने उत्तर दिया कि 'उस स्थितिमें उस कष्टकारक प्लेटको हटानेके लिये पुनः शल्यक्रिया करना आवश्यक हो जायगा ।'

डाक्टरके जाते ही मेरे पति आ गये और मुझे अपनी मुजाओंमें ले लिया । मैं निराश होकर रोने लगी ।

मैंने रोते हुए कहा कि 'अब और शल्यक्रिया नहीं कराऊँगी ।' पहले ही एक वर्षमें चार बार करा चुकी हूँ, अब उसे सहन नहीं कर पाऊँगी ।'

मेरे शान्त एवं सुदृढ़ पतिने मुझे विश्वास और प्यारभरे शब्दोंमें ढाढस बँधाया । हम दोनोंने मिलकर भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वह हमपर अपनी दया-दृष्टि डालें तथा अपनी कृपासे मेरा सिर ठीक कर दें ।'



उस सायंकाल घर लौटनेपर मेरे पतिने हमारी छोटी बच्चियोंको अपनी बाँहोंमें लेकर उनके साथ मेरे स्वास्थ्यलाभके लिये प्रार्थना की और अपने कई मित्रोंसे फोनपर मेरे लिये प्रार्थना करनेका निवेदन किया। उन लोगोंने अपने-अपने मित्रोंको मेरे लिये प्रार्थना करनेकी प्रेरणा दी। बादमें हमें पता चला कि सैकड़ों व्यक्तियोंने उस रात्रि मेरे स्वास्थ्यके लिये प्रभुसे प्रार्थना की। एक मित्रने हवाई (Hawaii) तथा दूसरेने हैफा (Haifa) स्थित मित्रोंको इसमें सम्मिलित होनेके लिये समुद्रो तार (Cables) तक भेजे।

दूसरे दिन डाक्टर मेरी प्रगतिका परीक्षण करनेके लिये आया और धीरे-धीरे मेरी पट्टी खोलते समय वह मुझे आगामी आपरेशनके लिये भी तैयार कर रहा था। पट्टी खुलते ही वह आश्चर्यचकित रह गया। 'मैं इसपर विश्वास नहीं कर सकता'—उसके इन शब्दोंसे मुझे सूचना मिली कि 'कुछ तो हुआ है।'

उसने संदेहजनक दृष्टिसे मेरी ओर देखकर कहा—'तरल पदार्थ कहीं दिखायी नहीं देता। त्वचा भी पुष्ट दिखायी देती है और धाव भर चुका है। टाँके भी ठीक हैं। यह रातों-रात कैसे हो सकता है? यदि मैंने इसे अपनी आँखोंसे न देखा होता तो मैं इसपर कभी विश्वास नहीं करता।'

मेरी प्रसन्नताकी कोई सीमा न थी। मैं उसके गलेमें

अपनी बाँहें डाल देना चाहती थी। मैंने जी भरकर उसको धन्यवाद दिया। उसने कहा—'मुझे धन्यवाद मत दो। प्रार्थना करनेवाले अपने मित्रोंको धन्यवाद दो। मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया है।'

धाव पूरी तरहसे भर चुका था। उसने उसी समय वहाँ टाँके काट दिये और मेरे पतिको मुझे घर ले जानेके लिये कह दिया। मेरे पतिने मेरे गलेमें यह कहते हुए अपनी बाँहें डाल दी कि—'ईश्वर सर्वशक्तिमान् है।'

डाक्टर मुस्कराया और अपना छोटा-सा काला बैग उठाकर चलते-चलते दरवाजेकी ओर दृष्टि डालते हुए उसने कहा—'क्या आप जानते हैं कि मैंने सदा ही श्रद्धाकी शक्तिपर विश्वास किया है; परंतु इस अनुभवने निश्चित ही मेरी आस्थाको दृढ़ किया है और उसे बढ़ाया है।'

अब पुनः मेरा जीवन सामान्य हो गया है। मैं घरका सब काम करती हूँ और भोजन भी बनाती हूँ। कभी-कभी थोड़ी घुमरी (सिरके चक्कर) या सिरकी पीड़ा मुझे अपने उस अनुभवका स्मरण कराती रहती है।

रोज मैं इस जीवनदान देनेवाले तथा प्रातःकालके सूर्यके स्वागतके लिये उठनेका आनन्द देनेवाले प्रभुको धन्यवाद देती हूँ। अनुभवके लिपिबद्ध कर देनेसे किसीकी श्रद्धा बढ़ी तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा।\*

## स्वर्गोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

दया भूतेषु सद्भावः परलोकप्रतिक्रिया। सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वंदप्रामाण्यदर्शनम् ॥

गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः। सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः ॥

अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च। स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् ॥

( मार्कण्डेयपुराण १५।४२-४४ )

जीवोंपर दया, अच्छी बातें करना, परलोकके लिये शुभ कर्म करना, सत्य बोलना—सत्यका आचरण करना, सब प्राणियोंका हित हो—ऐसी वाणी बोलना, वेद स्वतः ही प्रमाण है—ऐसी निष्ठा रखना, गुरु-देवता, ऋषि, सिद्धपुरुष-महात्माका सत्कार करना—उनके बताये मार्गपर चलना, साधु पुरुषोंका सङ्ग करना, सत्कर्मोंका अभ्यास करना, सबके साथ मित्रभाव रखना तथा अन्य भी सत्-धर्म-सम्बन्धी कार्योंमें लगे रहना—यह स्वर्गसे लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान है।

\* लेखिका अपना नाम और पता बताना नहीं चाहती, इसलिये उसे नहीं दिया गया।



## मृत्युके समय क्या करे ?

मृत्युके समय सबसे बड़ी सेवा है—किसी भी उपायसे मरणासन्न रोगीका मन संसारसे हटाकर भगवान्में लगा देना । इसके लिये—

( १ ) उसके पास बैठकर घरकी, संसारकी, कारवारकी, किन्हींमें राग या द्वेष हों तो उनकी, ममताके पदार्थोंकी तथा अपने दुःखकी चर्चा बिल्कुल ही न करे ।

( २ ) जबतक चेत रहे, भगवान्के स्वरूपकी, लीलाकी तथा उनके तत्त्वकी बात सुनावे । श्रीमद्भगवद्गीताका ( सातवें, नवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें अध्यायका विशेष रूपसे ) अर्थ सुनावे । भागवतके एकादश स्कन्ध, योगवासिष्ठका वैराग्यप्रकरण, उपनिषदोंके चुने हुए स्थलोंका अर्थ सुनावे । इनमेंसे रोगीकी रुचिका ध्यान रखकर उसीको सुनावे । नामकीर्तनमें रुचि हो तो नामकीर्तन करे या संतों-भक्तोंके पद सुनावे । जगत्के प्राणि-पदार्थकी, राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली बात, ममता-मोहको जगाने तथा बढ़ानेवाली चर्चा बिल्कुल ही भूलकर भी न करे ।

( ३ ) रोगी भगवान्के साकार रूपका प्रेमी हो तो उसको अपने इष्ट—भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश—किसी भी भगवद्रूपका मनोहर चित्र सतत दिखाता रहे । निराकार-निर्गुणका उपासक हो तो उसे आत्मा या ब्रह्मके सच्चिदानन्द अद्वैत तत्त्वकी चर्चा सुनावे ।

( ४ ) उस स्थानको पवित्र धूप, धूपें, कर्पूरसे सुगन्धित रखे; कर्पूर या घृतके दीपककी शीतल परमोज्ज्वल ज्योति उसे दिखावे ।

( ५ ) समर्थ हो और रुचि हो तो उसके द्वारा उसके इष्ट भगवत्स्वरूपकी मूर्तिका पूजन करवावे ।

( ६ ) कोई भी अपवित्र वस्तु या दवा उसे न दे । चिकित्सकोंकी राय हो तो भी उसे ब्रांडी ( शराब ), नशैली तथा जान्तव पदार्थोंसे बनी एलोपैथिक, होमियोपैथिक दवा बिल्कुल न दे । जिन आयुर्वेदिक दवाइयोंमें अपवित्र तथा जान्तव चीजें पड़ी हों, उनको भी न दे । नखानपानमें

अपवित्र तामसी तथा जान्तव पदार्थ दे । रोगीकी क्षमताके अनुसार गङ्गाजलका अधिक या कम पान करावे । उसमें तुलसीके पत्ते अलग पीसकर छानकर मिला दे । यों तुलसी-मिश्रित गङ्गाजल पिलाता रहे ।

( ७ ) गलेमें रुचिके अनुसार तुलसी या रुद्राक्षकी माला पहना दे । मस्तकपर रुचिके अनुसार त्रिपुण्ड्र या ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक पवित्र चन्दनसे, गोपीचन्दन आदिसे कर दे । अपवित्र केसरका तिलक न करे ।

( ८ ) रोगीके निकट रामरक्षा या मृत्युञ्जयस्तोत्रका पाठ करे । एकदम अन्तिम समय पवित्र 'नारायण' नामकी विपुल ध्वनि करे ।

( ९ ) रोगीको कष्टका अनुभव न होता दीखे तो गङ्गाजल या शुद्ध जलसे उसे स्नान करा दे । कष्ट होता हो तो न करावे ।

( १० ) विशेष कष्ट न होता हो तो जमीनको धोकर उसपर गङ्गाजल ( हो तो ) के छंटे देकर भगवान्का नाम लिखकर, गङ्गाकी रज या व्रजरज हो तो डालकर चारपाईसे नीचे सुला दे ।

( ११ ) मृत्युके समय तथा मृत्युके बाद भी 'नारायण' नामकी या अपने इष्ट भगवन्नामकी तुमुल ध्वनि करे । जबतक उसकी रथी चली न जाय, तबतक यथाशक्य कोई घरवाले रोवें नहीं ।

( १२ ) उसके शवको दक्षिणकी ओर पैर करके सुला दे । तदनन्तर शुद्ध जलसे स्नान करवाकर, नवीन धुला हुआ वस्त्र पहिनाकर अपनी जातिप्रथाके अनुसार शवयात्रामें ले जाय; पर पिण्डदानादिका कार्य जानकार विद्वान्के द्वारा अवश्य कराया-जाय । श्मशानमें भी पिण्डदान तथा अग्नि-संस्कारका कार्य शास्त्रविधिके अनुसार किया जाय । रास्तेभर भगवन्नामकी ध्वनि 'रामनाम सत्य है', 'हरि बोल' 'नारायण-नारायण'की ध्वनि होती रहे । श्मशानमें भी भगवच्चर्चा ही हो ।



## मृत्यु, परलोक और और्ध्वदैहिक कृत्य

( लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री )

वेदका वेदत्व केवल इस विशेषतापर निर्भर है कि जो रहस्य प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि किसी भी प्रमाणद्वारा वेद्य न हो, उस रहस्यको जो प्रकट करे, तादृश प्रमाणको 'वेद' कहते हैं। इसलिये आस्तिक समाजकी यह गवोक्ति शास्त्रसिद्ध है कि 'शास्त्रप्रामाणिका वयम्' अर्थात् 'हम शब्द ( वेद ) को प्रमाण माननेवाले—आस्तिक हैं।'।

यह बात युक्तिसङ्गत भी है। बहुत-से ऐसे विषय हैं, जिनतक मानवकी पहुँच नहीं हो सकती है। जैसे उदाहरणार्थ 'मृत्युके बाद क्या गति होगी?'—यह रहस्य मानव-बुद्धिका विषय नहीं। जो मर जाते हैं, वे लौटकर कुछ कहने नहीं आते और जिन्हें मरना है वे उसका स्वयं क्या अनुमान कर सकते हैं? इसी प्रकार 'परलोक क्या है? वह है भी या नहीं? है तो तदर्थ हमारा अपना क्या कर्तव्य है? परलोकगत प्राणीकी उसके जीवनसम्बन्धी भी कुछ सहायता हम कर सकते हैं क्या?' इत्यादि अनेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर एकमात्र वेद ही दे सकता है। वस्तुतः वेदका आरम्भ वहाँसे होता है, जहाँ मानव-बुद्धिकी दौड़ समाप्त हो जाती है। इसलिये मृत्यु क्या है, परलोक क्या है, मृत्युके अनन्तर क्या-क्या ऐसे अनुष्ठान हैं, जिनके करनेसे परलोकगत आत्माकी सद्गति हो सकती है—इत्यादि परोक्ष विषयोंपर ही इस लेखमें वेद-शास्त्रके प्रमाणानुसार संक्षिप्त विचार किया जायगा।

### मृत्यु क्या है ?

हमारा यह मानव-शरीर पञ्चमहाभूत ( पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश ), पञ्चकर्मेन्द्रिय ( हस्त, चरण, गुदा, लिङ्ग और जिह्वा ), पञ्चज्ञानेन्द्रिय ( श्रोत्र, चक्षु, रसना, त्वक् और घ्राण ), पञ्चप्राण ( प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ), अन्तःकरण-चतुष्टय ( मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ) तथा अविद्या, काम और कर्म—इन २७ तत्त्वोंका संघात है, जिसे 'स्थूलशरीर' कहते हैं।

स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रिय—इन दस तत्त्वोंके अतिरिक्त जो शेष सत्रह तत्त्व बचते हैं, उतने संघातका नाम 'सूक्ष्मशरीर' है। मृत्युका अर्थ है—'स्थूल

पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रियोंका छूट जाना।' अतः मृत्युमें प्राणीका सर्वनाश नहीं हो जाता; किंतु केवल पूर्वोक्त दस तत्त्वोंकी निवृत्तिमात्र हो जाती है। शेष सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर मुक्तिपर्यन्त तथैव विद्यमान रहेंगे।

### मृत्युके अनन्तर क्या गति होती है ?

यह गति सबके लिये समान नहीं है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होती है। ज्ञानाग्निमें जिनके शुभाशुभ कर्म दग्ध हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं—'न स पुनरावर्तते।' वे फिर जन्म-मृत्युके चक्रमें नहीं पड़ते। जिनके उग्र सकाम शुभ कर्म हैं, वे स्वर्ग आदि लोकोंमें अपने शुभ कर्मोंका फल उपभोग करते हैं। जिनके उग्र पापकर्म हैं, वे नरकमें सड़ते हैं। परंतु जब भोगते-भोगते शुभ किंवा अशुभ कर्म ऐसे स्तरके अवशिष्ट रह जाते हैं, जो मृत्युलोकमें ही भोगे जा सकते हैं, तब स्वर्गीय प्राणी शुचि-श्रीमानोंके या योगियोंके कुलमें उत्पन्न होकर पुण्य-फल प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार नारकीय प्राणी सूकर, कूकर, कुष्ठी, निर्धनके रूपमें जन्म लेकर अपने शेष पापकर्मोंका उपभोग करते हैं।

चन्द्र-कक्षाके उपरिभागमें पितृलोक है। सूर्य-कक्षामें शुः-स्वर्गलोक है और शनिकी अन्धकारमय कक्षामें अट्टाईस नरक-लोकोंकी अवस्थिति है।

मृत्युके अनन्तर सूक्ष्मशरीरधारी जीवको स्वर्गोपभोगके लिये 'दिव्य शरीर'की प्राप्ति होती है, नरकोपभोगके लिये 'यातना-शरीर' प्राप्त होता है, सर्वाधम पापियोंको एक ही दिनमें जन्म और मरणका कष्ट भोगनेवाली कीट-पतङ्गादिकी 'जायस्र म्रियस्व'-गति मिलती है। जिनके न अपने शुभ कर्म हैं, न अशुभ उग्र कर्म हैं और न उनके सम्बन्धी ही और्ध्वदैहिक अनुष्ठानोंद्वारा उनकी कुछ सहायता करते हैं, वे लोकान्तरमें न जाकर 'वायुभूतो दिगम्बरः।' रूपमें मृत्युलोकमें ही भूत-प्रेत आदि योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार अपने-अपने कर्मोंके तारतम्यसे विभिन्न गतियाँ होती हैं।

### और्ध्वदैहिक कृत्य

वेदका तीन चतुर्थीश भाग केवल 'परलोकविषयक



और्ध्वदैहिक' कृत्योंकी इतिकर्तव्यतासे ही भरा पड़ा है। वस्तुतः वेदोंका मुख्य विषय आपाततः परलोक ही है; क्योंकि यह विषय परोक्ष होनेके कारण मानव-बुद्धिगम्य नहीं है। उक्त सब और्ध्वदैहिक कृत्योंका संग्राहक पारिभाषिक नाम 'श्राद्ध' है। मृत पितरोंके उद्देश्यसे अपनी प्रिय भोग्य वस्तुओंको वैदिक विधिके अनुसार श्राद्धपूर्वक जो प्रदान किया जाता है, उन अनुष्ठानोंको 'श्राद्ध' कहा जाता है। यही श्राद्धका लक्षण है। यही श्राद्धकी मुख्य चार क्रियाएँ हैं—पिण्डदान, तर्पण, हवन और ब्राह्मण-भोजन।

### क्या श्राद्धद्वारा मृत प्राणियोंकी तृप्ति होती है ?

नास्तिकलोग प्रायः कहा करते हैं कि मृत प्राणी स्वकर्मानुसार न जाने किस लोकमें और किस योनिमें गया है। ऐसी दशामें हमारे द्वारा किये श्राद्धकी वस्तु उसे कैसे प्राप्त हो सकती है ? यदि वह मरकर हाथी बन गया तो हमारा दिया सेरभर अन्न उसको कैसे तृप्त कर सकेगा ? और यदि वह कीट-पतङ्ग आदि लघु शरीरधारी बन गया होगा तो सेरभर अन्नका पिण्ड उसपर भारभूत होकर उसकी मृत्युका कारण हो जायगा। साथ ही हमारी दी गयी शय्या-वस्त्र आदि वस्तुओंका भी पशु-पक्षी आदि योनियोंमें पुनर्जन्म धारण करनेवालेके लिये क्या उपयोग हो सकता है ? इत्यादि-इत्यादि।

इन सब शङ्काओं और संदेहोंका एकमात्र यही कारण है कि नास्तिक अपनी प्रदत्त वस्तुओंको ज्यों-की-त्यों परलोकमें मिलनेकी कल्पना किये बैठा है; अन्यथा वेदादि शास्त्रोंके अनुसार तो पूर्वोक्त चारों श्राद्ध-कृत्योंके अनुष्ठानके उपलक्ष्यमें मृत प्राणीको सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी ईश्वरके न्यायसे 'तृप्ति' प्राप्त होती है अर्थात् वह जिस भी योनिमें पहुँचा होगा, उस योनिमें उसको तृप्त करनेवाली जो-जो स्वाभाविक वस्तुएँ होंगी, श्राद्धका फल उसी रूपमें परिवर्तित होकर मृत प्राणीकी तृप्तिका कारण होगा। 'तृप्ति' का अर्थ है—भोग्य पदार्थोंकी लालसाकी निवृत्ति। जबतक किसी भी जीवमें यह लालसा बनी रहती है, तबतक वह मोक्षका अधिकारी नहीं हो सकता। अतः जीवनकालमें अपनी साधनासे जिन प्राणियोंने लालसाकी निवृत्ति प्राप्त नहीं की है, वे मृत्युके अनन्तर भी लालसाके भ्रमावर्तमें पड़े भटकते रहते हैं। इसलिये मृत प्राणीके पुत्रादि

सम्बन्धियोंका यह कर्तव्य है कि वे श्राद्धक्रियाद्वारा मृत व्यक्तिकी लालसाको निवृत्त करनेका प्रयत्न करें।

### श्राद्धका भार पुत्रादिपर क्यों ?

शास्त्र कहता है कि यदि मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करे तो उसके द्वारा उसकी प्राणशक्ति इतनी प्रबल हो जायगी कि मृत्युके समय बिना प्रयास उसके प्राण कपाल फोड़कर शरीरसे बाहर निकलेंगे और सूर्यमण्डलका भेदन कर ब्रह्माण्डकी परिधि को पार कर जायँगे। वह मुक्त हो जायगा। परंतु संतान उत्पन्न करनेवाले गृहस्थोंकी वह शक्ति क्षीण हो जाती है। उनके प्राण अन्य किसी द्वारसे निकलते हैं। इसीलिये दाहसंस्कारके समय पुत्र पिताकी कपालक्रिया करता हुआ, मानो यह प्रतिज्ञा करता है कि 'मृत पिताजी ! यदि आप मुख-सरीखे पुत्रको उत्पन्न न करके अपने अखण्ड ब्रह्मचर्यको धारण करते तो आज उस ब्रह्मचर्यके ही कारण आपकी मृत्यु कपाल फूटकर होती और आप मुक्त हो जाते; परंतु आपने मेरे उत्पन्न करनेमें अपनी मुक्तिका लोभ छोड़ा है। अतः अब मेरा यह कर्तव्य है कि मैं श्राद्ध-कृत्यद्वारा आपकी उस कमीकी पूर्ति करके आपकी मुक्तिमें सहायक बनूँ।'

### क्या हमें कमी मिला है ?

क्या हमें पूर्वजन्मके सम्बन्धियोंद्वारा किये श्राद्धका फल इस जन्ममें मिल रहा है ? आखिर हम भी तो आस्तिक पुत्रोंके पिता हो सकते हैं ? हमारे लिये पूर्वजन्मके सम्बन्धी भी श्राद्ध करते ही होंगे—परंतु क्या हमें कभी यह अनुभव हुआ है कि अमुक वस्तु हमें श्राद्धके उपलक्ष्यमें प्राप्त हुई है ?

इत्यादि शङ्काओंकी निवृत्तिके लिये कहा जा सकता है कि संसारमें हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि सभी जीव दो प्रकारके हैं—एक तृप्त और दूसरे अतृप्त। जैसे एक कुत्ता आँगनके एक कोनेमें शान्त बैठा रहता है। गृहस्वामी जो प्राप्त उसको प्रदान करता है, वह उसे खाकर ही संतोष कर लेता है; परंतु दूसरा कुत्ता इसके सर्वथा विपरीत इस ताकमें रहता है कि घरवालोंकी जरा-सी आँख चूके तो वह चौकेमें घुसकर रोटी उठाकर रफूचकर हो जाय। इसी प्रकार अधिकांश गाय, भैंस आदि—मालिक जो चारा उनके आगे डालता है, उसे खाकर ही संतोष करती हैं; परंतु



कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनको हरे खेत खानेकी बुरी आदत होती है। गोपाल उनके गलेमें घंटी बाँधता है, मोटा लकड़ बाँधता है; परंतु फिर भी वे काँटोंकी ऊँची बाड़ें लाँधकर हरा खेत खाये बिना नहीं मानती हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी दो प्रकारके स्वभावके हैं—एक तृप्त, दूसरे अतृप्त। तृप्त वह है, जो अपने घरका चनाचूरी—जो भी भोजन मिलता है—उसे खाकर ही संतुष्ट रहता है। उसे अपने पड़ोसमें रहते धनीके उन लत्तीस पदार्थोंकी कभी लालसा नहीं होती। परंतु ऐसे भी जंगी जीव हैं, जो धनी-मानी हैं, दिनभर नानाविध पदार्थ चरते रहते हैं; परंतु उनकी भोगोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। रातको सोते-सोते भी उनको खाने-पीनेके ही स्वप्न आते हैं। बस, समझ लीजिये कि जो प्राणी तृप्तकोटिके हैं, वे ये हैं, जिनके कि पूर्वजन्मके सम्बन्धी श्राद्ध-कृत्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनको यह तृप्ति प्राप्त है। दूसरी कोटिके अप्रुप्त व्यक्ति वे हैं, जिनके पूर्वजन्मके नास्तिक पुत्र श्राद्धादि नहीं करते। वे लालसाके गर्तमें पड़े भटकते हैं।

### पितरोंको दिखा दो तो हम मानें ?

यह नास्तिकोंका अन्तिम ब्रह्मास्त्र है। परंतु इन सज्जनों-को यह विदित नहीं कि स्थूलशरीर ही नेत्रका विषय है। सूक्ष्म आत्मा चर्मचक्षुओंका विषय नहीं। मरते हुए प्राणीका

जीव सबके देखते-देखते निकल जाता है, परंतु वह किसीको भी देख नहीं पड़ता। अतः जो जीव शरीरसे निकल गया है, वही श्राद्धमें आवाहन करनेपर आता है। जब वह जाता हुआ नहीं देख पड़ा, तब वह आता हुआ कैसे दीखेगा ! जातेको नास्तिक दिखा दें तो हम आतेको दिखा देंगे। योगी और दिव्य चक्षुवालोंको ही पितृदर्शन होते हैं। भगवान् रामके वनमें श्राद्ध करते समय सीता माताने निमग्नित ब्राह्मणोंमें दशरथजीके दर्शन किये थे। भीष्मजीने श्राद्धकालमें अपने पिता शान्तनुके हाथके दर्शन किये थे। यह इतिहास-पुराण ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। वस्तुतः मृत व्यक्तिके आत्माको शान्ति पहुँचानेकी इच्छा एक स्वाभाविक मानव-भावना है। मुसलमान कब्रोंपर दीपक जलाते हैं, फातिहा पढ़ते हैं, ताजिया निकालते हैं। रोमन कैथलिक ईसाई कब्रोंपर पुष्पवाटिका लगाते हैं, दूधकी बोतलें रखते हैं, क्रॉसका चिह्न खड़ा करते हैं। आर्यसमाजी अजमेरमें स्वामी दयानन्दजीके चितास्थानपर अखण्ड अग्नि जला रहे हैं। अन्यान्य सभ्य लोग भी सभा जुटाकर एक मिनट सब मौन खड़े होकर खास प्रार्थना करते हैं; श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं। ये सब विभिन्न क्रियाएँ श्राद्धकी प्रतिनिधिभूत क्रियाएँ ही हैं। यह विषय इतना विस्तृत और परिश्रमगम्य है कि जिसे एक लेख क्या किसी एक ग्रन्थमें भी पूरा-का-पूरा नहीं लिखा जा सकता।\*

## नरकोंसे मनुष्योनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघटनम् । नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् ॥

परस्वापहरणाशौचं देवतानां च कुत्सना । निवृत्त्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः ॥

यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता । उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥

( मार्कण्डेयपुराण १५ । ३९-४१ )

परनिन्दा करना, कृतघ्नता ( उपकार करनेवालेका उपकार न मानना ), दूसरेके गुप्त भेदको खोलना, निष्ठुरता, निर्दयता, परस्त्री या परपुरुषसेवन, दूसरेके हकका हरण करना, अपवित्र रहना, देवताओंकी निन्दा करना, लल-कपटसे मनुष्योंको ठगना, कंजूसी करना, मनुष्योंकी हत्या करना इत्यादि निषिद्ध कर्मोंमें निरन्तर लगे रहना—नरक भोगकर लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान है।

\* जिज्ञासुओंको अधिक जाननेकी इच्छा हो तो ये लेखक महोदयके 'क्यों' नामक सहस्रपृष्ठात्मक ग्रन्थके उत्तरार्धमें देख सकते हैं। यह ग्रन्थ १०३-ए, कमलानगर, दिल्लीमें मिल सकता है।



## महामृत्युञ्जयका चमत्कार

( लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा )

मेरे जीवनमें एक समय ऐसा आया, जब मेरे सभी कार्य उलटे हो रहे थे। चारों ओर परेशानियाँ-ही-परेशानियाँ दिखायी दे रही थीं। अच्छे कार्यका भी परिणाम बुरा ही निकल रहा था। पूज्य पिताजीके आदेशसे मैं जन्मपत्रिका लेकर दैवज्ञके पास गया। उन्होंने पत्रिका देखकर कौनसी दशा चल रही है, यह कुछ नहीं कहा। कहा बस इतना ही कि 'यदि अपना कल्याण चाहते हो तो स्वयं 'महामृत्युञ्जय'का जप करो। तुम ब्राह्मण हो। दूसरेसे जप करानेसे तुम्हें फल नहीं मिलेगा। यदि इसके लिये तैयार हो तो मैं जप बतलाता हूँ।' अतः मैं इसके लिये तैयार हो गया। पण्डितजीके आदेशसे मैंने सं० १९९७ श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके शुभ मुहूर्तसे महामृत्युञ्जयका जप आरम्भ किया। तत्काल फल मिलने लगा। कई उलझे हुए कार्य अनायास ही सुलझ गये। बिगड़े काम बन गये। जप बराबर चलता रहा। सं० २००१ माघ शुक्ल ११ को अचानक जब मैं एक यन्त्रको खोलकर, वापस यथास्थान बैठाकर उसका परीक्षण कर रहा था। दस अक्षरबलसे चलनेवाला यन्त्र एकाएक रुक गया जब कि बिजली चालू ही थी। यन्त्र रुक जानेपर पता चला कि मेरा हाथ उसमें आ गया है। दूसरे आदमीने बिजली बंद की। यन्त्रको हाथोंसे उलटा घुमाकर हाथ निकाला गया। हथेली और अँगुलियाँ तो बच गयीं, पर अंगूठा मूलीकी तरह कटकर पतली चमड़ीके साथ लटक रहा था। मुझे किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ, न दर्द ही। पर एक व्यक्ति इसे देखकर मूर्च्छित हो गया। अस्पताल गया। पट्टी बाँधकर घर आ गया, तब कहीं दर्द चालू हुआ।

जैसे ही पण्डितजीको समाचार मिला, उन्होंने यही कहा 'अच्छा हुआ'। तब कहीं उन्होंने आकर पूज्य पिताजीको बतलाया कि 'प्राणघातक मार्केश था, जो अब टल गया है। शूलीकी पीड़ा सुईमें बदल गयी।' चार-पाँच मास मैं बहुत बीमार रहा। दुआ और दवा दोनों चलते रहे। जो कोई मिलने आता, यही कहता—'सीधे हाथका अंगूठा कटा है। अब लिखना कैसे होगा?' मैं कोई उत्तर न देकर मौन रह जाता; क्योंकि अस्पताल जानेके पहले मैंने अपने सीधे हाथसे हस्ताक्षर करके देख लिये थे। अतः हितैषियोंके

निराशावादी कथनका मुझपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। मेरा आत्मबल अक्षुण्ण रहा। शारीरिक दृष्टिसे मैं बीमार था, पर मेरा मानसिक बल अक्षुण्ण बना रहा।

डाक्टरद्वारा गलत दंगसे पट्टी बाँधनेसे मेरी अँगुलियाँ पहले तो सूजीं और बादमें पतली पड़ गयीं। पर सद्भाग्यसे जर्मनीसे लौटे डा० चम्पत बसु मिल गये। उनकी चिकित्सासे हाथ बच गया। अन्यथा रक्तसंचार न होनेसे हाथ सूख जाता।

भगवान् महामृत्युञ्जयकी जप-विधि यही सरल है। जो इस प्रकार है—१. संकल्प, २. श्रीगायत्रीकी एक माला, ३. महामृत्युञ्जयकी पाँच माला और ४. श्रीगायत्रीकी एक माला।

### महामृत्युञ्जय जप—

अथ पदन्यासः—

ॐ त्र्यम्बकं शिरसि । यजामहे भुवोः । सुगन्धिम्  
इक्षोः । पुष्टिर्वर्द्धनं मुखे । उर्वारकं कण्ठे । इव हृदये ।  
बन्धनात् उदरे । मृत्योः गुह्ये । मुक्षीय ऊर्वोः । मां जान्वोः ।  
अमृतात् पादयोः । इति पदन्यासः ।

अथ मृत्युञ्जयध्यानम्—

ॐ हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराष्णावधन्तं शिरो  
द्वाभ्यां तौ दधत् मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ।  
अङ्गन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं  
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाम्भातं त्रिनेत्रं भजे ॥  
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम् ।  
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥

अथ बृहन्मन्त्रकी पाँच माला जप—

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं  
यजामहे सुगन्धिर्गुष्टिर्वर्द्धनम् ।  
उर्वारकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।  
भूर्भुवः स्वरो जूं सः हौं ॐ ।

मैं तो उपर्युक्त मन्त्रका जप आज भी कर रहा हूँ। पर कुछ विश्वजन निम्नलिखित छोटे मन्त्रके लिये भी कहते हैं—

ॐ जूं सः सः जूं ॐ ।

इस प्रकार महामृत्युञ्जयके वैदिक चमत्कारसे उष दिन



यन्त्र स्वयं ही रुक गया और मेरा हाथ बच गया। अन्यथा, सीधा हाथ कट जानेसे मैं बेवस हो जाता। मेरा पढ़ना-लिखना ही नहीं छूट जाता, मेरा जीवन भी दूभर हो जाता,

जो मृत्युसे भी अधिक भयंकर और कष्टदायक था। हाथके साथ ही कोई नाड़ी कट जाती तो मृत्यु तो निश्चित ही थी। मेरा तो पुनर्जन्म ही भगवान् मृत्युञ्जयकी कृपासे हुआ।

## अध्यात्म-लोकका विज्ञानात्मक आलोक

( लेखक—श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम० ए०, बार-पट-ला, बिदावारिधि )

सन् १९४३में जब द्वितीय महायुद्धकी ज्वाला समस्त संसारको व्रत कर रही थी, मुझे जयपुरके एक होटलमें अमेरिकीनोंके साथ ठहरनेका सुयोग प्राप्त हुआ। वह दल जापानके विरुद्ध इस ज्वालामें कूदने जा रहा था। उसका नेता अमेरिकाके किसी विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका प्राध्यापक था। हम दोनोंके कमरे निकट होनेके कारण परस्पर सम्पर्क स्थापित हो गया और विविध विषयोंपर वार्तालापकी नौबत शामकी चायपर आ गयी। आत्माके बारेमें चर्चा छिड़नेपर वे कहने लगे कि 'जिसे आत्मा माना जाता है, वह हमारे शरीरके परमाणुओंके संघर्षसे उत्पन्न हुई चेतना, भौतिक विज्ञानके अनुसार मानी जाती है और देहका नाश होनेपर वह नष्ट हो जाती है।' मुझसे प्रश्न करनेपर मैंने कहा कि 'भारतीय संस्कृतिके मूलमें चार मुख्य सिद्धान्त हैं—(१) आत्मा, (२) कर्मफल, (३) परलोक और (४) पुनर्जन्म।' सार यह है कि जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार परलोकमें जाता है या भूतलपर फिर जन्म लेता है।

पश्चात्त्य देशोंमें अधिकांश विज्ञानवेत्ताओंके कोशमें आत्माके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारे यहाँ भी इस प्रकारके अनेक विद्वान् हैं, जो आत्मा, परमात्मा, परलोक और पुनर्जन्मको अन्धविश्वासकी बकवास बतलाते हैं। ता० २२।१०।१९६८ के 'इण्डियन एक्सप्रेस' नामक दैनिक पत्रमें 'पुनर्जन्म और उसकी स्मृति'के सम्बन्धमें कतिपय भारतीय विज्ञान-विशेषज्ञोंके तत्सम्बन्धी विचार लिखे गये हैं। एक प्रोफेसरने फरमाया कि 'हमारे यहाँके नितान्त अनपढ़ ग्रामीणोंमें पुनर्जन्मके वृत्तान्त मिले हैं और अंधविश्वासके अतिरिक्त उनका कोई आधार नहीं है।' दूसरे एक महोदयका मत था कि 'बच्चोंमें पुनर्जन्मकी स्मृति हिस्टीरिया रोगकी सूचक है।'।

हमारे धर्मका मूलतत्त्व यह है कि नश्वर देहमें चेतन

अमर आत्मा विद्यमान है और प्रकृतिके सारे पदार्थ अचेतन हैं। आध्यात्मिक प्रश्नोंका विचार वेदान्त करता है और विज्ञानका क्षेत्र भौतिक तत्त्व है। मनीषी बेकन-के शब्दोंमें 'हम प्रकृतिके समस्त प्रश्न प्रस्तुत करते हैं और उससे उपयुक्त उत्तर प्राप्त करते हैं।' वैज्ञानिक परिपाटीका मूल सिद्धान्त यह है कि किसी घटनाकी खोज पूर्वाग्रहहित होकर निरीक्षण या परीक्षणद्वारा की जाय। निरीक्षणमें किसी घटनाका अवलोकन इन्द्रियोंद्वारा किया जाता है। उदाहरणके लिये सूर्य या चन्द्रके ग्रहणको हम केवल देख सकते हैं। चन्द्रमा और पृथ्वीकी गतिका ज्ञान प्राप्त होनेके कारण हम गणितशास्त्रद्वारा अगले ग्रहणका निश्चित करना बतला सकते हैं। परीक्षण प्रयोगात्मक है और घटनाएँ हमारे नियन्त्रणमें घटित की जाती हैं। उदाहरणके लिये हम प्रयोगद्वारा यह जान सकते हैं कि वस्तुका आयतन गरम करनेपर बढ़ता है और ठंड पाकर सिकुड़ जाता है। किसी धातुका गोला जो लोहेके छलनेमेंसे होकर निकल जाता है, पर वह गरम किये जानेपर उसी छलनेमेंसे नहीं गुजर सकता। जब ठंडा पानी डालनेपर वह शीतल हो जाता है, तब छलनेमेंसे होकर निकल जाता है। अब विचारणीय यह है कि आध्यात्मिक समस्याओंके सुलझानेमें वैज्ञानिक प्रणाली कहाँतक सहायक हो सकती है? यह निस्संदेह है कि प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अवलोकनका प्रयोग होता है। जैसे कर्मोंका फल और पूर्वजन्मकी स्मृति अवलोकन और अनुभवके अन्तर्गत है।

आध्यात्मिक रहस्योंको जाननेके लिये पदे-पदे बाधाओं और समस्याओंका सामना करना पड़ता है। ऐसे रहस्योंके बारेमें कहा गया है—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' (तैत्तिरीय उप० २।४); क्योंकि वे अचिन्त्य हैं। महाभारतके भीष्मपर्वमें अचिन्त्यकी व्याख्या इस प्रकार है—



अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्कर्णेन साधयेत् ।

प्रकृतिभ्यः परं यत् तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥

( ५।१२ )

अर्थात् 'जो पदार्थ इन्द्रियातीत होनेके कारण चिन्तन नहीं किये जा सकते, उनका निश्चय केवल तर्कसे नहीं हो सकता । जो मूल प्रकृतिसे परे हैं वे पदार्थ अचिन्त्य कहलाते हैं ।' इस भावको शेषसपीयरने निज नाटक 'हेम-लेट'में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"There are more things in heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy."

अर्थात् 'स्वर्गमें और पृथ्वीपर ऐसे अनेक 'पदार्थ' हैं, जिनके सम्बन्धमें दर्शन-शास्त्र कल्पना तक नहीं करता ।' ऐसी हालतमें प्रश्न उठता है कि 'जो पदार्थ निरीक्षण, परीक्षण या चिन्तनकी गतिसे परे हैं, उनकी जानकारी कैसे की जाय ?' प्रश्नका उत्तर यह है कि वे स्वयंवेद्य या अनुभवगम्य हैं । भर्तृहरिके शब्दोंमें स्वानुभूत्येक-मानाय—अर्थात् उनके अस्तित्वका एकमात्र प्रमाण निज अनुभव है ।' अनुभव पुरुषोंके अन्तःकरणमें होता है । अतएव पवित्र अन्तःकरणवाले महात्माओंका अनुमान ही प्रमाण माना गया है । आत्मपुरुषका वचन प्रमाणोंके अन्तर्गत है । प्लेटोने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' ( Republic ) में ऐसे पुरुषको 'आप्त' ( prudent ) कहा है और उसीके निर्णयको अन्तिम माना है । वही महाजन कहलाने योग्य है और उसका आचरण दूसरोंके लिये पथ-प्रदर्शक है । जैसा कि कहा गया है—'महाजनो येन गतः स पन्थाः ।' सच्चा मार्ग वही है, जिसपर महाजन चलता है । मनीषी ए. हक्स्टेने अपनी पुस्तक ( Perennial Philosophy ) 'शाश्वत दर्शनशास्त्र'में संतों और महात्माओंके विचारोंको ज्ञानका मूलाधार बतलाया है ।

सृष्टि दो प्रकारकी है—जड़ या अचेतन और चेतन । हमारे सृष्टि-विज्ञानके अनुसार चेतन सृष्टिके चार विभाग इस तरह हैं—( १ ) जरायुज ( वह जीव, जो आवरणमें लिपटा उत्पन्न हो ), ( २ ) अण्डज ( अंडेसे पैदा होनेवाले जीव ), ( ३ ) स्वेदज ( पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले जीव ), ( ४ ) उद्भिज्ज ( जो भूमि फोड़कर निकलते हैं, जैसे पेड़-पौधे ) । श्री. जे. सी. बोसने अपने वैज्ञानिक ग्रन्थोंसे यह सिद्ध कर दिखाया कि वनस्पतिमें

चेतना है । जड़-जगत् पञ्चभूतात्मक हैं और आकाशादि किसी भौतिक तत्त्वमें चेतना नहीं है । आधिभौतिक विज्ञानने उन्नति करते-करते ऐसे यन्त्रोंका आविष्कार कर दिया है, जो गणना, अनुवाद, संदेश इत्यादि कठिन कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं । वैज्ञानिक अणु-बम-से लाखों प्राणियोंकी हत्या कर सकता है, पर एक अणु-में भी चेतनता उत्पन्न नहीं कर सकता । अमेरिकाके विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री जे. बी. राइन अपने ग्रन्थ ( The Reach of the Mind ) के प्रारम्भमें लिखते हैं—

"Science cannot explain what the human mind really is and how it works with the brain. No one even pretends to know how consciousness is produced."

'विज्ञान यह नहीं बतला सकता कि मानव-मन वास्तव-में क्या है और वह मस्तिष्कके साथ कैसे काम करता है । कोई वैज्ञानिक यह जाननेका दावा तक नहीं कर सकता कि चेतना कैसे पैदा होती है ।'

कहा जाता है कि शरीरका चेतन होना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है । शंकरने ब्रह्मसूत्रोंपर निज शारीरक-भाष्यमें देहात्म-वादका पूरी तरह खण्डन किया है । वे चेतनाका कारण आत्मा मानते हैं । धर्मी और उसका धर्म अभिन्न है । अग्नि धर्मी और जलाना या तपाना उसका धर्म है । जहाँ आग है, वहाँ यह गुण देखा जायगा । यदि शरीरका धर्म चेतना होती तो वह सदा शरीरके साथ रहती । पर मरनेपर शरीर पड़ा रहता है और उसमें चेतनाका अभाव हो जाता है । योगवासिष्ठमें देहके चेतनवत् प्रतीत होनेका कारण इस प्रकार बतलाया गया है—

अग्निसंगाद् यथा लोहमग्नित्वमुपगच्छति ।

आत्मसङ्गात्तथा गच्छत्यात्मतामिन्द्रियादिकम् ॥

'जैसे लोहा अग्निके सङ्गसे तपकर अग्निमय यानी प्रकाशवान् प्रतीत होता है, वैसे ही देह और इन्द्रियाँ इत्यादि आत्माके संसर्गसे आत्माके ही समान चेतन दीख पड़ती हैं ।' परम योगी शंकरने प्रयोगात्मक पद्धतिसे यह प्रमाणित कर दिया कि 'जब उनके आत्माने परकायाप्रवेश किया तो उनका शरीर शवमात्र रह गया और जब वे फिर अपने देहमें आ गये तो वह चेतन हो गया ।' साप्ताहिक हिंदुस्तानके १७-५-१९५९के अङ्कमें भारतीय सेनासे अवसरप्राप्त अंग्रेज अफसर श्री एल० पी० फैरलका



परकायाप्रवेश और पुनर्जन्मके बारेमें रोचक लेख प्रकाशित हुआ था। वे अध्यात्मवादमें विश्वास रखते थे और किसी योगीसे आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। सन् १९३९में दैवयोगसे उन्हें एक विचित्र घटना देखनेका मौका मिला। उन्होंने देखा कि नदीमें किसी युवकका शव बहता हुआ जा रहा है और थोड़ी देरके बाद उन्होंने उसीको किनारेपर चलते-फिरते देखा। अपने अर्दलीको उसे लिवा लानेके लिये दौड़ाया। वह उसे लिवा लाया और विस्मय-विस्फारित नेत्रोंसे निवेदन किया कि नदीके तटपर एक वृद्ध साधुकी लाश पड़ी हुई है। फौरनके प्रश्नोत्तरमें उस युवकने कहा कि 'वह शव मेरा ही है और योगबलसे मैंने ही इस शरीरमें प्रवेश किया है।' कुमायूँके पहाड़ोंमें भ्रमण करते हुए फौरनको पुनर्जन्मके सम्बन्धमें एक योगीकी कृपासे प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुआ।

अब पुनर्जन्मकी समस्याका विवेचन किया जाता है। मनुष्य इस जन्ममें भले या बुरे जैसे कर्म करता है, तदनुसार उसे देहत्याग करनेपर अगला जन्म या लोक मिलता है। अतएव इस विश्वासका प्रभूत प्रभाव प्रत्येक पुरुषपर पड़ना स्वाभाविक है। इस विश्वासका अभाव अयोग्यताका कारण होता है। समस्या यह है कि ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जायँ कि इस युगके मानवोंपर प्रभाव पड़ सके। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म अन्योन्याश्रय हैं और जीवात्माकी अमरतापर निर्भर हैं। आध्यात्मिक क्षेत्रमें सहस्रों अनुसंधानोंने पुनर्जन्मके दो प्रबल प्रमाण प्राप्त किये हैं— (१) पूर्वजन्मकी स्मृति और (२) जन्मजात विलक्षण प्रतिभा। सर्वप्रथम स्मृतिके सम्बन्धमें मनोविज्ञानके नियमोंके अनुसार विचार करना है। इन्द्रियोंद्वारा जो अनुभव होते हैं, वे हमारे मनोमय कोशमें जमा रहते हैं और वे इस प्रकार अन्तःकरणके संस्कार बन जाते हैं। इस जमा रहनेको धारणा (Retentiveness) कहते हैं। यही सिद्धान्त योगदर्शनके सूत्र 'अनुभूतविषयासंग्रमोषः स्मृतिः।' (१-११) अर्थात् अनुभूत विषयका न चोरा या खोया जाना 'स्मृति' है। तात्पर्य यह है कि धारणा उसी बातकी बनी रहती है, जो अनुभवमें आ गयी है। मनोविज्ञान सिद्ध करता है कि 'वास्तवमें किसी अनुभवकी स्मृतिका लोप नहीं होता।' चित्तके ऐसे संस्कार किसी निमित्तको पाकर स्फुरित हो जाते हैं और इस प्रक्रियाका स्मरण या याद आ जाना (Recall) कहलाता है। तीसरी प्रक्रिया

स्मृतिके स्थान, पुरुष इत्यादि किसी विषयकी पहचान है और उसे पहचान (Recognition) कहा जाता है। अनेक पत्रोंमें प्रकाशित घटनाओंकी सहायतासे पूर्वजन्मके सम्बन्धमें ये तीनों सिद्धान्त स्पष्ट किये जाते हैं। \*अतएव स्मृतिका मनोविज्ञान पूर्वजन्मको सिद्ध करता है।

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें प्रतिभाके पहलूसे विचार करना जरूरी है। ता० १०-११-१९६८ के साप्ताहिक 'सण्डे ट्रेण्डर्ड' (Sunday Standard) के दिल्ली संस्करणमें यह समाचार छपा है कि 'अहमदाबादका एक बालक तीन वर्षकी अवस्थासे ही गुजराती कहानियाँ कहने लगा और वह अब चार वर्षका है। उसका कहानी-संग्रह (The Black, Black Rain) बम्बईसे हालमें ही प्रकाशित हुआ है। लिखना-पढ़ना तो वह अब किन्डर्गार्टन स्कूलमें सीख रहा है।' संसारका इतिहास प्रतिभाशाली बालकोंके विचित्र वृत्तान्तोंसे भरा हुआ है। पाश्चात्य जगत्में जे० एस० मिलने छः सालकी अवस्थामें यूनानी भाषाकी महान् कृतियोंको पढ़ डाला और मोजार्टने छठे सालमें ही संगीतकी रचना कर प्रख्याति प्राप्त की। हमारे देशमें अगणित प्रतिभाशाली बालकोंने अपनी गुण-गरिमासे प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनमें शंकराचार्यका नाम अग्रगण्य है। वे आठ वर्षकी अवस्थामें चारों वेदोंमें और बारह वर्षके होनेतक सब शास्त्रोंमें पारंगत हो गये और सोलह साल पूरे करनेपर उपनिषद्, वेदान्तदर्शन और गीतापर भाष्य लिख डाले। सारे भारतमें वैदिक धर्म और अद्वैतवादका प्रचार करते हुए पुरी, शृंगेरी, द्वारका और बदरीनाथमें मठोंकी स्थापना की। इन मठोंके अध्यक्ष परम विद्वान् होते हैं और 'शंकराचार्य' कहलाते हैं। आदि-शंकराचार्यकी-सी प्रतिभाको 'जन्मजा सिद्धि'की संज्ञा दी जाती है। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनके कैवल्यपादके प्रथम सूत्रमें जो पाँच प्रकारकी सिद्धियाँ गिनायी हैं, उनमें इस सिद्धिको प्रथम स्थान दिया गया है। पूर्वजन्ममें जीवात्मा जो ज्ञान प्राप्त करता है, वह उसके सूक्ष्म-शरीरमें बना रहता है और उसका पुनर्जन्म होनेपर प्रतिभाके रूपमें प्रकट होता है। गीताके अध्याय १५ श्लोक ७-८ में बतलाया गया है कि 'जैसे वायु गन्धको साथ ले जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा स्थूलशरीरको छोड़ते हुए सूक्ष्मशरीरको

\* इसी अङ्कमें ऐसी बहुत-सी घटनाएँ छपी हैं।



साथ लेता हुआ नयी देहमें जाता है। यही बात छठे अध्यायमें कही गयी है कि 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पूर्वदेहिकम्।' ( ६।४३ ) अर्थात् जब पुरुष मतिमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है तो पहले देहमें प्राप्त किये हुए बुद्धिके संस्कारोंका उसे अनायास ही लाभ मिलता है। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करनेमें उसका प्रयास सरल और सहज हो जाता है।

शास्त्रोंमें पूर्वजन्मकी स्मृतिको 'जाति-स्मर' या 'जाति-ज्ञान' कहा गया है। ऐतरेयोपनिषद् ( २।५ ) में और बृहदारण्यक ( १।४।१० ) में वामदेवश्रुषिको पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिका उल्लेख है। योगदर्शनके सूत्र ( ३।१८ ) 'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।' पर व्यास-भाष्यमें योगीश्वर जैगीषव्यको अनेक जन्मान्तरोंकी स्मृति होनी बतलायी गयी है। बुद्ध भगवान्की जातक कथाओंमें उनके पूर्वजन्मोंकी स्मृतिका विशद वर्णन है। भारतमें परामनोविज्ञानसम्बन्धी संस्थाओंने ऐसी अनेक घटनाओंकी खोज की है, जिनमें पूर्वजन्मोंकी स्मृति सच्ची साबित हुई है। इन घटनाओंसे यह प्रमाणित होता है कि अनेक पूर्वजन्मोंकी स्मृति धारण करनेवाला वही जीवात्मा सतत विद्यमान रहता है। इसी सिद्धान्तका वेदान्तदर्शनके सूत्र 'ज्ञोऽत एव।' ( २।३।१८ ) में अर्थात् 'जीवात्मा जन्म-मरणसे रहित है, इसलिये वह पूर्वजन्मोंको जानता है'—प्रतिपादन किया गया है। यह अनुभवसिद्ध है कि बालकपन, जवानी और बुढ़ापेमें हमारे शरीरकी अवस्थाएँ बदलनेपर भी प्रत्येक पुरुषको लड़कपनकी कई बातें याद रहती हैं; क्योंकि वह ( जीवात्मा ) नहीं बदलता। शरीर शब्दकी ( शृ+ईरन् ) व्युत्पत्ति बतलाती है कि वह क्षय होता जाता है और शरीर-विज्ञानके अनुसार जब धातुओंका नवीनीकरण क्षतिकी गतिसे पिछड़ने लगता है, तब बुढ़ापा और निर्बलताका आरम्भ होने लगता है। जिस प्रकार किसी कार्यालयमें पुराने कर्मचारियोंके अवसरप्राप्त होनेपर नये नौकर उनकी जगहोंपर आते रहते हैं, उसी प्रकार हमारी देहमें भी उपर्युक्त क्रम चलता रहता है।

हमारे सामने अब यह प्रश्न आता है कि पूर्वजन्मकी स्मृतिका आश्रय कौन है? कठोपनिषद्के श्लोक 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।' ( १।३।४ ) अर्थात् 'तत्त्वज्ञानी जीवात्माको आत्मा और सूक्ष्मशरीरसे युक्त मानते हैं।' आत्मा

निर्विकार होनेके कारण संस्कारोंके विकारोंसे रहित है जैसा कि गीतामें कहा है—'सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।' ( १३।३२ ) अर्थात् 'जिस प्रकार आकाश लिपायमान नहीं होता है, उसी प्रकार देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा विकारोंसे निर्लिप्त रहता है।' जैसे कागजके दो पृष्ठ होते हैं—अगला और पिछला, वैसे ही जीवात्माका अग्रिम आत्मा है और पीछे सूक्ष्मशरीर है। गीताके अध्याय ७ श्लोक ४-५ के अनुसार सूक्ष्मशरीर परमात्माकी अपरा प्रकृति और जीवरूप परा प्रकृति है। अध्याय १५ श्लोक ७ में जीवात्माको परमात्माका ही अंश बतलाया गया है, अतएव वह भी दो प्रकृतिवाला है। वेदान्तदर्शनके सूत्र 'तस्य च नित्यत्वात्।' में जीवात्माको नित्य माना गया है। गीताके अध्याय १३ में पुरुष और प्रकृति दोनोंको 'अनादि' कहा है। इसी अपरा प्रकृतिके दो भाग हैं—स्थूलशरीर और सूक्ष्म-शरीर। स्थूलशरीरके मरणपर—परित्याग करनेपर जीवात्माका सम्बन्ध सूक्ष्मशरीरसे बना रहता है और उसीमें पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिका निवास है। सूक्ष्मदेह प्रकृतिजन्य है, अतएव प्रकृतिके स्वरूपका आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंसे विवेचन करना है।

सांख्यदर्शनके अनुसार मुख्य तत्त्व दो हैं—चित् या पुरुष और अचित् या प्रकृति। इन दोनोंके सम्पर्कसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकृतिके गुण माने गये हैं। अतः वह त्रिगुणात्मिका कहलाती है। यह मूलप्रकृति अव्यक्त है और सूक्ष्मशरीरके बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ इत्यादि प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं। अन्तःकरण और भौतिक पदार्थ सजातीय होनेके कारण एक दूसरेको प्रभावित करते हैं। कहा भी है—'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।' आहार शुद्ध हो तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। इसीलिये गीतामें 'आहाराः सात्त्विकप्रियाः।' ( १७।८ ) का उल्लेख है। तामसप्रिय भोजनके कारण हमारा देश अयोगातिको प्राप्त हो रहा है। सूक्ष्मशरीरका प्रत्येक तत्त्व अगोचर होता है और अनुमान ही उसका प्रमाण है। उदाहरणके लिये प्रेम, दया इत्यादि अन्तःकरणके धर्म या गुण हैं। बाहरी व्यवहारसे उनके अस्तित्वका अनुमान होता है। इस प्रकारकी सात्त्विक चेष्टाएँ लक्षणोंसे जानी जाती हैं। बुद्धिको 'परेर्ज्ञितज्ञानफला' कहा है। अर्थात् 'दूसरेकी चित्त-वृत्तिका ज्ञान उसकी चेष्टाओंसे बुद्धि कर लेती है।' सूक्ष्म-देहके आकारके बारेमें 'श्वेताश्वतरोपनिषद्'में कहा गया है—



‘बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।’ ( ५-९ ) अर्थात् ‘वह बालके नोकके दस हजार भाग करनेपर एक भाग-जितना सूक्ष्म है ।’ स्थूलशरीरसे वियोग होनेपर जीवात्मा इसी लिङ्गदेहसे युक्त रहता है और वह योगबलसे परकायामें प्रवेश कर सकता है । वह आत्मबलसे पूर्व स्थूलशरीरमें प्रकट हो जाता है । वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्ड, अध्याय ११९ में यह वर्णन है कि ‘सीताजीकी अग्निपरीक्षाके पश्चात् इन्द्रलोकसे दशरथजी विमानद्वारा आये और उन्होंने रामको गोदमें लिया ।’ महाभारतमें भी उल्लेख है कि ‘दिवंगत परीक्षित अपने प्रिय पुत्र जनमेजयसे मिलने पूर्वदेह धारणकर आये थे ।’ जीवात्मा प्रेतयोनिको प्राप्त करनेपर सूक्ष्मशरीर धारण करता है, पर वह स्थूलदेहमें भी प्रकट हो सकता है ।

इस जन्म और पूर्वजन्मोंकी स्मृतियोंका सम्भार जिस प्रकृतिसे उत्पन्न सूक्ष्मशरीरमें समाया हुआ है, उसके सम्बन्धमें आधिभौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे विचार करना है । आधुनिक अनुसंधानोंके अनुसार इस भूतलपर जो प्राकृतिक तत्त्व पाये जाते हैं, उनकी संख्या १०३ है और उनके दो भाग हैं । यथा ( १ ) धातु—लोहा, सोना, चाँदी इत्यादि और ( २ ) अधातु—ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन इत्यादि । ‘तत्त्व’ वह पदार्थ है जिसकी स्वतन्त्र इकाई ( unit ) है । प्रत्येक तत्त्व कणोंका समूह है । प्रातःकालमें सूर्यकी किरणें आपके कमरेमें प्रवेश करनेपर अनेक कण ऊपरको उठते हुए दिखायी देंगे । यदि हम सोनेके छोटे-से टुकड़ेको तोड़ते चले जायँ तो ऐसी सीमा आ जायगी जब हम अन्तिम कणको और अधिक छोटे कणोंमें नहीं तोड़ सकते । वास्तवमें भौतिक रीतियोंद्वारा इस अन्तिम सीमातक नहीं पहुँचा जा सकता; केवल ऐसा अनुमान किया जाता है । अनुमानको ही प्रमाण माननेका एकमात्र कारण यह है कि वह अन्तिम कण इतना सूक्ष्म होगा कि उसे न तो छू सकते हैं, न तोड़ सकते हैं और न किसी यन्त्रद्वारा देख सकते हैं । तत्त्वके ऐसे सूक्ष्म कणको ‘परमाणु’ ( Atom ) कहते हैं । परमाणु अकेले नहीं रहते । वे उसी तत्त्वके दूसरे परमाणुसे मिलकर उसका अणु ( MOLECULE ) बना लेते हैं । जब वे अन्य तत्त्वके परमाणुओंसे मिल जाते हैं तब यौगिक ( Compound ) अणु बनते हैं । अनुमान लगाया गया है कि यदि एक अरब परमाणुओंकी लाइन लगायी जाय तो उसकी लंबाई एक इंच होगी । इस अनुमानकी तुलना श्रुतिके इस बचनसे की जाय कि

जीवात्माका लिङ्ग या सूक्ष्मदेह “अद्भुतमात्रो रवितुल्य-रूपः ।” ( श्वे० ५-८ ) है ।

भौतिक विज्ञानकी आधुनिक प्रगतिने यह सिद्ध कर दिया है कि परमाणुको इलेक्ट्रॉन ( Electron ), प्रोटॉन ( Proton ) और न्यूट्रॉन ( Neutron ) में विभाजित किया जा सकता है । इस प्रकार परमाणुके इन तीन सूक्ष्म कणोंसे समस्त सृष्टिकी रचना है । सहस्रों वर्ष पहले कपिल मुनिने प्रकृतिको त्रिगुणात्मिका बतलाया और सांख्यदर्शनके सत्त्व, रज और तम गुणोंकी परमाणुके कणोंसे समानता है । कणाद मुनिने संसारमें सबसे प्रथम परमाणुको द्रव्यका अन्तिम रूप वैशेषिकदर्शनमें कहा है और उसे नित्य माना है । परमाणुकी रचनाके आधारपर ऐटम-बमकी विनाशकारी शक्तिका आविर्भाव हुआ । सूक्ष्मशरीरमें निहित स्मृतिके सम्बन्धमें कनाडाके प्रसिद्ध स्नायु-सर्जन डा० पेनफील्डके प्रयोगोंका विचित्र वर्णन अंग्रेजी मासिकपत्र ‘रीडर्स डाइजेस्ट’ सन् १९५८ के सितम्बर अङ्कमें प्रकाशित हुआ है । ‘भौतिक विज्ञानके अनुसार मानव-मस्तिष्कमें कोशों- ( Cells ) की संख्या दस अरब आँकी गयी है । सूक्ष्मशरीर, जिसमें स्मृति-संचय है, मस्तिष्कके अन्तर्गत है । प्रत्येक कोशमें परमाणुकी रचनाके अनुसार विद्युत्-कण विद्यमान हैं । ज्ञानवाहिनी और गतिवाहिनी नाड़ियाँ इन कोशोंसे संलग्न हैं और प्रत्येक इन्द्रियके अनुभवोंकी स्मृतियोंके अलग-अलग विभाग हैं । पेनफील्डने बाल-सरीखी महीन सुईको एक महिलाके दिमागके भरे गूदेमें लगाया तो वह वर्षों पुराने जच्चाखानेके अनुभवोंको इस प्रकार बतलाने लगी, मानो वे उसी समय उसके सामने हो रहे हों । इसी प्रकार एक युवतीको अपने परिवारसहित रहनेकी पंद्रह साल पहलेकी याद ताजा हो गयी और वह अपने मकानके ग्रामोफोनका गान सुनने लगी । इससे प्रमाणित होता है कि स्थूलशरीरमें अवयव विनाशशील हैं, पर सूक्ष्मशरीर नित्य बना रहता है ।’

सारांश यह है कि जिस पुरुषको भूतकालकी घटनाओंकी स्मृति वर्तमानमें बनी रहती है, उसका अस्तित्व दोनों कालोंमें होना स्वयंसिद्ध है और यही सिद्धान्त पूर्वजन्मकी स्मृतिके आधारपर पुनर्जन्मको सिद्ध करता है । अन्तमें स्वामी बिबेकानन्दके जीवनकी एक रोचक घटनाका वर्णन



किया जाता है। सन् १८९३ में शिकागोके धर्म-सम्मेलनमें भाग लेनेके बाद जब वे अमेरिकी अनेक नगरोंमें भाषण करते हुए भ्रमण कर रहे थे, तब उनकी मुलाकात उस देशके प्रसिद्ध वक्ता और विद्वान् इन्जरसोलसे हुई। वार्तालापके दौरानमें वे कहने लगे कि 'मैं अपने इस जीवन-कालमें संसारका पूरा आनन्द लेना चाहता हूँ; क्योंकि यह जीवन ही निश्चित और सब कुछ है।' स्वामीजी बोले कि 'मैं आत्माकी अमरतामें विश्वास करता हूँ और पुनर्जन्मको मानता हूँ। इसलिये मेरे लिये जल्दबाजी करनेका कोई कारण नहीं है। सब वस्तुओं और प्राणियोंमें परमात्माकी व्यापकतामें विश्वास होनेके कारण मेरा आनन्द असीम और

अनन्त है।' निज अनुभवके आधारपर श्रीशंकराचार्यने अपरोक्षानुभूतिमें कहा है—'दृष्टि ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।' (११६) अर्थात् 'जब जीवात्माकी दृष्टि ज्ञानमय हो जाती है, तब वह सारे संसारमें परमात्माको देखने लगता है।' वह एक सूफी भक्तके शब्दोंमें कह उठता है—'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।' पुनर्जन्मका नियामक परमेश्वर है और जिसे यह दृढ़ धारणा हो जाती है, वह इस जन्ममें शुभ कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होता है और गीताके अनुसार—'यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।' (६।२२) अर्थात् 'इस अवस्थामें स्थित हुआ पुरुष दारुण दुःखसे भी विचलित नहीं होता।'।

## गया-श्राद्धसे पुत्र

( लेखक—श्रीवेंकटलालजी बोझा )

गया-श्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके लिये परमावश्यक बताया गया है। पर आजके आधुनिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षामें पालित-पोषित लोग इसे ढोंगमात्र कहकर हँसी उड़ाते हैं। मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जिनको इसमें नाममात्रके लिये भी विश्वास नहीं था। घरमें श्राद्ध आदि होते थे, पर उनके लिये कोई महत्त्व नहीं था। परम्पराका निर्वाहमात्र था।

उनके कई पुत्र हुए। पर होते ही मर जाते थे। कई ज्योतिषियोंने भाग्यमें पुत्र नहीं है, कह दिया। पर सौभाग्यसे एक पण्डितजीने गया-श्राद्धका सुझाव दिया। वंशकी रक्षाके लिये विवश हो वे तैयार हुए। सबसे पहले श्मशानमें जा पितरोंको गया-श्राद्धके लिये आमन्त्रित किया और वहाँसे घर न आकर सीधे स्टेशन चले गये। पहले प्रयागमें त्रिवेणीस्नान और बादमें काशीमें गङ्गास्नान किया। पटना होते हुए पुनपुन गये। पहला पिण्डदान वहीं किया।

गयाजीमें सौभाग्यसे उन्हें उत्तम कर्मकाण्डी पण्डितजी मिल गये। उन्होंने 'कल्याण'के तीर्थार्थकोंमें बतायी विधिके अनुसार गयाजीमें सभी स्थानोंपर पिण्डदान शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न करवाया।

इसके दो वर्ष बाद पितरोंकी कृपासे उनके एक पुत्र हुआ और दो वर्ष बाद और एक पुत्र हुआ। इस प्रकार आज उनके एक नहीं, दो-दो पुत्र हैं। यह सब 'गया-श्राद्ध' का ही पुण्य-प्रताप वे मानते हैं। अब तो श्राद्ध और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हैं। उनका विश्वास दृढ़ हो गया है। वे अपने अनेक मित्रोंको गया-श्राद्धके लिये प्रेरितकर भेज चुके हैं।



## परलोक-सुधारके साधन

[ एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध संतके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश ]

[ नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा नहीं ]

( प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी )

यदि तुम अपना परलोक बनाना चाहते हो और यमदूर्तोंकी मार और नरकके द्वारसे बचना चाहते हो तो निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो, तभी तुम्हारा परलोक बन सकता है। अन्यथा लाख प्रयत्न करो, नहीं बन सकता।

१—भूलकर भी पूज्य गौ-ब्राह्मणोंका कभी अपमान और निरादर मत करो। इन्हें कष्ट मत पहुँचाओ और जितनी बने, इनकी सेवा करो।

२—भूलकर भी कभी अपनी बेटी, जिस घरमें विवाही हो, उस घरका भोजन मत करो, पानी मत पीओ। यहाँतक कि भतीजी, भानजी जहाँ विवाही हो, उसके घरका भी खाना-पीना पाप समझो। बेटीके घरका खाने-पीनेसे तेज नष्ट हो जाता है और परलोक बिगड़ता है।

३—भूलकर भी यथेच्छाचारी नेताओंके चक्रमें फँस जाति-पाँत तोड़कर विवाह-शादी मत करो। अपनी ही जातिमें सगोत्रादि बचाकर सनातन-धर्मानुसार शास्त्रानुसार विवाह करो। यदि तुमने जाति-पाँत तोड़कर विवाह किया तो उनसे उत्पन्न होनेवाली संतान वर्णसंकर होंगी और उनका दिया पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदि पितरोंको नहीं पहुँचेगा। परलोक बिगड़ जायगा। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो। इसीमें परम कल्याण है।

४—भूलकर भी देवमन्दिर, श्रीतुलसी-पीपल-गौ-साधु—, इनका अनादर-अपमान मत करो और इन्हें अपने दाहिने हाथ करके चलो और इनका मान-सम्मान करते रहो।

५—भूलकर भी पतितपावनी कलमलहारिणी भगवती भागीरथी श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीसरयू, श्रीत्रिवेणी आदिके समीप जाकर कोई पाप मत करो और इनमें धूको मत, साबुन-तेल मलकर इनमें स्नान मत करो, मल-मूत्रका त्याग मत करो और इन्हें बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे नमन करो।

६—भूलकर भी पर-स्त्रीको बुरी दृष्टिसे मत देखो। पर-स्त्रीसे अपना कोई सम्बन्ध मत रखो। साधु हो तो पर-स्त्रीका चित्र भी मत देखो और भगवान्के भक्त हो तो पर-स्त्रीसे बातें करना भी पाप समझो।

७—भूलकर भी कभी मांस, मछली, अंडे, शराब मत खाओ-पीओ। प्याज-लहसुन, सलजम, बिस्कुट, बरफ, चाय, कोकोकोला, बीड़ी-सिगरेट आदिका भी त्याग करो। नहीं तो परलोक बिगड़ना अवश्यम्भावी है।

८—भूलकर भी कभी सिनेमा मत देखो। जवान लड़कियोंके डान्स मत देखो। विषयासक्ति बढ़ानेवाले नाटक, ड्रामा, स्वांग मत देखो। नहीं तो, मन दूषित हो जायगा और परलोक बिगड़ जायगा।

९—भूलकर भी कभी गंदे उपन्यास, अश्लील साहित्य और नास्तिकोंकी किताबें मत पढ़ो। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१०—भूलकर भी कभी होटलोंका बना खाना मत खाओ। गोभक्षक तथा वर्जित जातिके हाथका बना भोजन मत करो। व्यभिचारिणी स्त्री, रजस्वला स्त्रीके हाथका बना मत खाओ। खान-पानमें पूरी-पूरी सावधानी बरतो। अपने घरका शुद्ध पवित्र चौकेका बना अन्न श्रीठाकुरजीको भोग लगा भोजन करो। हाथ-पैर धोकर, जमीनपर आसनपर बैठकर भोजन करो। अपवित्र वस्तु, जूँटी चीज मत खाओ। भोजन करके कुल्ले करो, हाथ-मुँह धोओ। खान-पानमें तनिक भी असावधानी हुई कि परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

११—भूलकर भी चीनीमिट्टीके पात्रोंमें, काँचके गिलासमें कोई भी चीज मत खाओ-पीओ। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट होते और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१२—भूलकर भी दानका एक पैसा भी मत खाओ। धर्मदिका एक पैसा भी मत हड़पो। धर्मशाला, गोशाला, मन्दिरका



रुपया मत खाओ। नहीं तो परलोक बिगड़ जायगा और तुम्हें परलोकमें गिद्ध नोच-नोचकर खायेंगे। संत कबीरकी यह बात याद रखो—

संसारिका टुकड़ा नौ-नौ आँगल दाँत ।  
भजन करे तो ऊबरे नातर फाड़े आँत ॥

किसीका टुकड़ा खाना भी जब पाप बताया गया है तो जो धर्मके नामपर रुपया इकट्ठा करके डकार जाते हैं, उनकी क्या घोर दुर्दशा होगी, इसे कौन कह सकता है।

१३—भूलकर भी धर्मद्रोहियोंसे, गो-ब्राह्मण-द्रोहियोंसे, नास्तिकोंसे और पाखंडियोंसे, व्यभिचारियोंसे, नशेवाजोंसे अपना सम्बन्ध मत रखो। नहीं तो परलोक बिगड़नेमें, देर मत समझो।

१४—भूलकर भी ग्लेच्छ-आचरण मत करो; खड़े-खड़े मत मूतो और पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृतिके गुलाम मत बनो। फैशनपरस्ती मत करो। परस्त्रीका स्पर्श मत करो। चर्बीसे बने साबुन, क्रीम-पाउडरका प्रयोग मत करो और होटल-पंथी, बोटलपंथी मत बनो। विदेशी वेशभूषा मत पहनो। भारतीय पोशाक पहनो। अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृतिको अपनाओ और ऐसा कोई भी काम मत करो, जो परलोक बननेमें बाधक हो।

१५—भूलकर भी अपने शिखा-सूत्रका परित्याग मत करो और सनातनधर्मकी शरणमें रहो तथा धर्मपर दृढ़ रहो। वर्णाश्रम-धर्मानुसार चलो और यदि अनधिकार हो तो वेदमन्त्रोंका उच्चारण मत करो। श्रीरामनाम, श्रीकृष्णनाम-मृतका निरन्तर प्रेमसे पान करो। अधिकार न हो तो

देवमन्दिरके शिखरका दर्शनकर महान् पुण्यके भागी बनो। भूलकर भी देवमन्दिरोंमें बलात् जानेका प्रयत्न मत करो और मर्यादानुसार जीवन बनाओ।

१६—भूलकर भी किसी भी जीवको किसी प्रकारका भी कष्ट मत पहुँचाओ। किसीको भी मत सताओ, मत रुलाओ। किसीको भी कभी अपशब्द मत कहो और सभीमें अपने प्रभुको देखो और इसे याद रखो—

जो जग सो जगदीश ईश नहीं जग से न्यारा ।  
करिये सब सों प्रेम, प्रेम भगवत को प्यारा ॥

सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेका प्रयत्न करो।

१७—भूलकर भी पूज्य माता-पिताका, गुरुजनोंका, बाबा-दादीका, वृद्धोंका, साधु-संतोंका, प्राज्ञ-विद्वानोंका अपमान मत करो और इनका अनादर मत करो। जहाँतक बन सके, भूदेव ब्राह्मणोंका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेसे न चूको और इसे याद रखो—

पुन्य एक जग महुँ नहीं दूजा ।  
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥  
मंगल मूल बिप्र परितोष ।  
दहइ कोटि कुल भूसुर रोष ॥

१८—भूलकर भी शास्त्रोंकी अवज्ञा मत करो और शास्त्रोक्त उपवास, व्रत, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थयात्रा, श्रीगङ्गा-यमुनास्नान, कथा-कीर्तन, सत्सङ्ग आदिमें खूब भाग लो।

बोलो सनातन धर्मकी जय !

## लोक-परलोक-सुधारके अनिवार्य उपाय

तन-इन्द्रियको वशमें रखना, करना नित्य सभी शुभ काम ।  
अनाचारसे बचना, करना संयम, नित सेवा निष्काम ॥  
मधुर-सत्य-हित वचन बोलना, त्याग झूठ-कटु-अहित तमाम ।  
जपना प्रभुका नाम निरन्तर जिह्वासे मनसे अभिराम ॥  
मनमें दया सौम्यता रखना, रखना उसपर निज अधिकार ।  
राग-द्वेष-भरे कर पाये नहीं, कभी वह अशुभ विचार ॥  
नित्य देखना प्रभुको मनमें, बाहर भी सबमें साकार ।  
लोक तथा परलोक सुधारनेके हैं ये उपाय अनिवार ॥



## हम अपना भला-बुरा स्वयं ही करते हैं

[ श्रमण नारद\* ]

पाठकगणके सामने उस समयकी एक आख्यायिका उपस्थित की जाती है, जिस समय भारतमाता उन्नतिके शिखरपर पहुँचकर स्वर्गीय सुखका अनुभव कर रही थी। उनकी संतान हर तरहसे शान्त, सुखी, सदाचारी और स्वतन्त्र थी। धनी, मानी, उद्योगी और ज्ञानी थी। क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्गुण अन्य देशोंको इन्हींसे सीखने थे। उस समय यहाँके व्यापारी सुदूर देशोंमें व्यापारके लिये जाया करते थे और विदेशी व्यापारी यहाँ आते रहते थे।

उस समय यहाँ बहुत-से बम्बई और कलकत्ता-जैसे समृद्धिशाली नगर थे और व्यापारका क्षेत्र विशाल होनेके कारण लोगोंका आना-जाना भी बहुत था।

छोटे शहरों, कस्बों और गाँवोंकी स्थिति अच्छी थी। प्रजा-जीवन सुख-शान्तिसे व्यतीत होता था।

बौद्धधर्मका यह मध्याह्नकाल था। जहाँ-तहाँ बुद्धदेवकी शिक्षाका पवित्र, शान्त और दयामय संगीत सुनायी देता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और धनिक बौद्धधर्मका प्रचार करते थे। हजारों बौद्ध-श्रमण जहाँ-तहाँ विहार करते दृष्टिगोचर होते थे।

× × × ×

( १ )

वाराणसीकी ओर जानेवाली सड़कपर एक घोड़ागाड़ी दौड़ी जा रही थी। घोड़े बड़ी तेजीसे बढ़े जा रहे थे। गाड़ीमें केवल दो ही व्यक्ति थे। एक मालिक और दूसरा उनका नौकर। मालिकने अपने वैभव और प्रतिष्ठाके अनुरूप मूल्यवान् वस्त्रालंकार धारण कर रखे थे। उनकी मुख-मुद्रासे ऐसा ज्ञान पड़ता था कि वे अपने निश्चित स्थानपर जल्दी पहुँचना चाहते हैं।

हालहीमें बरसात होनेके कारण ठंडी हवा चल रही थी। लगातारकी वृष्टिके पश्चात् बादल बिखर गये थे। सूर्यनारायणके प्रकाशसे धरती उजली हो रही थी। दिन सुहावना लगता था। वर्षाके जलसे धुलकर स्वच्छ हुए हरे-हरे पत्ते पवनकी लहरोंसे आनन्द-नृत्य कर रहे थे। प्रकृतिदेवीने अपूर्व शोभा धारण कर रखी थी।

आगे थोड़ा-सा चढ़ाव था; अतः घोड़ोंकी चाल कुछ धीमी पड़ी। सेठने जब बाहरकी ओर दृष्टि की, तब उन्होंने एक बौद्ध-श्रमणको नीची नजर किये, सड़कके किनारेसे गुजरते हुए देखा। उनकी मुखमुद्रापर शान्ति, पवित्रता और गम्भीरता छायी थी। उनके दर्शन करते ही सेठके हृदयमें उनके प्रति पूज्यभावका उद्भव हुआ और उनके मनमें यह विचार आया—‘ये कोई महात्मा लगते हैं; पवित्रमूर्ति और धर्मावतार दिखायी देते हैं। विद्वान् लोगोंने सज्जन-समागमको पारसमणिकी उपमा दी है। जैसे पारसके संयोगसे लोहा सुवर्ण बन जाता है, ठीक उसी तरह सज्जनके संगमसे भाग्यहीन भी भाग्यशाली बन जाते हैं। यदि महात्माको वाराणसी जाना हो तो मैं इन्हें अपनी गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना करूँ। यदि इन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली तो बहुत ही उत्तम है। इनके समागमसे मुझे अवश्य लाभ होगा।’ इस तरहका विचार मनमें आते ही सेठजीने गाड़ी रोक ली और महात्मा पुरुषको प्रणाम करके उनसे गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना की। महात्माजीको काशी ही जाना था; इसलिये वे गाड़ीमें बैठ गये और कहा—

‘सेठजी! आपका मुझपर बड़ा उपकार है। बहुत समयसे चलते-चलते मैं थक गया था और आपने मुझे गाड़ीमें साथ बैठा लिया, इससे मैं आपका ऋणी हो गया। मुझ-जैसे साधुके पास आपको देने योग्य ऐसी कोई उपयुक्त वस्तु नहीं है, जिससे मैं आपका ऋण चुका सकूँ। फिर भी परम गुरु महात्मा बुद्धदेवके उपदेश-रूपी अक्षय भण्डारमेंसे जो कुछ भी मैं संग्रह कर सका हूँ, उसमेंसे आपके इच्छानुसार थोड़ा कुछ देकर मैं आपके इस ऋणभारको तनिक हलका करना चाहता हूँ।’

सेठजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्दमें समय बीतने लगा। उन्होंने श्रमणके सुबोधरूपी रत्नोंको बड़े प्रेमसे अपने हृदयमें धारण करना शुरू किया। गाड़ी आगे बढ़ रही थी। लगभग एक घंटेके बाद गाड़ी एक सँकड़े



नालेके पास पहुँची। आगे एक बड़ी बैलगाड़ी थी; इससे सेठजी गाड़ी वहाँसे आगे नहीं बढ़ सकी। वहाँ रुक गयी।

वह बैलगाड़ी देवल नामक एक किसानकी थी। उसमें चावलके बोरे भरे थे और वह वाराणसी जा रही थी। संघ्यासे पहले ही देवलको वाराणसी पहुँचना था; पर इस नालेपर आते ही गाड़ीके जुएकी कील निकल गयी और एक पहिया अलग हो गया। अब क्या हो? देवल बेचारा अकेला था। उसने बहुत माथा-पच्ची की; परंतु गाड़ी चल नहीं पायी।

सेठजीने देखा—वह बैलगाड़ी रास्ता रोके खड़ी है। उन्हें देर हो रही थी। सेठजीको गुस्सा आ गया और उन्होंने नौकरको आदेश दिया—‘चल, जल्दी कर; उतर नीचे। हमलोग कबतक खड़े रहेंगे? चावलोंके बोरोको नीचे फेंककर गाड़ीको एक किनारे हटाकर अपनी गाड़ी चला।’

आदेश सुनते ही किसानने गिड़गिड़ाकर कहा—‘सेठजी। मैं एक गरीब किसान हूँ। दया करो। कुछ देर रुक जाओ। चावलके बोरे नीचे गिरा दिये जायँगे तो मुझे बड़ा नुकसान होगा। आप देख रहे हैं, बरसातके कारण कितना भारी कीचड़ हो रहा है। सब चावल सड़ जायँगे। कृपा करो। मैं अभी पहिया चढ़ाकर, गाड़ी आगे बढ़ाकर किनारे किये देता हूँ। फिर आप अपनी गाड़ीको खुशीसे आगे ले जाइयेगा।’

परंतु सेठने किसानकी प्रार्थनापर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। बल्कि और भी रोषमें भरकर नौकरको बाँटा। नौकरने तुरंत सेठजीकी आज्ञाका पालन किया। चावलके बोरे नीचे फेंक दिये और गाड़ीको हटाकर अपनी गाड़ीको आगे निकाल लिया।

‘अरे, इस संसारमें गरीबका सहायक कोई नहीं है।’ अपने नगण्य लाभके लिये दूसरेका सर्वनाश करनेवाले धन-मदमत्तोंकी उस समय भी कमी न थी। गरीबोंके रक्षक बननेके बजाय उनके भक्षक बननेवाले अमीरोंसे यह जगत न तो कभी खाली था और न होगा ही। हाँ, उस समय बौद्ध-धर्मके साधुओंका दयामय हाथ गरीबोंकी सहायताके लिये सदा तत्पर रहता था। वे लोग धार्मिक विवादोंमें व्यर्थ न पड़कर मनुष्यमात्रके साधारण हितकी चिन्तामें निरन्तर लगे रहते थे। वे लोग अपने मन, वचन और तनका

उपयोग मुख्यतः परोपकारके कार्यमें ही किया करते थे।

सेठजीकी गाड़ी ज्यों ही आगे बढ़ने लगी कि उसी समय श्रमण नारद गाड़ीमेंसे कूद पड़े और सेठजीसे बोले—‘सेठजी! क्षमा कीजियेगा। अब मैं आपके साथ गाड़ीमें नहीं चल सकूँगा। आपने विवेकपूर्वक मुझे एक घण्टे अपने साथ गाड़ीमें बैठाया, इससे अब मेरी थकावट दूर हो चुकी है। फिर भी मैं आपके साथ चलता, किंतु अब मेरे मनमें आपके उपकारका बदला चुकानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी है और बदला उतारनेका अच्छा अवसर भी मिल गया है।’

सेठजीने कहा—‘आप गाड़ीसे उतर जायँगे तो इससे उपकारका बदला किस तरह और किसके प्रति चुकायँगे?’

‘सेठजी’—श्रमणने कहा। ‘जिस किसानकी बैलगाड़ीको उलटाकर हम आगे बढ़े हैं, वह किसान आपका बहुत निकटका सम्बन्धी है। मैं उसे आपके किसी पूर्वजका अवतार मानता हूँ। इसलिये आपके उपकारका बदला उसकी सहायता करके चुकानेके लिये उस ओर जा रहा हूँ। उसे जो लाभ होगा, वह लाभ आपको ही हुआ समझिये। इस किसानके भाग्यके साथ आपकी भलाईका बहुत गहरा सम्बन्ध है। आपने उसे जो कष्ट दिया है, मुझे लगता है कि इससे आपका बहुत नुकसान हुआ है। इसलिये मेरा यह कर्तव्य है कि आपकी भलाई करनेके उद्देश्यसे तथा इस नुकसानसे आपको बचानेके लिये मैं यथाशक्ति उसकी सहायता करूँ।’

सेठने श्रमणकी इस धार्मिक उक्तिपर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें वे व्यवहारमें अकुशल बुद्धिवाले, बहुत भले आदमी जान पड़े। आखिर श्रमणको छोड़कर सेठजीने गाड़ी आगे बढ़वा दी।

× × × ×

( २ )

श्रमण नारद पहुँचे किसानके पास। उसे नमस्कार किया और गाड़ीको ठीक करनेमें उसकी पूरी सहायता की। भीगे और सूखे चावलोंको अलग करना शुरू किया। दोनोंकी मेहनतसे काम जल्दी होने लगा। किसानने सोचा—‘भाग्य प्रवल होनेके कारण कोई अदृश्य देव ही श्रमणका रूप लेकर मेरी सहायता करने आ पहुँचे हैं तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसी अनपेक्षित सहायता मिलनेसे काम कितनी जल्दी होने लगा है; यह देखकर मुझे भी आश्चर्य



होता है ।' डरते-डरते किसानने पूछा—'महाराज ! जहाँ-तक मुझे याद है, मैंने इन सेठजीका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था । फिर भी, बिना कारण उन्होंने मेरा इतना नुकसान क्यों किया ? क्या कारण है इसका ?'

श्रमण—भाई ! आज जो कुछ भी तुम भोग रहे हो, वह तुम्हारे पूर्वकर्मका ही फल है ।

किसान—कर्म क्या है महाराज !

श्रमण—मनुष्यके द्वारा स्वयं किये हुए कार्य ही उसका 'कर्म' है । अनेक जन्मोंके कर्मोंकी एक माला है । इस मालामें विविध कर्मरूपी मनके हैं । वर्तमान कार्यों एवं विचारोंसे इसमें परिवर्तन भी होते हैं । हमलोगोंने जो कुछ कर्म पूर्वमें किये हैं, उन्हींका फल इस जीवनमें भोग रहे हैं और इस जन्ममें इस समय जो कर्म कर रहे हैं, उनका फल अगले जन्ममें भोगेंगे ।

किसान—ऐसा होगा; किंतु ऐसे घमंडी और दुष्ट मनुष्योंके लिये, जो हमारे-जैसे निरपराधियोंको हैरान करते हैं, क्या किया जाय ?

श्रमण—भाई ! मेरी समझसे तो तुम्हारे विचार भी लगभग उस सेठके विचारोंके समान ही हैं । जिन कर्मोंके फलस्वरूप वह जौहरी और तुम किसान बने हो, ऊपरी दृष्टिसे देखा जाय तो उनमें बड़ा भेद दिखायी देता है, किंतु यदि हम गहराईसे विचार करेंगे तो बहुत अन्तर नहीं दिखायी देगा । मानव-स्वभावके अभ्यासके कारण मैं कहता हूँ कि यदि तुम उस जौहरीकी जगह होते, तुम्हारे पास भी उसकै नौकर-जैसा बलवान् नौकर होता और तुम्हारी गाड़ी रास्तेमें उसकी गाड़ीसे रुकती तो तुमने भी वैसा बर्ताव किया होता, जैसा कि सेठने तुम्हारे साथ किया है । उसके चावलोंका सत्यानाश हो जायगा—ऐसा विचार तुम्हारे मनमें भी उत्पन्न न होता और किसीका बुरा करनेपर हमारा बुरा होगा, उस समय इस विचारको तुम भी भूल जाते ।

किसान—महाराज ! आपका कहना सत्य है । उस परिस्थितिमें मैं भी वैसा ही व्यवहार करता; किंतु अब तो मुझे आपका समागम प्राप्त हो गया है । आपने बिना किसी स्वार्थके मेरी सहायता की है । आपकी सहायतासे ही मैं अपने मालकी रक्षा कर सका हूँ और गाड़ी चला सका हूँ । अब मैं आपका उदाहरण सदा सामने रखकर अपने मानव-बन्धुओंका कल्याण करूँगा ।

किसानकी बैलगाड़ी दुरुस्त हो गयी । कुछ दूर चलते ही दोनों बैल चौककर रुक गये । किसानने पुकारा—'अरे महाराज ! सामने यह सॉप-जैसा क्या पड़ा है ?' श्रमणने ध्यानसे देखा तो कोई थैली-जैसी चीज दिखायी दी । समीप जाकर देखा तो सोनेकी मोहरोंसे भरी हुई थैली ही थी । उनको लगा कि 'अन्य किसीकी न होकर यह थैली उन सेठकी ही है ।' उन्होंने वह थैली उठाकर किसान देवलको देते हुए कहा—'वाराणसी जाकर उन सेठका पता लगाना और उन्हें यह थैली ज्यों-की-त्यों दे देना । उनका नाम पाण्डु जौहरी है और उनके नौकरका नाम महादत्त है । तुम्हारे ऐसा करनेपर उन्हें अपने किये हुए अन्यायके लिये पश्चात्ताप होगा । थैली देकर उनसे कहना कि 'आपने मेरे साथ जो कुछ बर्ताव किया था, उसको लेकर मेरे मनमें अब कुछ भी नहीं है । मैं आपको क्षमा करता हूँ और चाहता हूँ कि आपको अपने व्यापारमें सच्ची सफलता मिले ।'

'तुम्हारा भाग्य उनके भाग्यसे जुड़ा हुआ है । ज्यों-ज्यों उनकी उन्नति होगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा भाग्य भी खुलेगा ।'

इतना कहकर 'परोपकारकी प्रतिमा' दीर्घदृष्टि से श्रमण महाशय वहाँ एक पलक भी न ठहरकर अपने रास्ते चल दिये । रास्तेमें विचार करने लगे—'यदि वे जौहरी फिर कभी मुझे मिलेंगे तो मैं यथाशक्ति उनका भला करनेका प्रयत्न करूँगा । उपदेश देकर उन्हें सच्चा मानव बनाऊँगा ।'

( ३ )

वाराणसीमें मल्लिक नामके एक व्यापारी थे । वे पाण्डु जौहरीके आदृतिया थे । पाण्डु वाराणसी आकर उनसे मिले । जौहरीके मिलते ही मल्लिक रो पड़े और पाण्डुके पूछनेपर उन्होंने अपनी कठिनाई बतायी—

मल्लिक—मित्र ! मैं एक महान् संकटमें आ पड़ा हूँ । मुझे डर है कि कहीं मेरा आपसे व्यापारी नाता टूट न जाय । मैंने राजाको उनके अपने उपयोगके लिये बढ़िया चावल देनेका वचन दे रखा है । कल उसकी मुदत पूरी होती है । वचनके अनुसार कल प्रातःकाल मुझे उनको चावल देना ही चाहिये । मैं क्या करूँ ? इस समय मेरे पास चावलका एक दाना भी नहीं है । दूसरे कहींसे मिलनेकी भी आशा नहीं है; क्योंकि यहाँ मेरा प्रतिस्पर्धी एक बड़ा जबरदस्त व्यापारी है । उसे न जाने कैसे इस बातका पता चल गया कि



राज-कोठारीसे मैंने चावलके बावदेका व्यापार किया है। यह बात जानते ही उसने मुँहमोंगे दाम देकर, जितने अच्छे चावल बस्तीमें थे, सब खरीद लिये हैं और ऐसा जान पड़ता है कि उसने कुछ रिश्त देकर कोठारीको भी अपने वशमें कर लिया हो। कल मेरी क्या हालत होगी—इसकी मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। मेरी इज्जत बचनी कठिन है। मैं तो मरा जा रहा हूँ। भाई! यदि विधाता मेरी सहायता करें और कहींसे बढ़िया चावलकी एकाध गाड़ी मिल जाय तो मैं बच सकता हूँ। अन्यथा, मेरी तो मौत ही हुई समझो।

मलिककी बातें सुनते-सुनते पाण्डु एकाएक चौंक उठे। उन्हें फौरन ही गाड़ीमें अन्य चीजोंके साथ रखी हुई अपनी थैलीका स्मरण हो आया और वे तुरंत ही दौड़े हुए घर गये। सारी चीजें, कपड़े-लत्ते छान मारे। गाड़ीकी पूरी जाँच की; किंतु कहीं भी थैली नहीं मिली। उन्हें अपने नौकर महादत्तपर संदेह हुआ। पुलिसको फौरन ही खबर दी गयी और पुलिसने आकर गरीब निर्दोष सेवक बेचारे महादत्तको गिरफ्तार कर लिया। फिर क्या था? निरपराधीको अपराधी साबित करनेवाली बमदूत-सी पुलिसने चोरीका अपराध स्वीकार कर लेनेके लिये महादत्तको खूब पीटा। महादत्त जोर-जोरसे रोने लगा। गिड़गिड़ाकर बोला—“अरे! मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। मैं सच कहता हूँ कि मैंने थैली नहीं चुरायी। मुझपर दया करो। सेठके कहनेसे मैंने उस बेचारे गरीब किसानको रास्तेमें बहुत सताया था, मुझे उसी पापका यह फल मिल रहा है। हे भाई किसान! तू तो जगतका पिता (किसान) है। मैंने तुझे बिना कारण सताया है। सचमुच मुझे यह दण्ड मिलना ही चाहिये।”

इस तरह महादत्त पश्चात्ताप करने लगा; किंतु पुलिसको उसकी बातोंपर ध्यान देनेकी फुरसत ही कहाँ थी। उसका यह काम नहीं; उसका काम तो था—उसे बुरी तरहसे पीटना ही।

इधर पुलिस महादत्तको बुरी तरह मार रही थी। इसी बीच देवल किसान वहाँ आ पहुँचा और आते ही उसने पाण्डु जौहरीके सामने मोहरोंकी थैली रख दी। सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। पाण्डु तो गद्गद हो गये। उन्होंने जिस आदमीको विपत्तिमें डाला था, उसी आदमीने आकर आज उनको एक महान् विपत्तिसे बचा लिया। यह देखकर उन्हें बहुत ही लज्जित होना पड़ा। उन्होंने बड़ा

पश्चात्ताप किया और देवलसे क्षमा माँगी। महानुभाव श्रमणके सज्जेसे सदाके सरल-हृदय किसानका हृदय उदार हो गया था। उसने अपने सच्चे हृदयसे उन्हें क्षमा दे दी और उनके अभ्युदयकी इच्छा की।

महादत्त छोड़ दिया गया। उसे अपने सेठपर बड़ा गुस्सा आ रहा था। देखते-ही-देखते वह कहीं दूर चला गया; एक पलके लिये भी वहाँ नहीं रुका।

मलिकको जब इस बातका पता चला कि देवलके पास बढ़िया—अच्छे किस्मके एक गाड़ी चावल हैं, तब उसने मुँहमोंगे पैसे देकर सब-के-सब चावल खरीद लिये। इस तरह उसके वचन तथा मानकी रक्षा हो गयी। राजाके कोठारमें समयपर चावल पहुँच गये। इधर, देवलने कभी स्वप्नमें भी, उसे चावलकी इतनी बड़ी कीमत मिलेगी, यह आशा नहीं की थी। वह तो बेहद खुश हो गया और तुरंत ही उसने अपने गाँवका रास्ता पकड़ा।

अब पाण्डु “यह विचार करने लगे कि “यदि वह देवल यहाँपर न आया होता तो मेरी और मलिककी क्या स्थिति होती? वह कितना ईमानदार है! यह श्रमण महाशयके समागमका ही परिणाम है। लोहेको सुवर्ण बनानेकी शक्ति ‘पारस’के सिवा और किसके पास हो सकती है?” पाण्डुका हृदय रो उठा। महात्माजीके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी उनके मनमें और वे फौरन ही उनकी खोजमें निकल पड़े तथा विहारोंमें पूछ-ताछ करते-करते वे अन्तमें उनके पास जा पहुँचे।

कृतज्ञतापूर्ण अन्तःकरणसे उन्होंने श्रमणको साष्टाङ्ग-दण्डवत् प्रणाम किया। व्यापारीका दक्ष और कठोर हृदय भी लुसुम-कोमल महात्माजीके दर्शनसे कोमल बन गया। वे कुछ भी बोल न सके। उनका हृदय भर आया। महात्माजी उन्हें आश्वासन देते हुए समझाने लगे।

श्रमण—सेठजी! देखा न, कर्मकी रचना कितनी गहन है?

पाण्डु—महानुभाव! मेरी तो समझमें कुछ नहीं आता।

श्रमण—अभी आप यह बात नहीं समझ सकेंगे। साधारण लोग इसका मर्म नहीं समझ सकते। इसे समझनेके लिये जब आपके मनमें रुचि उत्पन्न होगी और उत्कण्ठा बढ़ेगी, तब यह बात अपने-आप ही समझमें आ जायगी। किंतु इतना अवश्य याद रखियेगा कि जब कभी दूसरोंको दुःख पहुँचाने-



का मन हो। तब पहले अपने-आपसे यह पूछना चाहिये कि 'ऐसा ही दुःख कोई मुझको दे तो मेरे मनपर उसका क्या असर होगा ! क्या मैं उसको सहन कर सकूँगा ?' यदि तुम सहन करनेमें असमर्थ हो तो फिर दूसरेको दुःख पहुँचानेकी वृत्ति क्यों हो ? ऐसी वृत्ति हो तो उसे तुरंत दबा देना चाहिये। इसी तरह दूसरा यदि कोई हमारी सेवा करता है तो वह हमें कितनी अच्छी लगती है। ठीक उसी तरह, हमारी सेवा भी अन्यको अच्छी लगती है—यह दृढ़ निश्चय रखें। दूसरेकी सेवा करनेका एक भी अवसर हाथसे नहीं खोना चाहिये। आज हम जिस सुकुतके बीज बोयेंगे तो उसका अच्छा फल हमें कालान्तरमें अवश्य मिलेगा, यह विश्वास रखना।

पाण्डु—महाराज ! आपकी अमृतवाणी सुनते-सुनते मेरे मनको वृत्ति नहीं मिलती। मेरा चरित्र उत्कृष्ट बने और मन दृढ़ रहे। इसके लिये कुछ और सुनाइये। मैं कर्मकी गहन गतिको समझना चाहता हूँ।

श्रमण—अच्छा, तो सुनो ! मैं आपको कर्ममेदकी कुंजी बता रहा हूँ। मेरे और आपके बीच एक पर्दा पड़ा है। इस पर्देको 'माया' कहते हैं। इस मायारूपी पर्देके कारण आप मुझको और मैं आपको पृथक्-पृथक् समझ रहे हैं। इस पर्देके कारण ही तो मनुष्य सत्यको नहीं देख पाता और पापके कुएँमें जा गिरता है। चूँकि आपकी आँखोंके आगे यह मायाका पर्दा पड़ा हुआ है, इसीसे आप अन्य अपने मानव-बन्धुओंके साथ आपका कितना निकट सम्बन्ध है, उसे जान नहीं सकते। सच पूछा जाय तो एक शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंका एक दूसरेके साथ जैसा प्रगाढ़ सम्बन्ध है, वैसा ही, वरं उससे भी अधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध मानव-मानवके बीच है। इस स्थितिको बहुत कम लोग समझ पाते हैं। इस सत्यको समझकर इसके अनुसार बर्ताव करना—यही तो मानव-जीवनका कर्तव्य है। इस सत्यकी प्राप्तिके लिये मैं आपको तीन मन्त्र दे रहा हूँ। इन्हें आप अपने हृदयमें लिख रखिये—

(१) दूसरोंको दुःख पहुँचानेवाला स्वयं ही अपनेको दुःख देनेवाले दुःखके बीज बोता है।

(२) दूसरोंको सुख पहुँचानेवाला अपने लिये सुखका बीज बोता है।

(३) समग्र मानव-जाति एक ही है। इसमें भिन्नताका विचार भ्रममात्र है।

—इन तीन बातोंपर गहराईसे विचार करते रहिये—उनकी उपासना करते रहिये—आपको सत्यके दर्शन अवश्य होंगे।

पाण्डु—महाराज ! आपके शब्दोंका मेरे हृदयपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। आपके वचन तो आपके जीवनका प्रतिबिम्ब है। मैंने वाराणसी आते समय एक घंटेके लिये आपको अपनी गाड़ीमें बैठा लिया था। इसमें मेरे एक पाईका भी खर्च नहीं हुआ। फिर भी कितना महान् बदला। प्रभो ! मुझपर आपका महान् उपकार है। आपने ही तो देवलको मोहरें देनेके लिये मेरे पास भेजा था। यदि वे मोहरें मुझे प्राप्त न हुई होतीं तो मैं यहाँका सौदा न कर पाता। आपकी दीर्घदृष्टि है। मैं किस मुखसे तारीफ करूँ ? देवलको सहायता देकर उसे आपने शीघ्र ही वाराणसी भेज दिया, जिससे मेरे मित्र मल्लिकका भी काम हो गया; उसकी इज्जत बच गयी। मेरे सेवक महादत्तकी भी रक्षा हुई, नहीं तो; पता नहीं; उस बेचारेकी क्या दुर्दशा होती।

महाराज ! जिस तरह आप सत्यके दर्शन करते हैं, ठीक उसी तरह मानवमात्र करने लगे तो सारा जगत् कितना सुखी हो जाय। असंख्य पाप रुक जायें और सर्वत्र पुण्य-प्रणाली प्रचलित हो जाय। महाराज ! संतोंकी सेवा करनेकी इच्छा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है। कौशाम्बीमें एक विहार बनवा दूँ, जहाँपर आप-जैसे श्रमण रहें और जनताको सन्मार्गपर चलावें।

( ४ )

कौशाम्बीमें पाण्डु जौहरीका विहार तैयार हो चुका है। इसमें सैकड़ों विद्वान् और दयामूर्ति श्रमण निवास करते हैं। अल्प समयमें ही इस विहारकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। दूर रहनेवाले धर्मपिपासु लोग भी यहाँ जाकर उपदेशामृतका पान करके अपनी तृष्णाको शान्त करने लगे।

पाण्डु जौहरी भी एक सुप्रसिद्ध जौहरी बन गये और उनकी यशोगाथा दूर-दूरतक सुनायी देने लगी।

× × ×

कौशाम्बीके समीप ही एक राजाकी राजधानी थी। एक दिन राजाने अपने कोषाध्यक्षको पास बुलाकर आदेश दिया कि मुझे एक ऐसा सोनेका मुकुट बनवाना है, जैसा इस



संसारमें कहीं भी न देखा गया हो। इस मुकुटमें बहुमूल्य रत्न बड़े हैं। ऐसी मेरी इच्छा है। पाण्डु जौहरीके सिवा इतना बड़ा काम कोई भी दूसरा नहीं कर सकता। इसलिये शीघ्र ही पाण्डु जौहरीको ऐसा मुकुट बनवा देनेके लिये कहलवा दो। राजाके आदेशानुसार कोषाध्यक्षने पाण्डु जौहरीको सूचित कर दिया।

निश्चित समयपर मुकुट तैयार हो गया। इसके अतिरिक्त भी, पाण्डु जौहरीने अपनी सारी पूँजी लगाकर हीरे-माणिक और सोने-चाँदीके बहुत-से आभूषण तथा अन्यान्य चीजोंके बढ़िया नमूने बनवाये। ये सभी चीजें अपने साथ लेकर वे राजधानीकी ओर निकल पड़े। पंद्रह-बीस बलवान् रक्षक अपने साथ ले लिये और खुशी तथा सावधानीके साथ आगे बढ़ने लगे। उन्हें विश्वास था कि उनकी सारी चीजें राजाके यहाँ खप जायँगी और अच्छी कमाई एवं कीर्ति बढ़ेगी। किंतु जब वे एक घने जंगलमेंसे गुजर रहे थे, तब उन्हें डाकुओंका एक दल मिला। इस दलमें पचास-साठ डाकु थे। उन डाकुओंने जौहरीको लूट लिया। जौहरीके साथ आये हुए रक्षकोंने बहादुरीके साथ सामना किया, पर आखिर डाकुओंकी ही जीत हुई और वे जौहरीकी तमाम चीजें लेकर चम्पत हो गये।

सब समाप्त! एक क्षण पहलेके लक्षाधिपति जौहरी बिल्कुल कंगाल स्थितिमें आ गये। उनकी सारी आशाएँ धूलमें मिल गयीं। वे कहींके भी न रहे। अब उन्हें अपने अतीतके पापोंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। जवानीमें किसका कितना बुरा किया था, सब सामने आ गया। जो बोया था, वही फल गया। उनकी आँखोंके आगेका पर्दा दूर हो गया। कर्मको गतिका अभिप्राय जैसा, जितना इस समय समझमें आ रहा था, वैसा, उतना पहले कभी नहीं आया था। अब उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया। उनके हृदयमें दयाका स्रोत उमड़ने लगा। पश्चात्तापकी अग्निसे मानस पवित्र हो गया।

पाण्डुको आज अपनी निर्धन परिस्थितिका कोई दुःख नहीं हो रहा है। दुःख है तो केवल इतना ही है कि धनके द्वारा जो दूसरोंकी भलाई कर सकते थे और श्रमणोंकी सेवा करके उनके द्वारा धन-प्रचारका जो कार्य हो रहा था, उसमें रुकावट आ गयी।

( ५ )

कौशाम्बी नगरीके पास एक जंगल है। इसी जंगलमें

राक्षसी डाकुओंने बेचारे पाण्डुको लूट लिया था। उसी रातसे आज एक बौद्ध साधु जा रहे थे। वे तो अपने ही विचारोंमें मस्त थे। हाथोंमें एक कमण्डलु और एक छोटी-सी गठरी थी, जिसमें कुछ हस्तलिखित पुस्तकें थीं। गठरीके ऊपर एक बहुमूल्य वस्त्र बँधा था। किसी श्रद्धालुने ग्रन्थमहिमासे आकर्षित होकर पूज्यभावसे गठरी बाँधनेके लिये उन्हें यह कपड़ा दिया हो, ऐसा लगता था। यही बहुमूल्य वस्त्र साधुके लिये विपत्तिका कारण बन गया। डाकुओंने दूरसे ही इस गठरीको देखा और बहुमूल्य वस्त्रमें अवश्य कोई कीमती चीजें छिपी होंगी—यों समझकर वे उस साधुपर दृष्ट पड़े। जब उन्होंने गठरी खोलकर देखी और उसमें केवल कुछ कागज ही निकले, तब तो उनके क्रोधका पारा और भी चढ़ गया। उन्होंने मिलकर साधुको घूँघोंसे मार-मारकर गिरा दिया और यों अपनी नीचताका प्रदर्शन करके चले गये।

साधु अत्यन्त पीड़ासे कातर था। उस रातको वहाँसे आगे नहीं बढ़ सका। बुबह होनेपर बड़ी कठिनातासे आगे बढ़नेका प्रयत्न किया। कुछ ही आगे बढ़ा होगा कि उसे समीपकी झाड़ीमें शोरगुल और हथियारोंकी खड़खड़ाहट सुनायी दी। साधु धीरे-धीरे वहाँ जा पहुँचा। पहुँचते ही देखा कि पिछली रातके जिस डाकुओंके दलने उसे लूटा-मारा था, उसी दलके लोग आपसमें लड़ रहे थे। इनमेंसे एक डाकु बड़ा बलवान् था। जैसे शिकारी कुत्तोंसे घिरा हुआ सिंह गुस्सेमें आकर उनपर दृष्ट पड़ता है, वैसे ही वह बलवान् डाकु उन सब डाकुओंको मार रहा था। किंतु वह अकेला था, जब कि विरोधियोंकी संख्या बहुत अधिक थी। दस-बारह आदमियोंको उसने जमीनपर गिरा दिया; किंतु आखिर वह भी घायल होकर जमीनपर गिर पड़ा। उसके शरीरपर बहुत चोटें थीं। उसे वहींपर छोड़कर जीवित डाकु भाग गये।

श्रमणने समीप आकर देखा तो दस-पंद्रह लाशें पड़ी थीं। इनमेंसे केवल एक वही बहादुर डाकु जीवित था, जो अपने जीवनकी आखिरी साँस ले रहा था। साधुका हृदय भर आया। इस निरर्थक हत्याकाण्डसे उसे बड़ा दुःख हुआ। करीब ही एक निर्मल पानीका झरना बह रहा था, उसमेंसे अपने कमण्डलुमें ताजा जल भरकर साधु ले आया और उस डाकुकी आँखोंपर थोड़ा-थोड़ा छिड़कना शुरू किया। डाकुकी आँखें



खुली और वह बड़बड़ाने लगा—‘साले बेईमान कुत्ते कहाँ भाग गये ? सैकड़ों बार मैंने अपनी जान जोखिममें डालकर उन लोगोंको बचाया है और मैं न होता तो कभीका शिकारियोंने उन कमजोर कुत्तोंको मौतके घाट उतार दिया होता । इसका उन्हें कहाँ भान है ? क्या वे सब कुछ भूल गये ?’

श्रमण—भाई ! अब तुम अपने उस पापमय जीवनके साथियोंकी याद न करो । अब तुम केवल आत्माका ही विचार करो और अपने जीवनके अन्तको सुधार लो । थोड़ा-सा पानी पी लो और मुझे देखने दो—तुम्हें कहाँ-कहाँ चोट लगी है । हो सकेगा तो मैं कुछ उपाय करूँगा और बचना होगा तो तुम बच जाओगे ।

डाकू शान्त हो गया । श्रमणने उसके घाव पानीसे धो डाले और बादमें जंगलसे वनस्पति लाकर, उसमेंसे रस निकालकर घावोंपर लगा दिया । इससे डाकूको बड़ा आराम मिला । उसे नींद-सी आ गयी ।

जब वह जगा तो उसे बहुत आराम मालूम हो रहा था । उसने श्रमणको अपने पास देखा । उसके हृदयका परिवर्तन होने लगा ।

‘दयामय ! अबतक मैंने सब बुरे-ही-बुरे काम किये हैं । कभी किसीका कुछ भी भला किया ही नहीं । अपनी बुरी वासनाओंके जालमें मैं स्वयं ही फँस रहा हूँ । इसमेंसे निकल सकूँ, ऐसा नहीं लगता । मैं तो नरकका ही अधिकारी हूँ । मोक्ष पाने योग्य रहा ही नहीं ।’

श्रमण—हाँ भाई ! तुम्हारा कहना सत्य है । तुम्हारे अपने किये हुए कर्मोंका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा । जो गड्ढा खोदता है, वही गिरता है । इसका कोई इलाज नहीं है । फिर भी निराश मत होओ । अब ऐसे सुकर्मरूपी बीज बोओ, जिससे आगे बुरे फल न भोगने पड़ें ; पश्चात्ताप करनेका समय ही न आये । ज्यों-ज्यों दुष्टताकी मात्रा तुम्हारे हृदयसे कम होती जायगी, त्यों-ही-त्यों शरीरसम्बन्धी ममत्वबुद्धि भी कम होती जायगी और परिणामस्वरूप विषय-लालसा भी नष्ट हो जायगी । इस सम्बन्धका एक आख्यान है; वह मैं तुम्हें सुना रहा हूँ । उसे सुननेपर तुम्हें पता चलेगा कि दूसरोंकी भलाई करनेमें ही अपनी भलाई है । दूसरे शब्दोंमें कहें तो मनुष्यके अपने ही कर्म अपने तथा दूसरोंके सुखके मूल हैं ।

‘कदन्त नामका एक जबरदस्त डाकू था । वह अपने पापोंका प्रायश्चित्त किये बिना ही मर गया, जिसके कारण

नरकमें उसे नारकी-योनि प्राप्त हुई । बहुत कष्टोंतक उसे अपने कर्मोंका फल वहाँ भोगना पड़ा; फिर भी, उनका कोई अन्त नहीं दिखायी दिया । इसी बीच भगवान् बुद्धने इस पृथ्वीपर अवतार लिया । बुद्धभगवान्के पुण्यकी एक किरण नरकमें भी जा पहुँची, जिसके फलस्वरूप नारकी लोगोंको भी अपने शीघ्र उद्धारकी आशा हो गयी । इस प्रकाशको देखकर कदन्त जोरसे चिल्ला उठा—‘हे भगवान् ! मुझपर दया करो, कृपा करो ! मैं यहाँ अवर्णनीय दुःखोंसे पीड़ित हूँ । मुझे इस संकटसे छुड़ाओ । प्रभो ! अब मैं सदा सत्यके मार्गपर ही चढ़ूँगा । मुझे मुक्त करो, प्रभो ! मुझे मुक्त करो ।’

यह तो प्रकृतिका नियम है कि बुरे कर्म प्रायः मनुष्यको विनाशकी ओर ही ले जाते हैं । बुरे कर्म सृष्टि-नियमके विरुद्ध हैं, अस्वाभाविक हैं; इस कारण उनकी आयु कम होती है । सत्कर्म दीर्घजीवी हैं; क्योंकि वे स्वाभाविक हैं । वे आशाके प्रति आगे बढ़ते हैं । पापकर्मोंका अन्त है, पुण्य-कर्मोंका अन्त नहीं है ।

जिस तरह बाबरेके एक दाने ( बीज ) से एक पौधेमें हजारों दाने लग जाते हैं और जैसे अनेक पौधे मिलकर खेतको लहलहा देते हैं, ठीक वैसे ही थोड़ेसे भी सत्कर्मसे हजारोंकी संख्यामें सत्-फल प्राप्त होते हैं और उनकी परम्परासे सृष्टि छा जाती है । दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो मानव भला कार्य करते-करते जन्म-जन्ममें इतनी दृढ़ता प्राप्त करता जाता है कि अन्तमें वह ‘अनन्तवीर्य’ बुद्ध बनकर निर्वाण-पदका भागी बनता है ।

कदन्तका आक्रन्दन सुनकर दयासागर बुद्धभगवान् बोले—‘तुमने कभी किसी भी प्राणीपर थोड़ी-सी भी दया की है ? यदि की होगी तो वह दया तुरंत दौड़ती हुई आवेगी और तुम्हें उन दुःखोंसे छुड़ा देगी । किंतु जबतक तुम्हारे मनसे देहका ममत्व, क्रोध, मान, कपट, ईर्ष्या और लोभका नाश न होगा, तबतक उन दुःखोंसे तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती ।’ कदन्तका मूल स्वभाव बड़ा क्रूर था । उसे अपने उद्धारका मार्ग कहाँ भी दिखायी न पड़ा । पर करुणानिधि बुद्धभगवान् तो सर्वज्ञ थे । उन्होंने उसके पूर्वजन्मके तमाम कर्मोंको एकके बाद एक देखना आरम्भ किया । देखा, तो एक बार उसने थोड़ी-सी दयाका भाव दिखाया था । कदन्त अपने पूर्वजन्ममें एक दिन एक जंगलसे गुजर रहा था । उसके आगे एक मकड़ा चला जा रहा था ।



उसके मनमें आयी कि उस मकड़ेको पैरोंतले कुचलकर आगे निकल जाऊँ। किंतु तुरंत ही यह विचार आया कि नहीं, नहीं, यह बेचारा निरपराधी है। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये और इस विचारके फलस्वरूप वह कदन्त पाप करनेसे बच गया और मकड़ेके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। बस, भगवान् बुद्धने उसके इस छोटे-से सत्कार्यको ध्यानमें लेकर कदन्तका उद्धार करनेका विचार किया। उन्होंने मकड़ेको जालके एक तन्तुके साथ नरकमें भेजा। उसने कदन्तसे जाकर कहा कि 'लो, इस तन्तुको पकड़ लो और इसकी मददसे तुम ऊपर चढ़ जाओ।' इतना कहकर मकड़ा तो अदृश्य हो गया। उसके बाद, कदन्त बेचारा बड़ी कठिनतासे तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा। आरम्भमें तो तन्तु मजबूत मालूम दिया, किंतु बादमें धीरे-धीरे वह टूटनेकी तैयारी करने लगा; क्योंकि नरकके अन्य दुखी जीव भी उसी तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगे थे। कदन्त बहुत घबरा गया। उसे ऐसा लगा, जैसे कि वह तन्तु लंबा होता जा रहा है और वजनके कारण पतला बनता जाता है। 'मेरा वजन तो वह झेल ही सकता है। फिर ऐसा क्यों हो रहा है?' इस तरह विचार करके कदन्तने जो नीचेकी ओर देखा तो असंख्य नारकी जीव उस तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ते हुए दिखायी दिये। अब उसे लगा कि 'इतने सारे जीवोंके वजनसे तो यह तन्तु अवश्य टूट जायगा।' वह घबरा गया और एकाएक बोल उठा—'यह तार तो मेरा है, तुमलोग इसे छोड़ दो।'—ये शब्द उसके मुँहसे निकलते ही कदन्त पुनः नरकमें जा गिरा।

कदन्तके देहका ममत्व और अहंभाव अभी छूटा नहीं था। वह केवल अपनेको ही अपना समझता था। सत्यका वास्तविक ज्ञान उसे नहीं था। सिद्धि प्राप्त करानेवाली अन्तःकरणकी सूक्ष्म शक्तिसे वह अज्ञात था। वह शक्ति देखनेमें तो जालके तन्तु-सी पतली-पतली होती है, किंतु वह इतनी मजबूत होती है कि हजारों मनुष्योंका भार उठा सकती है। इतना ही नहीं, बल्कि जो इसकी सहायता करनेके उद्देश्यसे आगे बढ़ता है, उसे कम परिश्रम करना पड़ता है। किंतु जब उस शक्तिका संग्राहक यह सोचने लगता है कि 'वह शक्ति तो मेरी ही है, सत्य-मार्गपर चलनेका फल केवल मुझे ही मिलना चाहिये, उसमें अन्य किसीका हक—हिस्सा न होना चाहिये।' तब उसके अक्षय सुखका तन्तु टूट जाता है और तुरंत ही वह स्वार्थके

गहरे कूपमें जा गिरता है। स्वार्थीपन नरक है और निःस्वार्थीपन स्वर्ग है। हमारे जीवनमें जो अहंता और ममत्वके भाव पाये जाते हैं, वे ही सच्चे नरक हैं।

श्रमणकी कथा सुनकर मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ डाकू बोल उठा—'महाराज! मैं उस मकड़ेके जालके तन्तुको पकड़ूंगा और नरककी अगाध गहराईमेंसे अपनी शक्तिका प्रयोग करके बाहर निकल जाऊंगा।'।

(६)

इतना कहकर डाकू कुछ देरके लिये शान्त हो गया और फिर विचार स्थिर करके बोला—'पूज्य महाराज! सुनिये। मैं पहले कौशाम्बीके सुप्रसिद्ध जौहरी पाण्डुके यहाँ नौकर था। मेरा नाम है—महादत्त। एक दिन उन्होंने मेरे साथ ऐसा क्रूर व्यवहार किया कि मैंने नौकरी छोड़ दी और मैं डाकूओंके दलमें शामिल हो गया। फिर, धीरे-धीरे मैं उस डाकू-दलका सरदार बन गया। कुछ दिन बाद मैंने सुना कि 'वही पाण्डु जौहरी अपने साथ बहुत-सा धन लेकर इस जंगल-मार्गसे एक राजाके यहाँ जानेवाले हैं।' तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने दलको साथ लेकर उन्हें लूट लिया। अब आप कृपा करके उनके पास जाइये और मेरे इस कुकृत्यके लिये मुझे क्षमा कर देनेके लिये उन्हें समझाइये। मैं भी उन्हें माफ किये देता हूँ। जब मैं उनके यहाँ नौकरी कर रहा था, तब वे धन-मदसे मत्त हो गये थे। उनका कलेजा पत्थर-सा कठोर बन गया था। उस समय तो वे यही समझ रहे थे कि इस संसारमें बस, स्वार्थकी ही विजय है। किंतु अब मैंने सुना है कि उनका हृदय पलट गया है। वे अब परोपकारी बन गये हैं और लोग उन्हें न्यायी तथा भला आदमी मान रहे हैं। अब उन्होंने यह ऐसा अपूर्व धन प्राप्त किया है, जिसे कोई भी चुरा नहीं सकता और जिसका कभी विनाश होनेवाला नहीं।

"अबतक मैं दुष्कर्ममें ही मस्त हो रहा था; किंतु अब मुझे इस अन्धकारमें रहना नहीं सुहाता। मेरे विचारोंमें अब महान् परिवर्तन आ गया है। मैंने अब बुरी वासनाओंको अन्तःकरणसे धो दिया है। अब मेरी मृत्युमें विलम्ब नहीं है। जो थोड़ेसे पल बाकी हैं, मैं उनमें अधिक-से-अधिक शुभेच्छा करूंगा, ताकि मृत्युके बाद भी मेरी यह शुभेच्छा जारी रहे। इस बीच हे दयालु महात्मा! आप शीघ्र-से-शीघ्र पाण्डुके पास पहुँचकर उनसे कहिये कि 'राज्यका मुकुट और



दूसरा सारा द्रव्य, जो मैंने लूटा था, वह सब यहीं करीबकी गुफामें गड़ा हुआ है। वे यहाँ आकर ले जायें। मेरे जिन दो साथियोंको उस गड़े हुए धनका पता था, वे अब मर चुके हैं। इसलिये अब वह धन सुरक्षित है।' मैं चाहता हूँ कि मरते-मरते भी मैं कुछ ऐसा काम करता जाऊँ, जिससे मेरे पापोंका बोझ कुछ हल्का हो जाय। मेरी मानसिक मलिनता भी इस तरह धुलकर स्वच्छ हो जायगी और मोक्षके मार्गकी ओर जानेका कोई वास्तविक अवलम्बन भी मुझे मिल ही जायगा।" यों कहकर गुफाकी जगहका सही पता बताते हुए श्रमणकी गोदमें ही महादत्तने अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर दी।

( ७ )

श्रमण महात्माने कौशाम्बीमें जाकर पाण्डु जौहरीको सारी बातें बता दीं। पाण्डु तुरंत ही कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर गुफापर पहुँचे। गुफामें जाकर वहाँ अपने गड़े हुए सारे धनको बाहर निकाला। फिर उन्होंने महादत्त और दूसरे डाकुओंकी लाशोंका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार करवाया। उस समय महादत्तकी चित्तके आगे खड़े होकर पान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दिया—

‘हम स्वयं ही बुरे काम करते हैं और स्वयं ही उन बुरे कामोंका फल भोगते हैं। इसलिये हमें स्वयं ही इस बुराईको दूर करके स्वयं ही शुद्ध होना चाहिये। पवित्रता और अपवित्रता दोनों अपने ही हाथमें हैं। दूसरा कोई भी हमें पवित्र नहीं बना सकता। हमें स्वयं ही पवित्रता पानेके लिये प्रयत्न करना होगा। बुद्धभगवान्का भी यही उपदेश है।

‘हमारे कर्म किसी दूसरे देवताके बनाये नहीं हैं, उनके रचयिता हम स्वयं ही हैं। माताके गर्भकी भाँति हम अपने ही कर्मरूपी गर्भस्थानमें जन्म लेते हैं और वे ही कर्म हमें चारों ओरसे लपेट लेते हैं। इनमें हमारे जो बुरे कर्म होते हैं, वे हमारे लिये अभिशापरूप सिद्ध होते हैं और अच्छे कर्म आशीर्वीदरूप बनते हैं। इस तरह

हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्ष-प्राप्तिका बीज छिपा हुआ है।’

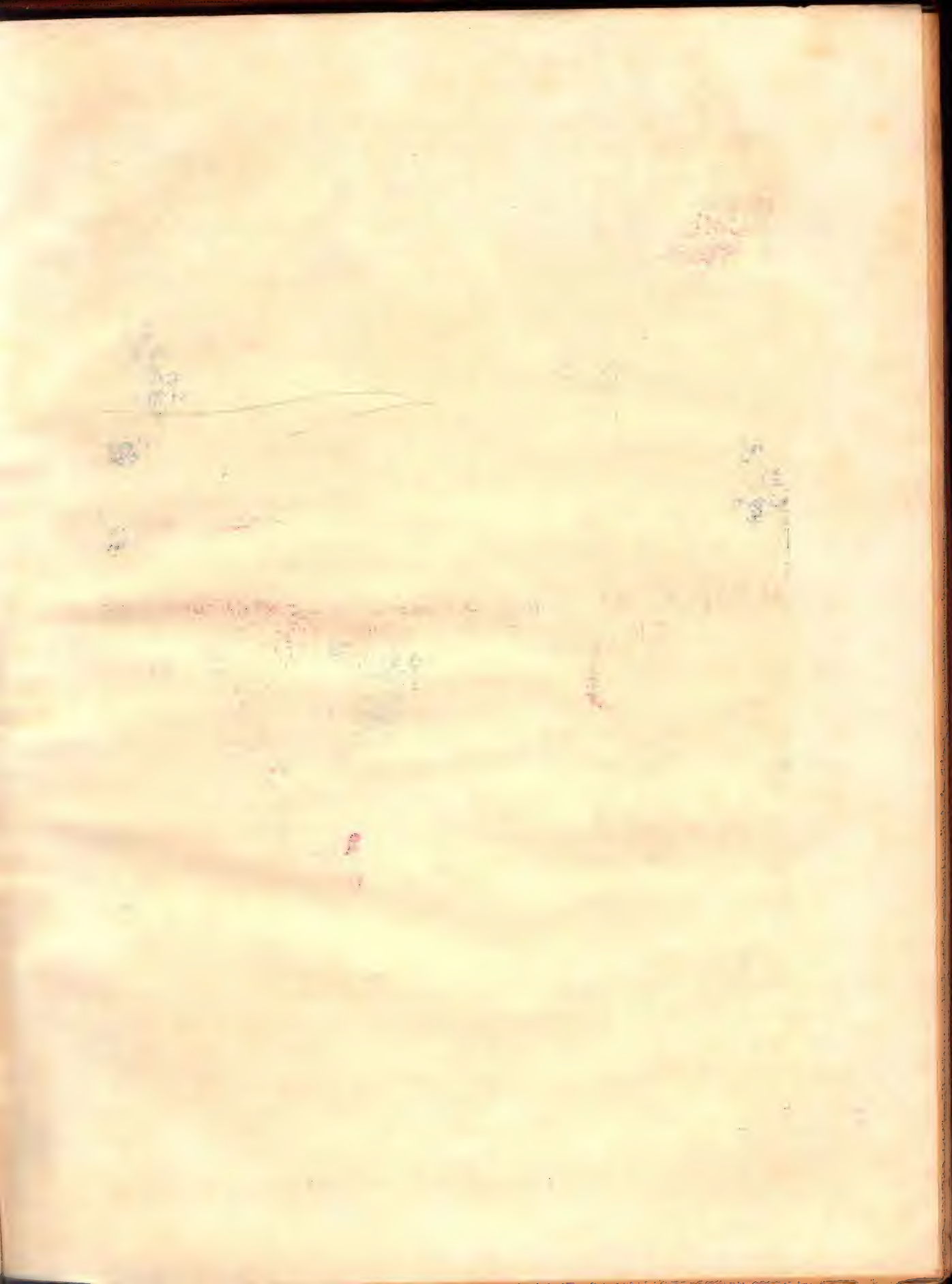
पाण्डु तमाम धनको कौशाम्बी ले आये। वहाँ पहुँचकर वे बड़ी सावधानीके साथ धनका सदुपयोग करने लगे। पैसेकी छूट होनेसे व्यापार भी खूब बढ़ गया। उस व्यापारकी कमाईको भी वे उदारतापूर्वक सत्कार्यमें ही व्यय करने लगे।

जब उनकी वृद्धावस्था आयी और आयुके दिन पूरे होते दिखायी दिये, तब उन्होंने अपनी सभी संतानोंको बुलाकर कहा—‘मेरे प्यारे बच्चो! निराश होकर कभी भी किसी भी अच्छे कामको छोड़ मत देना। यदि किसी कार्यमें तुम्हें सफलता न मिले तो उसके लिये किसी दूसरे-पर दोष न मँढ़ना। हमें अपनी निष्फलता या दुःस्वर्गके कारणको अपने ही कामोंमें ढूँढ निकालना चाहिये; क्योंकि वह कारण इन्हींमें छिपा है। उस कारणको दूर करना चाहिये। यदि तुम अभिमान या अहंकारके पर्देको हटा दोगे तो तुम्हें अपने जीवनमें ही स्थित अपनी निष्फलता और कठिनाइयोंके कारणोंका पता अपने-आप ही लग जायगा और साथ-ही-साथ उनसे छूटनेका मार्ग भी दीखने लगेगा। दुःख-नाशका उपाय भी हमारे हाथमें है। तुम्हारी आँखोंके सामने मायाका पर्दा न पड़ जाय, इसका खयाल सदा रखना और मेरे जीवनमें जो वाक्य अक्षरशः सिद्ध हुआ है, उसका सदा स्मरण करना। वह वाक्य यह है—

‘जो दूसरोंको दुःख देता है, वह अपने-आपको दुःख पहुँचाता है और जो दूसरोंका भला करता है, वह अपना ही भला करता है।’ ऐसा मानना।

‘देहकी ममताका पर्दा दूर होते ही स्वाभाविक सत्यका मार्ग मिल जाता है।’

‘यदि तुम मेरे इन वचनोंको याद रखकर इसके अनुसार जीवन बनाओगे तो मृत्युके समय भी तुम अच्छे कर्मोंकी छायामें रहोगे और तुम्हारा जीवात्मा तुम्हारे शुभ कर्मोंसे अमर बन जायगा।’







दिव्य कैलासमें भगवान् महादेव-महादेवी



## सुन्दर परलोककी बात

( लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट )

कौन जानता है कि मरनेपर क्या होगा ?

मृत्युके पदोंके उस पार न जाने क्या है ? कैसा है ?

उस रहस्यमय अवगुण्डनको किसने खोल पाया है ?

अनिश्चितताके उस महासागरमें डुबकी लगानेपर कहाँ ठिकाना लगेगा—इसे कौन जानता है ?

इत ते सब ही जावहीं भार लदाय लदाय ।

उत ते कोउ न आवई.....॥

पर हताश होनेकी बात नहीं ।

कुछ प्रमाण 'उत ते' आनेवालोंके भी मिले हैं ।

रहस्यका भेद जाननेके लिये मानवकी जिज्ञासा अनादिकालसे सचेष्ट रही है । जीवनके साथ लगी हुई अनिवार्य मृत्युकी ओर मानव कबतक आँख मूँदे बैठा रहता ?

हमारे वेद, उपनिषद्, योगशास्त्र, पुराण आदिमें तो स्थान-स्थानपर जीवन और मृत्युके रहस्यका विशद विवेचन मिलता ही है, विश्वके भिन्न-भिन्न धर्मोंमें भी इसपर कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती है । पर आजके संशयशील मानवने भी इस दिशामें कदम उठाया है । मृत्युके उपरान्त जीवनकी शोधके लिये विश्वके विभिन्न अञ्चलोंमें जो कार्य हुआ है, हो रहा है, उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता । इस विषयमें हुई अनेक शोधें प्रकाशमें भी आ चुकी हैं । मरणोत्तर जीवन, परलोक और पुनर्जन्मपर पर्याप्त साहित्य भी उपलब्ध है ।

इस सम्बन्धमें प्रामाणिक विवरण प्राप्त करनेके लिये मानसशास्त्री, परामनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनेक वर्षोंसे प्रयत्नशील हैं । निम्नलिखित कुछ पुस्तकोंसे इन बातोंकी अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है—

लेखकोंके नाम पुस्तकोंके नाम

१. Dr. D. D. S. Clark Psychiatry Today

डा० डी० डी० एस० क्लार्क साइकिपेट्री टुडे

२. Harry Price Fifty Years of Psychical Research

हैरी प्राइस फिफ्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च

३. Dr. Richet

डा० रिचेट

४. Dr. J. B. Ryne

डा० जे० बी० राइन

Thirty Years of Psychical Research

थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च

Extra-sensory Perception

एक्स्ट्रा-सेंसरी परसेप्शन

New Frontiers of Mind

न्यू फ्रण्टियर्स ऑव माइंड

The Reach of Mind

दि रीच ऑव माइंड

The World of Mind

दि वर्ल्ड ऑव माइंड

५. William James

विलियम जेम्स

Varieties of Religious Experience

वेराइटीज ऑव रेलीजस एक्सपीरियन्स

६. Professor Pratt प्रो० प्रेट

Religious Consciousness रेलीजस कांशसनेस

७. F. W. Wyres

एफ० डब्ल्यू० वायर्स

Human Personality and its Survival

ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इट्स सर्वाइवल

८. Dr. Hudson

डा० हड्सन

Law of Psychical Phenomena

लॉ ऑव साइकिकल फेनोमेना

९. Kanga

कांगा

Lives of Alien Incarnation,

लाइव्स ऑव एलियन इन्कार्नेशन

Fact or Fallacy where Theosophy and Science Meet

फैक्ट ऑर फैलेसी व्हेयर

थियासॉफी ऐण्ड साइन्स मीट

१०. Theosophical

पब्लिकेशन

The other side of Death

थियासाफिकल प्रकाशन दि अदर साइड ऑव डेथ



११. Bishop Leadbeater	Chakras; Clairvoyance; Invisible Helpers and Man; Whence, How & Whither	१९. Aurobindo Ghosh अरविन्द घोष	The Problem of Rebirth दि प्रान्लेम ऑव रीबर्थ
विशप लेडबीटर	चक्रज; क्लेयरवायन्स; इन्विज- बल हेल्पर्स ऐण्ड मैन; हेन्स; हाउ ऐण्ड हिदर	२०. Vishnu Mahadev Bhatt विष्णु महादेव भट्ट	Yogic Powers and God- Realization योगिक पावर्स ऐण्ड गॉड-रिअला- इजेशन
१२. Butler	Exploring the Psychic World	२१. Arthur Findlay आर्थर फिण्डले	On the Edge of the Ethereic ऑन दि एज ऑव दि एथेरिक
बटलर	एक्सप्लोरिंग दि साइकिक वर्ल्ड	२२. William Cooks विलियम कुक्स	Researches in Spiritualism रिसर्चेज इन स्पिरिटुएलिज्म
१३. Oliver Lodge ऑलिवर लॉज	Survival of Man सर्वाइवल ऑव मैन	२३. Simeon Edmunds साइमन एडमंड्स	Spiritualism: a Critical Survey स्पिरिटुएलिज्म: ए क्रिटिकल सर्वे
१४. J. C. Bose जे० सी० बोस	Response in the Living and Non-living रिस्पॉन्स इन दि लिविंग ऐण्ड नॉनलिविंग	२४. F. W. H. Myers एफ० डब्लू० एच० मायर्स	Human Personality and its Survival of Bodily Death ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इट्स सर्वाइवल ऑव बोडिली डेथ
१५. Dr. Krafford डा० क्राफर्ड	Reality of Psychic Phenomena रियेलिटी ऑव साइकिक फेनोमेना	२५. Frank Podmore फ्रैंक पॉडमोर	Modern Spiritualism माडर्न स्पिरिटुएलिज्म
१६. S. Desmond एस० डेसमाण्ड	You can speak with the Dead यू कैन स्पीक विथ दि डेड The Incarnation for Every man दि इन्कार्नेशन फॉर एवरी मैन We do not die वी डू नॉट डाइ World Birth वर्ल्ड बर्थ How you live when you die हाउ यू लिव हेन यू डाइ ?	२६. Sir William Crookes सर विलियम क्रुक्स	Researches in the Phenomena of Spiritualism रिसर्चेज इन दि फेनोमेना आव स्पिरिटुएलिज्म
१७. Randell रैण्डेल	The Dead have never Died दि डेड हैव नेवर डाइड	२७. J. Arthur Hill जे० अर्थर हिल	Spiritualism: its History, Phenomena and Doctrine स्पिरिटुएलिज्म: इट्स हिस्टरी, फेनोमेना ऐण्ड डाक्ट्रिन
१८. Sir Arthur Edington सर आर्थर एडिंग्टन	Science and The Unseen World साइन्स ऐण्ड दि अनसीन वर्ल्ड	२८. Antony Flew एंटनी फ्लू	A New Approach to Psychical Research ए न्यू ऐप्रोच टु साइकिकल रिसर्च
		२९. Sir William Fletcher Barrett सर विलियम फ्लेचर बर्रेट	Psychical Research साइकिकल रिसर्च



३०. Hereward-Carrington  
हियरवार्ड कैरिंग्टन  
The Psychical Phenomena of Spiritualism  
दि साइकिकल फेनोमेना ऑव  
स्परिच्युएलिज्म
३१. Joseph MacCabe  
जोसेफ मैककेव  
Spiritualism: a Popular History from 1847  
स्परिच्युएलिज्म: एपोपुलर हिस्ट्री  
फ्रॉम १८४७
३२. Charles Richet  
चार्लस रिचेट  
Traite de Metapsychique  
ट्रेटे द मेटासाइकिक
३३. S. G. Soal  
एस० जी० सोल  
My Thirty Years of Psychical Research  
माइ थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल  
रिसर्च
३४. Dion Fortune  
डियो फोरच्यून  
Psychic Self-Defence  
साइकिक सेल्फ-डिफेंस
३५. B. Abdy Collins, C. I. E.  
बी० एब्डी कॉलिन्स,  
सी० आई० ई०  
The Death is not the End  
दि डेथ इज नॉट दि एण्ड
३६. T. R. Ganapathiramier  
टी० आर० गणपथिरामियर  
The Life After Death  
दि लाइफ आफ्टर डेथ
३७. Chamanlal  
चमनलाल  
Mysteries of Life and Death  
मिस्टेरीज ऑव लाइफ ऐंड डेथ
३८. Sir Colin Garbett K. C. I. E.,  
C. S. I., C. M. G.  
सर कॉलिन गारबेट,  
के० सी० आई० ई०,  
सी० एस० आई०,  
सी० एम० जी०  
The Ringing Radiance  
दि रिंगिंग रैडियेन्स
३९. Kenneth Richmond  
कैनेथ रिचमंड  
Evidence of Identity  
एविडेंस ऑव आईडेंटिटी
४०. W. H. Salter  
डब्ल्यू० एच० सॉल्टर  
Ghosts And Apparitions  
गोस्ट्स ऐंड एप्पैरिशनस

४१. H. F. Saltmarsh Foreknowledge  
एच० एफ० साल्टमार्श फोरनॉलेज  
Evidence of Personal Survival from Cross Correspondences  
एविडेंस ऑव पर्सनल सर्वाइवल  
फ्रॉम क्रॉस कॉर्रेस्पॉन्डेन्सेज
४२. Zoe Richmond  
जू, रिचमंड  
Evidence of Purpose  
एविडेंस ऑव परपस
४३. C. K. Shaw  
सी० के० शा  
Yes, We do Survive  
येस, वी डू सर्वाइव
४४. Robert Crookall More Astral Projections  
राबर्ट क्रूकल मोर ऐस्ट्रल प्रोजेक्शनस

X X X

मृत्युके उपरान्त जो जीवन है, उसकी शोध बहुत ही मनोरञ्जक है। 'इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर साइकिकल रिसर्च'के संस्थापक और 'साइकिकल लीग'के अध्यक्ष श्रीशा डेसमण्डने 'हाउ यू लिव व्हेन यू डाइ' (मृत्युके उपरान्त आप कैसे रहते हैं?) पुस्तकमें उसका अत्यन्त ही आकर्षक वर्णन किया है। आइये, हम उसकी हलकी-सी झाँकी करें।

X X X

श्रीशा डेसमण्डके एक मित्र थे—नाटककार। 'जान ब्लेक' मान लीजिये उनका नाम। उनकी बीबी नहीं चाहती उनका नाम प्रकट करना। हाँ, तो ब्लेक साहब 'परलोक' आदिमें कोई विश्वास नहीं करते थे। डेसमण्डसे बात होती तो वे हँसीमें उड़ा देते। कहते, 'क्या बेकारकी बातें करते हो? कहाँ है, क्या है परलोक.....!'

ब्लेकके एक प्रसिद्ध नाटकका फिल्म बना।

एक दिन ब्लेक लन्दनके किसी क्लबमें हाथ धो रहे थे कि उनपर गृध्र-सी (लम्बेगो-Lumbago) का हमला हो गया। बादमें सुना कि ब्लेक साहबका देहान्त हो गया।

X X X

ब्लेक साहबका शरीर विस्तरपर पड़ा है।

उनकी सुन्दरी पत्नी बगलमें खड़ी रो रही है। विलाप कर रही है। ब्लेकको आश्चर्य हो रहा है—यह सब क्या तमाशा है। पत्नीसे कहता है—'डोडो, डार्लिंग! क्या बात है। क्यों रो रही हो? मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ।.....'



पर पत्नी तो मानो ब्लेककी बात ही नहीं सुनती। ब्लेक कुछ जोरसे बोलता है। अपनी बात दोहराता है। पत्नी फिर भी नहीं सुनती। ब्लेक हैरान। सोचता है—‘मैं अपनी आवाज साफ सुन रहा हूँ, पर मेरी बीबी क्यों नहीं सुन पा रही है?’

अचानक ब्लेकको लगता है कि वह चल-फिर सकता है। बिस्तरसे हटकर वह अपनी पत्नीके पास पहुँचता है और उसे छूनेको अपना हाथ बढ़ाता है।

अरे, यह क्या ! उसका हाथ पत्नीके आर-पार हो जाता है, पर पत्नीको उसके स्पर्शकी रत्ती भर भी अनुभूति नहीं होती। वह न तो उसे देख पाती है, न उसकी बात ही सुन पाती है।

ब्लेक समझ ही नहीं पाता कि यह सब क्या रहस्य है। तभी उसे खयाल आता है कि वह ‘मर’ तो नहीं गया ! सचमुच, वह ‘मर गया’ है।

वह सोचने लगता है—“शा डेसमण्ड ठीक तो कहता था। ऐसी ही बातें तो वह सुनाया करता था। मैं उसकी सारी बातोंको हँसीमें उड़ा देता था। वह कहता था कि “आत्मा तो कभी मरता नहीं। इस लोकके परे एक दूसरा लोक है—‘परलोक’। वह इन आँखोंसे दीखता भले न हो, पर है वह वास्तविक।”

ब्लेक अपनी चारपाईके अगल-बगल चक्कर काटता है। लोहेके पलंगपर उसका शरीर पड़ा है। वह पलंगके लोहेसे टकराता है, पर उसे कोई चोट नहीं लगती। वह आसानीसे इस पारसे उस पार हो जाता है।

अब ब्लेकको लगता है कि वह दरसल ‘मर गया’।

×                      ×                      ×

ब्लेक देखता है कि ‘उसके शवके आस-पास सगे-सम्बन्धियोंकी भीड़ लगी है। सब रो रहे हैं। विलाप कर रहे हैं। सभी ब्लेकके लिये रो रहे हैं।

पर ब्लेक उनसे कह रहा है—‘तुम लोग व्यर्थ रो रहे हो। मैं तो जीवित हूँ। मैं मर थोड़े ही गया हूँ। मेरी प्रतिमा ज्यों-की-त्यों सतेज है। मैं अभी ऐसे कितने ही नाटक लिखूँगा कि संसार चकित हो उठेगा।’.....

पर ब्लेककी इन बातोंको कोई सुनता ही नहीं।

×                      ×                      ×

ब्लेकको लगता है कि वह एक ‘नयी दुनिया’में आ गया। वह बंद दरवाजेके पास पहुँचता है। उसे छूता है तो अपने आप अपनेको दरवाजेके उस पार पाता है। दरवाजा बंद है, फिर भी वह दरवाजेके बाहर ! बिना किसी दिक्कतके वह दीवालके आर-पार हो जाता है।

अब वह उत्तर-पश्चिमी लंदनके अपने सुन्दर मकानके आस-पास चक्कर काटता है। उसे लगता है कि मैं जहाँ चाहे, वहाँ जा सकता हूँ। लार्डके क्रिकेट मैदानमें वह प्रायः जाया करता था। उसकी बात सोचते ही वह अपनेको उस मैदानमें पाता है।

ब्लेक थोड़ी देर मैदानमें इधर-उधर चक्कर काटता रहता है। कुछ देरमें उसका जी ऊब उठता है। अरे, मेरा घर ! मेरी प्यारी बीबी ! मेरे प्यारे बच्चे ! मेरे मित्र !—ये सब कहाँ हैं ? ऐसा सोचते ही ब्लेक फिर अपने घरमें पहुँच जाता है।

दरवाजा बंद-का-बंद और ब्लेक भीतर दाखिल। बिस्तरपर एक शरीर पड़ा है। यह शरीर ‘मेरा’ ही है ? अब ब्लेकको कुछ झपकी-सी मालूम होती है। कहाँ लेटूँ ? इस शरीरके पास—मेरा ही शरीर है यह—इसीके बगलमें लेटूँ। यह तो अच्छा नहीं। चलो, बैठक-खानेमें लेटूँ। अचानक ब्लेक अपने आपको अपने बैठक-खानेमें पाता है। तभी उसे अपने सामने एक महिला दीखती है। बुजुर्ग-सी महिलाकी छाया ‘कौन ? अरे,.....’

‘बेटा जान, तू आ गया ? मैं कबसे तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ !’

वह जान ब्लेककी माँ है। बेटेको वह अपनी बाँहोंमें ले लेती है। ब्लेक गहरी नोंदमें डुलक जाता है।

×                      ×                      ×

“एक विमान-दुर्घटनामें एक अंग्रेज लड़की ‘मेरी’ मर गयी।”

नवम्बर १९३४ में लंदनकी एक बैठकमें शा डेसमण्ड-सहित १३-१४ व्यक्ति बैठे इस बातका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे थे कि वह लड़की अपने एक मित्रको सुना रही थी कि मरनेके तुरंत बाद उसे कैसी, क्या अनुभूति हुई।

दुर्घटना घटते ही उसने विमानके स्विचपर हाथ लगाया। पर वह देखती है कि सामने उसीका लुंजपुंज और ध्वस्त शरीर पड़ा हुआ है।



वह उस समय भी विमानमें थी। हवा बह रही थी और ऊपर था खुला आकाश। वह सोचती है—‘पर यह शरीर तो मेरा ही है—मेरीका। तो क्या मैं मर गयी ? पर मैं तो जीवित हूँ। मुझे अपने मित्र आर्थरसे मिलना चाहिये। कितनी बातें कहनी हैं उससे।’ और इतना सोचते ही वह आ पहुँची आर्थरके पास।

वह आर्थरको देख रही थी, उसकी बातें सुन रही थी। इतना ही नहीं, आर्थरने भी स्पष्ट रूपसे मेरीकी बातें सुनीं।  
‘फिर मिलेंगे’—कहकर मेरी वहाँसे विदा हुई।

× × ×

शा डेसमण्डने अपने ‘मृत’ पुत्र—जॉनके साथ हुई अपनी मुलाकातका भी वर्णन किया है। उन्होंने कई बार उससे भेंट की। २९ दिसम्बर १९३३ को कितने ही लोगोंके समक्ष जॉनने आकर डेसमण्डका हाथ और घुटना छूकर बड़े प्रेमसे कहा—‘फादर, आई लह यू !’ ( पिताजी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ ! )

× × ×

शा डेसमण्डका ही नहीं, परलोकविद्वासे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक लोगोंका कहना है कि ‘मरकर भी मनुष्य मरता नहीं। शरीर छूट जाता है, पर आत्मा अमर है। मृत्युके उपरान्त जीव परलोकमें मस्तीसे भ्रमण करता है।’ और कैसा सुन्दर है—परलोक ? शरीरकी आधि-व्याधिका वहाँ कोई पता नहीं। न कोई रोग है, न कोई बीमारी। न कोई चिन्ता, न कोई परेशानी। पैसेकी वहाँ कोई जरूरत नहीं। न कोई लेन-देन, न कोई खरीद-विक्री, न कोई सौदेबाजी। न कोई दूकान, न कोई व्यापारी। इच्छाएँ मनमें आते ही पूरी हो जाती हैं वहाँ। ऐसा लगता है, मानो कल्पवृक्षके नीचे ही बैठे हैं सब लोग।

जो इच्छा की, वह तत्काल पूरी हो जाती है।

जिससे मिलना है, इच्छा करते ही उसके पास मौजूद।

आगसे, पानीसे, पथरसे, लोहेसे, पहाड़से बिना किसी अड़चनके आत्मा पार चला जाता है। उसके मार्गमें कहीं कोई बाधा ही नहीं आती। परलोकमें न कोई राजनीति है, न कोई दलबंदी। न युद्ध है, न अशान्ति। पुरुष और स्त्री—सब वहाँ समान हैं।

सर्वत्र प्रेम और आनन्दका साम्राज्य है। मस्ती और मौजसे भरा जीवन है। आनन्द-कानन है। रंग-विरंगे पुष्प हैं, संगीत है और क्या नहीं है ?

हाँ, जो लोग जगत्के मायाजालसे बहुत बँधे रहते हैं ? रुपये-पैसेसे बहुत बँधे रहते हैं, राग-द्वेषके चक्करमें अपनेको डुबाये रखते हैं—वे जब परलोक पहुँचते हैं तो कुछ दिनोंतक परेशान रहते हैं, रोते-झींकते और कुदते रहते हैं—परंतु कुछ उदार और दयालु आत्मा उनके पास आकर उन्हें ढाढस देते हैं, उन्हें समझाते हैं, उन्हें रास्ता दिखाते हैं। तब धीरे-धीरे उनके जीकी जलन दूर होती है और वे भी तब स्वस्थ और प्रसन्न जीवन बिताने लगते हैं।

परलोकका शरीर ईथर ( ether ) का बना होता है। स्वाद, स्पर्श और गन्धसे उसका कोई वास्ता नहीं रहता। बेतारके तारकी भाँति सारे समाचार उसे मिलते रहते हैं। जिससे जब चाहिये मिलिये, भेंट कीजिये। जब चाहिये पृथ्वीके लोगोंसे मिलिये, जब चाहे परलोकवासियोंसे। जिन्हें इस जगत्से बहुत मोह होता है, ऐसे जीव पुनर्जन्म लेकर फिर इस पृथ्वीतलपर चले आते हैं।

× × ×

मतलब ?

परलोक कोई हौआ नहीं।

परलोक कोई कष्ट और यन्त्रणाका आगार नहीं। परलोक कोई भयोत्पादक स्थान नहीं। परलोकमें दुनियाकी कोई झंझट नहीं। वही हाल है—

‘यानी रात बहुत थे जागे,

सुबह हुई आराम किया !’

हमारे सभी मृत सगे-सम्बन्धी परलोकमें हमसे मिल जाते हैं। हमारी सारी इच्छाएँ वहाँ आनन-फानन पूरी हो जाती हैं। सर्वत्र प्रेम, आनन्द और संगीतकी मधुरिमा लहराती दीख पड़ती है। आत्माकी अमरताका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। अपने सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपका प्रत्यक्ष भास होता है। फिर परलोकके नामसे डरने और भयभीत होनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

सचमुच, कैसा सुन्दर है इहलोक,

कैसा सुन्दर है परलोक !





## अपना सुख देकर दूसरोंका दुःख मिटानेमें महान् सुख और अपार पुण्य

[ विदेहराजका अनुपम त्याग ]

विदेह देशके प्रसिद्ध राजा विपश्चित बड़े ही धर्मात्मा, सदाचारी, संयमी, यज्ञावशेषभोजी, प्रजापालक, उदार और देवर्षि-पितृपूजक पुण्यपुरुष थे। उन्होंने जीवनमें एक बार अपनी एक धर्मपत्नीका तिरस्कार कर दिया था, इसलिये मृत्यु होनेपर उन्हें नरकोंको देखते हुए नरकोंके समीपके मार्गसे जाना पड़ा।

नरकोंको देखते हुए उनके समीप पहुँचते ही विभिन्न प्रकारकी घोर यातनाओंको भोगते हुए यातनाशरीरधारी नारकी प्राणियोंकी नरक-पीड़ा शान्त हो गयी। यमदूतने राजाके पूछनेपर किस पापसे, किस नरकमें पड़कर जीव कैसी, क्या भयानक पीड़ा भोगता है—यह बताया। तदनन्तर यमदूतके कथनानुसार राजा ज्यों ही आगे बढ़े कि नरकयन्त्रणासे पीड़ित प्राणियोंकी करुण पुकार उन्हें सुनायी पड़ी—‘महाराज ! हमपर कृपा कीजिये, कुछ देर और ठहर जाइये। आपके शरीरको छूकर बहनेवाली शीतल वायुका स्पर्श पाते ही हमारे सारे संताप, वेदना, यन्त्रणा दूर हो गये हैं। अतः कृपा कीजिये।’

राजा रुक गये। उन्होंने यमदूतसे पूछा कि ‘मुझसे स्पर्श करके जानेवाली वायुसे इन नरकके प्राणियोंको क्यों आनन्द मिलता है ? मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है ?’

यमदूतने कहा—‘राजन् ! आपने कभी केवल अपने लिये नहीं कमाया-खाया है। आपका यह शरीर देवता, पितर, अतिथि, नौकर-चाकर सबको खिलाकर बचे हुए अन्नके सेवनसे पुष्ट हुआ है तथा आपका मन भी सदा इन्हीं सबकी सेवामें लगा रहा है। आपने बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं। अतः आपके दर्शनसे तथा आपसे छूकर बहनेवाली वायुके प्रभावसे नरककी यातना बंद हो गयी है। यमलोकके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, कौवे, गीध आदि पक्षी, जो पीड़ा देने, काटने, जलाने, नोचने आदिके द्वारा महान् दुःख देते थे—सब शक्तिहीन हो गये हैं। उनका क्रूर स्वभाव ही बदल गया है।

यह सुनकर राजाने कहा—मेरे विचारसे तो पीड़ित प्राणियोंको दुःखसे छुड़ाकर शान्ति प्रदान करनेमें जो सुख मिलता है, वह सुख न स्वर्गमें मिलता है, न ब्रह्मलोकमें ही। यदि मेरे समीप रहनेसे इनको नरकयातना नहीं सताती

है तो हे भद्रपुरुष ! मैं सूखे काठकी तरह अचल होकर यहीं रहूँगा—

यदि मत्संनिधावेतान् यातना न प्रवाधते।

ततो भद्रमुखाच्चाहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः॥

( मार्कण्डेयपुराण १५।५७ )

यमदूतने फिर कहा—‘यह स्थान आपके लिये नहीं है।

आप पुण्य-प्राप्त दिव्यलोकमें चलकर वहाँके भोगोंका उपभोग कीजिये।’ इसके उत्तरमें राजाने जो कुछ कहा, वह प्रत्येक कल्याणकामी पुरुषको अपने हृदयपर अङ्कित करके तदनुसार आचरण करना चाहिये। राजा बोले—

‘मेरे समीप रहनेसे इन नरकवासियोंको सुख मिलता है और मेरे न रहनेपर ये सब प्राणी दुखी हो जायेंगे, जब ऐसी बात है तो मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा। शरणमें आनेकी इच्छा रखनेवाले आतुर एवं पीड़ित मनुष्यपर, चाहे वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, जो कृपा नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है। जिनका मन संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेमें नहीं लगता, उनके यज्ञ, दान और तप इहलोक तथा परलोकमें भी कल्याणके साधक नहीं होते। जिसका हृदय बालक, वृद्ध और कष्टसे आतुर प्राणियोंके प्रति कठोरता रखता है उसे मैं मनुष्य नहीं मानता, वह तो निरा राक्षस है—

‘.....न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः।’

( मार्कण्डेयपुराण १५।६२ )

‘यद्यपि मुझे ( यहाँ रहनेमें स्वर्गके भोग-सुख नहीं मिलेंगे, वरं ) नरकोंकी अग्निका ताप सहना पड़ेगा, नरककी भयानक उग्र दुर्गन्ध प्राप्त होगी, भूख-प्यासका महान् दुःख, जो मूर्छित कर देनेवाला है, भोगना पड़ेगा, तथापि इन दुखियोंकी रक्षा करनेमें जो सुख है, उसे मैं स्वर्ग-सुखसे बढ़कर मानता हूँ। यदि अकेले मेरे दुखी होनेसे बहुत-से आर्त प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है तो मुझे कौन-सा सुख नहीं मिल गया ? अतः दूत ! तुम तुरन्त लौट जाओ। मैं तो यहीं रहूँगा।’—



एतेषां संनिकर्षात् तु यद्यग्निपरितापजम् ।  
तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसम्भवम् ॥  
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत् ।  
एतेषां त्राणदानं तु मन्ये स्वर्गसुखात् परम् ॥  
प्राण्यन्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।  
किं नु प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं ब्रज माचिरम् ॥

( मार्कण्डेयपुराण १५ । ६३-६५ )

राजा आग्रहपूर्वक रुक गये; तब उन्हें लेनेके लिये स्वयं धर्मराज और इन्द्र वहाँ पहुँचे । धर्मराजने विमानपर सवार होकर उन्हें स्वर्ग चलनेके लिये कहा । पर राजाने कह दिया कि 'ये दुखी जीव मुझे लक्ष्य करके त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं । अतः मैं नहीं जाऊँगा । आपलोग जानते हों तो देवराज इन्द्र और धर्मराज ! बताइये मेरे कितने पुण्य हैं । ( जिनसे इनको सुख मिल सके ) ।'

धर्मने कहा—जैसे समुद्रके जलबिन्दु, आकाशके तारे, वर्षाकी धाराएँ, गङ्गाजीके बालुका-कण या गङ्गाजलकी बूँदें असंख्य हैं; वैसे ही तुम्हारे पुण्य भी असंख्य हैं और आज

तो इन नारकी जीवोंपर कृपा करनेसे तुम्हारे पुण्य लाखों-गुने और बढ़ गये हैं ।

राजाने कहा—मेरे समीप आनेसे इन दुखी जीवोंको यदि उच्च पद नहीं मिला तो फिर क्या हुआ ! मेरे जो कुछ भी पुण्य हैं, उनके द्वारा ये यातनामें पड़े हुए पापी जीव नरकसे छुटकारा पा जायें ।

अब तो नारकी जीव मुक्त होने लगे । इन्द्रने कहा—'राजन् ! इस तुम्हारी उदारताने तो तुमको और भी ऊँचे स्थानपर पहुँचा दिया है । देखो, ये सब पापी प्राणी नरकसे मुक्त हो गये ।'

उधर पापी नरकमुक्त हुए, इधर राजापर पुष्पवर्षा होने लगी । स्वयं भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और उन्हें विमानमें बैठाकर दिव्य धाममें ले गये ।\*

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः ।

विमानं चाधिरोप्यैनं स्वलोकमनयद्धरिः ॥

( मार्कण्डेयपुराण १५ । ७८ )

## श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता

मृतात्माके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि अवश्य करने चाहिये । प्रतिदिन ही तर्पण तथा बलिवैश्वदेवके अङ्ग-स्वरूप श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । वैसे आश्विन कृष्ण-पक्षमें मृतककी निधन-तिथिको तथा जिस मासमें जिस तिथिको मृत्यु हुई थी, उसी मासकी उस तिथिके दिन प्रतिवर्ष अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । यदि मृतात्मा यमलोकके प्रेतविभाग या पितृविभागमें है, तब तो उसकी भयानक भूखमें इससे बड़ी तृप्ति मिलेगी । देवलोकमें चला गया है या किसी स्थूलशरीरको प्राप्त हो गया है तो वहाँ भी उस देहके अनुरूप तृप्तिकारक वस्तुके रूपमें परिणत होकर वह उसे मिल जायगा । जीव जहाँ भी होता है, वहाँ उसको उसके अनुरूप होकर वह वस्तु मिल जाती है, वैसे ही जैसे सुबूर देशमें भारतसे प्रेषित रुपये, प्रेषणविभागद्वारा वहाँ भेज दिये जाते हैं और वहाँके प्रचलित सिक्केके रूपमें ( जैसे भारतका रुपया अमेरिकामें डालरके रूपमें मिल जाता है, वैसे ही ) जिसके नाम भेजे गये हैं, उसको मिल जाते हैं ।

श्राद्धके अतिरिक्त समय-समयपर मृतकके लिये

अन्नदान, जलदान और वस्त्रदान तो यथाशक्ति करते ही रहना चाहिये ।

ऐसा कहा जाता है कि गयाश्राद्ध करनेपर या अमुक तीर्थमें पिण्ड देनेपर उसके लिये श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि वह प्राणी मुक्त हो जाता है । यह सत्य भी हो सकता है । परन्तु यदि कदाचित् किसी कारणवश वह मुक्त न हुआ हो तो श्राद्ध न करनेसे वह आत्मा अतृप्त, दुखी रह जाता है तथा हम कर्तव्यसे च्युत होते हैं । अतएव गयाश्राद्ध या तीर्थमें विशेष पिण्डदान देनेके बाद भी श्राद्ध तो करते ही रहना चाहिये ।

जिसके लिये श्राद्ध किया जाता है, कदाचित् वह मुक्त हो गया तो यहाँ किया हुआ श्राद्धकर्मरूपी पुण्य, वैसे ही कर्त्ताके पास लौट आता है, जैसे किसीके नाम मनीआर्डर या बीमा भेजे जानेपर उसके मृत हो जाने या न मिलनेपर भेजनेवालेके पास वापस लौट आता है । अतएव हर हालतमें श्राद्धकर्म करना ही चाहिये ।

मृतकके लिये श्राद्ध अनिवार्य आवश्यकता है ।



## परमपद अथवा परमधाम-विज्ञान

( लेखक—श्रीमहावीरप्रसादजी श्रीवास्तव 'अनुराग' )

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये  
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये ।  
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये  
नमो नमोऽनन्तद्वैकसिन्धवे ॥

परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे संसारके कण-कणमें व्याप्त हैं; यह बात लोकमें प्रसिद्ध है । साथ ही उन्हीं सर्वव्यापी भगवान्‌के प्रकृतिपार निज धामका उल्लेख भी आर्ष-ग्रन्थोंमें बराबर पाया जाता है; जहाँ जीव कर्म-बन्धन तथा आवागमनके चक्रसे मुक्त हो केवल्य मोक्ष अथवा भगवान्‌के साथ दिव्य अप्राकृत लीला-विहारको प्राप्त होते हैं । भगवान्‌ने स्वयं श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने उस परमधामका संकेत किया है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।  
यद्वत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

( १५ । ६ )

अर्थात् भगवान् ( अर्जुनके प्रति ) कहते हैं—‘जहाँ न सूर्य प्रकाश करता है; न चन्द्रमा, न अग्नि ( तात्पर्य यह कि जो स्वयं प्रकाशमान है ) और जहाँ जाकर फिर नहीं लौटते; अर्थात् आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाते हैं; वह मेरा परमधाम है ।’

इतना ही नहीं; किंतु भगवान्‌के विविध सगुण-साकार रूपोंके उपासक-सम्प्रदाय, उसी परमधामके अन्तर्गत अपने-अपने इष्ट-धामोंकी ओर भी लक्ष्य करते हैं और उनके लिये आर्ष-ग्रन्थोंमें प्रमाण भी बराबर उपलब्ध होते हैं; जैसे—भगवान् श्रीरामका परमधाम ‘साकेत’, भगवान् श्रीकृष्णका परमधाम ‘गोलोक’ और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज परविष्णुका परमधाम ‘पर वैकुण्ठ’ इत्यादि ।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सर्वव्यापी परमात्माका भी अलग एक परमधाम मानना कैसे युक्तिसंगत होगा ? कारण कि दोनों बातें एक साथ माननेमें दोनोंमें विरोध स्पष्ट है । तात्पर्य यह कि वे परब्रह्म परमात्मा; यदि सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त हैं; तो फिर उनका अलग एक निजधाम होना कैसे सम्भव है ? और यदि इस प्रकार उनका निजधाम माना जाय; तो फिर उन्हें सर्वत्र समान रूपसे व्यापक कैसे कह सकेंगे ? अतएव इस विरोधका समन्वय ही प्रस्तुत निबन्धका मुख्य विषय है ।

इस समन्वयके लिये सबसे प्रथम परमात्माकी सर्व-व्यापकतासे सम्बन्धित एक विशेष समस्याकी ओर हमें दृष्टिपात करना अपेक्षित होगा । वह समस्या यह कि परमात्माको लोग सर्वव्यापक मानते और कहते अवश्य हैं; पर साथ ही यह भी सत्य है कि उनकी यह मान्यता अधिकतम शास्त्रप्रमाण अथवा अनुभवी संत-महात्माओं और महापुरुषोंके वचनोंपर ही आधारित रहती है । प्रत्यक्ष रूपसे तो उन सर्वव्यापी परमात्माका दर्शन अथवा अनुभव विशेष साधनाके द्वारा किन्हीं विशेष भाग्यशाली साधकों और भक्तोंको ही हो पाता है । अतएव प्रश्न यह है कि जब वह परमात्मा जगत्‌के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त और उपस्थित है ही; तो फिर उसका दर्शन अथवा अनुभव सर्वसाधारणको भी क्यों न होना चाहिये ?

कुछ लोग इस प्रश्नके उत्तरमें कह सकते हैं कि ‘परमात्मा सर्वव्यापक अवश्य है; पर वह साकार न होकर निराकाररूपसे सबमें व्याप्त है । इसलिये विशेष योगी महापुरुष ही योग-दृष्टिसे उसका अनुभव कर पाते हैं । सर्वसाधारणके लिये यह सम्भव नहीं है ।’ पर समस्याके समाधानके लिये यह उत्तर पर्याप्त और संतोषजनक इसलिये नहीं है कि निराकार पदार्थ तो और भी हैं; जैसे वायु और आकाश भी निराकार हैं; पर वायुका अनुभव सभीको होता है । आकाशको भी सभी देखते हैं । इसी प्रकार उस निराकार परमात्माका भी अनुभव किसी सीमातक सर्वसाधारणको भी होना चाहिये ।

कुछ लोग कह सकते हैं कि ‘निराकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी वह स्थूलदृष्टिका विषय न होकर सूक्ष्म दिव्यदृष्टिद्वारा ही उसका अनुभव तथा साक्षात्कार सम्भव होता है; इस कारण सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं होता ।’ पर यह उत्तर भी पर्याप्त और संतोषजनक तब हो सकता है, जब कि उस परमात्माको स्थूलतामें व्याप्त न मानकर केवल सूक्ष्म और दिव्य जगत्‌तक ही उसे सीमित मान लिया जाय । पर ऐसा न होकर उसे सूक्ष्म और स्थूल—सभी पदार्थोंमें समानरूपसे व्याप्त माना जाता है । तो फिर स्थूलमें भी सर्वसाधारणको





प्रह्लादका पूर्वजन्म

[पृष्ठ ४९८]



देवर्षि नारदके पूर्वजन्म

[पृष्ठ ४९८]





विपश्चित्से नारकी प्राणियोंकी पुकार [पृष्ठ ६३८]



विपश्चित्से धर्मराज और इन्द्रकी बातचीत [पृष्ठ ६३९]



विपश्चित्का नरकके समीप रहनेका निश्चय [पृष्ठ ६३९]



विपश्चित् भगवान् विष्णुके साथ विमानमें [पृष्ठ ६३९]



स्वाभाविकरूपसे ही उसका दर्शन अथवा अनुभव क्यों नहीं होना चाहिये ?

अब हम इस सम्बन्धमें यथार्थ कारणकी खोजके लिये लोकव्यवहारके स्वाभाविक नियमोंकी ओर दृष्टि ले जाना उचित समझते हैं ।

संसारमें देखा जाता है कि कोई वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी जब हम उसे देख नहीं पाते, तो अवश्य ही उस वस्तुके और हमारे बीच कोई आवरण होता है। उसीके कारण सामने उपस्थित रहते हुए भी हम उस वस्तुको देख नहीं पाते। अतएव ऐसी ही कोई बात हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच भी सम्भव हो सकती है, जिसके कारण उस परमात्माके जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हो पाता ।

अब यह आवरण भी संसारमें कितने प्रकारके हो सकते हैं, इस बातकी ओर ध्यान ले जाना भी आवश्यक होगा; क्योंकि इसीके सहारे हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणकी खोज कर सकेंगे ।

साधारणरूपसे एक आवरण होता है—दीवार-जैसा । इसमें दीवारके बीचमें होनेके कारण, उस पारकी वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी हमें दिखायी नहीं देती । पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस तरहका कोई पर्दा नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा कोई पर्दा हो, तो वह सर्वव्यापी प्रभु उस पर्देमें भी तो व्याप्त है; अतएव उस पर्देपर ही उसका दर्शन अथवा अनुभव बिना किसी प्रयत्नविशेषके स्वाभाविकरूपमें ही सम्भव होना चाहिये ।

दूसरा एक प्रकारका पर्दा अभ्यास अथवा निर्माण-कलाके द्वारा सामने उपस्थित होनेवाले चमत्कारों अथवा आविष्कारोंके सम्बन्धमें देखा जाता है । जैसे शीतोष्णका असाधारणरूपसे सहन कर लेना, पहाड़की चोटियोंपर सुगमताके साथ चढ़ जाना, नेत्र बंद करनेपर अनेक प्रकारके दृश्य सामने उपस्थित होना, कान बंद करनेपर अनेक प्रकारके शब्द सुनायी देना, शब्दभेदी बाण चलाना, इत्यादि; ऐसे ही कई वस्तुओंके युक्तिपूर्वक संयोग और संयमके द्वारा रेलके इंजन, तार, मोटर, वायुयान, सिनेमा, रेडियो आदि आविष्कारोंका सामने आ जाना । इन चमत्कारों, अथवा आविष्कारोंकी सम्भावना निश्चित होनेपर

भी, उनकी प्रत्यक्षतामें अभ्यासके अभाव अथवा निर्माण-कलाके अज्ञानका ही पर्दा रहता है, जिसके कारण सामान्य-रूपसे उनकी प्रत्यक्षता सम्भव नहीं हो पाती । पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस प्रकारका कोई आवरण भी सम्भव नहीं है; क्योंकि परमात्मा किसी प्रकारके अभ्यास अथवा निर्माणका परिणाम न होकर नित्य सच्चिदानन्दधन, सबका प्रभु, जैसा वह है वैसा ही नित्य एकरस रहनेवाला, भगवान् है और सभी प्रकारके अभ्यासों और निर्माण-कौशल्लोंके पीछे मौलिकरूपसे उसका ही नियन्त्रण छिपा हुआ है । भौतिक विज्ञानके आविष्कारोंमें भी वैज्ञानिक विशेषज्ञ प्रकृतिके नियमोंका निर्माण नहीं करते; किंतु शक्त अथवा अज्ञातरूपसे प्रकृतिके अन्तर्गत उस सर्वव्यापी परमात्माद्वारा नियन्त्रित नियमोंको ही खोजते और किसी सीमातक उनकी सूक्ष्मतातक पहुँच पाते हैं ।

एक और विचित्र प्रकारका पर्दा होता है—बाजीगर नटके इन्द्रजालका । बाजीगर नट एक जन-समूहके बीच उपस्थित होकर जादूके द्वारा अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक दृश्य दिखाता है, जो वास्तवमें उस रूपमें सत्य न होकर केवल जादूके प्रभावसे उस रूपमें दर्शकोंको दिखायी पड़ते हैं । इसे प्रायः नजरबंदीका खेल कहा जाता है । इस जादू अथवा नजरबंदीके पर्देमें विचित्रता यह होती है कि वास्तवमें उस स्थलपर हर एक वस्तु अपनी बगहपर जैसी-की-तैसी बनी रहते हुए भी दर्शकोंको दिखायी दूसरे रूपमें पड़ती है और जादूका प्रभाव हटा लेनेपर फिर पूर्ववत् जैसी-की-तैसी दिखायी पड़ने लगती है । उदाहरणके लिये जैसे बाजीगर नट जादूके द्वारा रुपयेके ढेर दिखा देता है । पर वास्तवमें वहाँ रुपये न होकर केवल जादूके प्रभावसे रुपयेके ढेर दिखायी पड़ते हैं । उन जादूके रुपयोंसे कोई व्यापार नहीं हो सकता । यदि ऐसा होता, तो बाजीगर नट इस प्रकार रुपयोंके ढेर पैदाकर स्वयं बहुत बड़ा धनी बन जाता और पैसेकी लालचमें सड़कोंपर अथवा द्वार-द्वार जादूका खेल दिखाते फिरनेकी उसे आवश्यकता न होती । इसी प्रकार बाजीगर नट शरीरको टुकड़े-टुकड़े कटा हुआ दिखाकर पुनः जादूका प्रभाव हटाकर, शरीरको फिर पूर्ववत् जैसा-का-तैसा दिखा देता है । वास्तवमें शरीर कटा नहीं; किंतु केवल जादूके प्रभावसे कटा हुआ दिखा दिया गया था । तुलसीकृत रामचरितमानसमें, अंगद-रावण-



संवादके अन्तर्गत प्रसंगवश ऐसे जादूकी चर्चा आयी है। यथा—

इंद्रजालि कहूँ कहिअ न वीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ॥  
( ६।२८।५ )

अवश्य ही तीसरे प्रकारके इस जादूके विचित्र आवरणको दृष्टान्तरूपमें सामने रखकर हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणकी रूपरेखाको समझनेमें किसी सीमातक सफल होनेकी आशा कर सकते हैं; कारण कि सृष्टिव्यापारके सम्बन्धसे परमात्माको भी एक जादूगर नटके रूपमें व्यक्त किया गया है; जैसा कि तुलसीकृत रामचरितमानसमें ही—

नट कृत चिकट कष्ट खगराया । नट सेवकहि न व्यापइ माया ॥  
( उत्तरकाण्ड १०३।४ )

सो नर इंद्रजाल नहि भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥  
( अरण्यकाण्ड ३८।२ )

उस अद्भुत नटनागर परमात्माने अपनी मायारूपी जादूके द्वारा इस जगत्-प्रपञ्चकी रचना की है; जैसा श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामके वचनोंसे ही स्पष्ट है—

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर विविध प्रकारा ॥  
( उत्तरकाण्ड ८५।२ )

अतएव हमारे और सर्वव्यापी-परमात्माके बीच नट-द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंके समान, परमात्माकी मायाद्वारा उत्पन्न यह जगत्-प्रपञ्चकी रचना ही विचित्र ढंगका आवरण है; जिसके कारण ही, परमात्माके जगत्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उनका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हो पाता । इस आवरणकी विचित्रता यह है कि यद्यपि परमात्माने अपनेसे पृथक् किसी अन्य सामग्रीसे इस जगत्की रचना न करके, अपनी मायाके द्वारा वह स्वयं ही इस जगत्-प्रपञ्चके रूपमें परिणत हुआ है; जैसा कि प्रमाणरूपमें श्रुतिका वाक्य 'एकोऽहं बहु स्याम।' प्रसिद्ध है; जिसका अर्थ यह है कि सृष्टिके पूर्व परमात्माने संकल्प किया कि 'मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ।' पर ऐसा होते हुए भी, नटके द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंके समान ही, इस जगत्में जीवको सामान्यरूपसे उस परब्रह्म परमात्माका दर्शन अथवा अनुभव न होकर यह मायिक जगत्-प्रपञ्च ही

दिखायी पड़ता है और यही सत्य प्रतीत होता है; जैसा कि तुलसीकृत रामचरितमानसमें ही स्पष्ट है—

जासु सत्यता तैं जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥  
( बालकाण्ड ११६।४ )

इस स्थलपर एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उपर्युक्त श्रुतिके अनुसार यदि अपने संकल्पसे स्वयं परमात्मा ही जगत्-प्रपञ्चके रूपमें परिणत हुआ है तो फिर यह जगत् भी तो ब्रह्म अथवा परमात्मा ही हुआ । तो फिर इस संसार-प्रपञ्चसे पृथक् ब्रह्म अथवा परमात्माके दर्शन अथवा अनुभवके प्रयत्नकी आवश्यकता ही क्या है ?

अवश्य ही उक्त श्रुतिकी सामान्य ध्वनिको देखते हुए इस प्रकारका प्रश्न असंगत नहीं कहा जा सकता । इतना ही नहीं, एक दूसरी श्रुति स्पष्टरूपमें ही जगत्को ब्रह्मका रूप कह रही है; यथा—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'।

पर इस स्थलपर विशेषरूपसे ध्यान देनेकी बात यह है कि वह परमात्मा प्रत्यक्ष रूपमें नहीं; किंतु नटके जादूकी तरह अपनी मोहिनी मायाके द्वारा इस जगत्के रूपमें उपस्थित हुआ है; अतः जगत्के ब्रह्म अथवा परमात्माका ही रूप होते हुए भी, ब्रह्म अथवा परमात्माके जो गुण और लक्षण शास्त्र तथा अनुभवी महापुरुषोंके द्वारा सुने जाते हैं और जिनके कारण ही मुमुक्षु अथवा भक्त साधक उस परम प्रभुके साक्षात्कारके लिये उत्सुक और लालायित होते हैं; वह बात इस मायिक जगत्में नहीं पायी जाती । अतएव जगद्रूपी ब्रह्मके सामने उपस्थित होते हुए भी प्रत्यक्ष रूपसे उस ब्रह्म अथवा परमात्माके दर्शन और साक्षात्कारकी अपेक्षा अनिवार्य-रूपसे बनी ही रहती है ।

फिर एक बात और समझ लेनेकी है । वह यह कि उक्त श्रुतिका यह भी अर्थ नहीं कि नित्य एकरस रहनेवाला, शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्म ही समग्ररूपसे इस मायिक जगत्के रूपमें परिणत हो गया । इस विषयको तत्त्वतः समझनेके लिये सृष्टि-परम्पराके एक पक्षविशेष-की ओर ध्यान ले जाना अपेक्षित होगा । वह यह कि सृष्टि हर बार बिल्कुल नयी ही न होकर पूर्वसृष्टिसे मिलती-जुलती ही हुआ करती है; यह बात आर्ष-ग्रन्थोंमें स्पष्ट है । प्रमाणके लिये श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ३ अध्याय ९।४३ देखिये—



सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।

प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेते ॥

भगवान् ब्रह्माको अपनेसे उत्पन्न करके उन्हें आदेश देते हैं कि 'हे ब्रह्माजी ! तुम स्वयम्भू, सर्ववेदमय, अपने-आपसे ही मुझमें लीन हुई सम्पूर्ण प्रजाकी पूर्वके समान रचना करो।' और भी—

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।

कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥

( श्रीमद्भा० ३।१२।३४ )

‘ब्रह्माने विचार किया कि मैं पहलेके ही समान सब लोकोंकी रचना किस प्रकार करूँ। उस समय उनके चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए।' और भी भगवान् का साक्षात्कार कर लेनेके पश्चात् ब्रह्माद्वारा विश्व-सृजनके सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक आया है—

अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ।

सर्वभूतमयो विद्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥

( श्रीमद्भा० २।९।३८ )

‘ब्रह्माने अन्तर्धान हुए हरिको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूर्ववत् इस विश्वको रचा।'।

उपर्युक्त श्लोकोंमें आये रेखाङ्कित यथापूर्वं, यथापुरा और पूर्ववत् शब्द इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं।

इस प्रकार महाप्रलयमें जब सारी सृष्टि परमात्मामें लय हो जाती है, उस समय वह परमात्मा अपनेमें लय हुई सृष्टिके सहित एक रहते हैं; यही ‘एकोऽहं बहु स्याम।' में ‘एकोऽहं’ का तात्पर्य है। फिर उस एकसे बहुत हो जानेका संकल्प होनेपर उस अपनेमें लीन सृष्टिको ही पूर्वकी भाँति पुनः प्रकट कर देते हैं, यही ‘बहु स्याम’ का अभिप्राय है। अब इस सृष्टि अथवा जगत्-प्रपञ्चकी परमात्मासे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, उनके अङ्गविशेषके रूपमें नित्य स्थित रहते हुए, उन परमात्माके ही संकल्पसे रचनाकालमें, उनसे ही इसका केवल आविर्भाव और प्रलयकालमें उनमें ही तिरोभावमात्र होता रहता है। यह संसार जड-चेतनात्मक होनेसे इसे ‘चिदचित् प्रकृति’ भी कहा जाता है। यह चिदचित् प्रकृति अथवा जगत् यद्यपि उपर्युक्त दृष्टिसे परमात्मासे पृथक् न होकर उनका अङ्ग ही है; फिर भी इसकी अपनी एक विचित्र विशेषता

है। वह विशेषता यह कि इस चिदचित् प्रकृतिमें परिवर्तन अथवा विकृति भी सम्भव है, पर इसके परिवर्तन अथवा विकृतिसे, परमात्माके स्वरूप और उनकी नित्य एकरसता और निर्विकारतामें कोई अन्तर नहीं आता। मनुष्यके शरीरमें बालोंके दृष्टान्तसे इस बातको सुगमताके साथ समझा जा सकता है। वह इस प्रकार कि जैसे शरीरमें सिरके अथवा अन्य स्थलके बाल भी हैं तो शरीरका ही भाग; पर जैसे शरीरके किसी भागपर त्वचामें किसी प्रकारकी चोट अथवा आघातसे शरीरमें जल्म अथवा पीडा उत्पन्न होकर वह भाग विकृत हो जाता है; उस प्रकार बालोंमें किसी प्रकारकी चोट अथवा दबाव पड़नेपर भी उनमें कोई विकृति नहीं आती; सिरके बालोंको अनेक प्रकारसे ऎँटिये, गुहिये, गाँठ लगाइये, कंघीसे उन्हें छेड़कर इधर-उधर कीजिये; पर उससे शरीरमें कोई आघात अथवा विकृति नहीं आती; किंतु इस प्रकार बालोंको छेड़कर उनमें अनेक प्रकारके गठन अथवा रूप-परिवर्तनसे शरीरके सौन्दर्य और शृङ्गारमें ही एक विशेषता उत्पन्न होती है। इसी प्रकार उपर्युक्त कथनके अनुसार परमात्मामें ही उसके अङ्गरूपमें स्थित चिदचित् प्रकृति अथवा संसारके परिणामी और परिवर्तनशील होनेसे भी, उस नित्य एकरस परमात्माके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं आता; प्रत्युत वेदान्तदर्शनके ‘लोकवत्सु लीलाकैवल्यम्।' ( २।१।३३ ) सूत्रके अनुसार उक्त प्रभुमें बिना किसी विकारके केवल लीलाके रूपमें, उसके द्वारा इस सृष्टि-व्यापारका अवकाश प्राप्त होता है। इस दृष्टिसे ब्रह्मको चिदचिद्विशिष्ट भी कहा जाता है। पर इस चिदचित् प्रकृतिकी ब्रह्मसे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, शरीरमें रोम और नखके समान यह उस परमात्मामें ही स्थित है; इसलिये इससे ब्रह्मके अद्वैत होनेमें भी कोई बाधा नहीं उपस्थित होती।

अब जैसे नटके द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंको देखनेवाले अज्ञ बालक तो उन दृश्योंको सत्य ही मानकर भ्रमित रहते हैं; पर जिन प्रौढ़ लोगोंको जादूका ज्ञान हो जाता है, वे उन जादूके दृश्योंसे भ्रमित, चकित और मोहित न होकर, उन्हें जादूका खेल समझकर सचेत और सावधान रहते हैं; यद्यपि दृश्य तो उनके सामने भी वही रहते हैं। इसी प्रकार शास्त्र और सत्संगद्वारा जिनको इतना पता हो जाता है कि यह संसार मायाद्वारा उत्पन्न



भगवान्का खेल है, वे इसमें मोहित और भ्रमित न हो कर, इसे भगवान्के ऐश्वर्यके रूपमें ही देखते हैं।

अब जैसे पर्दा मोटा और घना होनेपर उस पारकी वस्तु बिल्कुल नहीं दिखायी देती; पर किन्हीं उपायोंद्वारा पर्देके हल्का और झीना हो जानेपर कुछ दिखायी देने लगती है; और इस प्रकार विशेष उपायोंद्वारा पर्दा जितना-जितना हल्का और झीना होता जाता है, उतना ही पारकी वस्तु अधिक स्पष्टरूपमें दिखायी देने लगती है। इसी प्रकार भक्ति, योग और ज्ञानकी गम्भीर साधनाद्वारा, मायाका आवरण भी हल्का पड़ता जाता है और इस प्रकार उपासनाके द्वारा जितना यह मायाका आवरण हल्का पड़ता जाता है, उतना-ही-उतना इस मायिक जगत्के पीछे सर्व-व्यापी ब्रह्मकी संज्ञा भी झलकने लगती है। इस प्रकार अनेक भक्ति और अत्यात्म-पथके साधकों तथा महापुरुषोंको शरीर रहते इस मानव-जीवनमें ही परमात्माका साक्षात्कार अथवा अनुभव होने लगता है। पर इस जगत्-प्रपञ्चकी उत्पत्ति ही मायाद्वारा हुई है; अतः इस जगत्में वह साक्षात्कार अथवा अनुभव कितना भी स्पष्ट क्यों न हो, पर उसमें कुछ-न-कुछ प्रकृति अथवा मायाका आवरण रहता ही है। अब इस स्थलपर स्वाभाविकरूपमें ही एक प्रश्न उठता है कि शास्त्र तथा अनुभवी संत-महात्माओंके वाक्योंमें भगवान्को जीवके सच्चे स्वामी, पिता, माता, सखा, प्रियतम—कहकर अतिशय निकटका सम्बन्ध सूचित किया गया है। तब इस प्रकारकी आत्मीयता और इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी वे प्रभु साधक जीवात्माके लिये भी सदा पर्देमें ही रहें; प्रत्यक्ष निरावरण और स्थायीरूपमें उनका संयोग कभी सम्भव ही न हो; यह भी कहाँतक युक्तिसंगत कहा जा सकता है। साथ ही दूसरी समस्या यह भी है कि यह प्राकृत शरीर तो कर्मोंसे उत्पन्न होता है और प्रारब्ध-भोगतक ही रहता है। इस संसारमें आवागमन और शरीरोंकी प्राप्ति कर्मोंके द्वारा होती है; पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाके द्वारा कर्म-बन्धन समाप्त हो जानेपर, इस संसारमें शरीर-धारण करनेका अवकाश ही नहीं रहता; अतः उस स्थितिमें वह मुक्त जीवात्मा कहाँ रहेगा?

यद्यपि सामान्यरूपसे लोगोंका ज्ञान प्रायः परमात्माके सर्वव्यापकत्वके गौरवतक ही सीमित रहकर, वे इतनेसे ही उसे सर्वदेशी मानते हैं; पर वास्तवमें उस परब्रह्म परमात्माकी महिमा इतने तक ही सीमित न होकर, वह इस सर्वव्यापकत्वसे

भी बहुत महान् है। इस बातका संकेत श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने स्वयं अर्जुनके प्रति किया है। यथा—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।  
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

( १०।४२ )

भगवान् कहते हैं—‘अर्जुन ! इस बहुत जाननेसे तुम्हारा क्या प्रयोजन ? ( सारांश रूपमें यह कि ) मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपने एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ ।’

अब भगवान्के इस कथनके अनुसार उपर्युक्त समस्याओंके समाधानके सम्बन्धमें श्रुति-वाक्योंकी ओर ध्यान दीजिये।

परमात्माकी इस महिमाकी स्पष्ट घोषणा वेदोंमें भी की गयी है। वहाँ परमात्माको चतुष्पाद कहकर, उनके एक पादमें उत्पत्ति, पालन और संहारके व्यापारवाला यह सारा विश्व जगत् और इससे परे तीन पाद अमृत, शुद्ध ब्रह्म, प्रकृतिपार दिव्य विभूतिमें कहा गया है। यथा—

‘सोऽयमात्मा चतुष्पात् । पादोऽस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्या-  
मृतं दिवि ।’ और भी पुरुषसूक्तमें—

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

( ऋग्वेद १०।१०।३ )

पुरुषसूक्तकी उपर्युक्त श्रुतिमें परमात्माकी उक्त महिमाका संकेत करते हुए उसी स्थलपर आगेकी निम्नलिखित श्रुतिमें ‘त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः’ उस परम पुरुष परमात्माको त्रिपादसे भी ऊर्ध्व अर्थात् एकपाद और त्रिपाद दोनों विभूतियोंका स्वामी, अधिष्ठातृदेव अर्थात् उभय विभूतिनायक सूचित किया गया है। यथा—

त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥

( ऋग्वेद १०।१०।४ )

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत, मानस-प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामको शंकरजीके वाक्योंमें ‘परावरनाथ’ ( पर अर्थात् त्रिपादविभूति, अवर अर्थात् अपर, एकपाद-विभूति ) इस प्रकार दोनों विभूतियोंके नाथ कहा गया है। यथा—



पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि प्रगट परावर नाथ ।

गुणकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवै नाथउ माथ ॥

( बालकाण्ड ११६ )

उपर्युक्त त्रिपादविभूति अथवा पर विभूतिको उपनिषद्‌ओंमें दिव्य ब्रह्मपुर, परव्योम, विष्णुपरमपद इत्यादि अनेक नामोंसे व्यक्त किया गया है, जिसमें उस परम पुरुष परमात्माका निवास सूचित किया गया है। यथा—

मुण्डकोपनिषद्, मु० २। खं० २। ७ में—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैव महिमा भुवि ।

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥

‘यः सर्वज्ञः=जो सर्वज्ञ; सर्वविद्=सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है; यस्य=जिसकी; भुवि=जगत्‌में; एषः=यह; महिमा=महिमा है; एषः हि आत्मा=यह ही सबका आत्मा ( परमात्मा ); दिव्ये व्योम्नि ब्रह्मपुरे=दिव्य आकाश, ब्रह्मपुरमें प्रतिष्ठित है।’

और भी—मुण्डकोपनिषद्, मु० २, खं० २। ९ में—

हिरण्ये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।

तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥

तत्=वह; विरजम्=निर्मल; निष्कलम्=अवयवरहित; ब्रह्म=ब्रह्म; हिरण्ये परे कोशे=प्रकाशमय परमकोश ( परव्योम ) में प्रतिष्ठित है; तत्=वह; शुभ्रं=विशुद्ध; ज्योतिषां ज्योतिः=ज्योतियोंकी भी ज्योति है; यत्=जिसको; आत्मविदः=आत्मजानी; विदुः=जानते हैं।’

उस परमपद अथवा परमधाममें न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि; तात्पर्य यह कि वह स्वयं प्रकाशमान है। इस सम्बन्धमें प्रमाणके लिये श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १५, श्लोक ६, प्रस्तुत निबन्धके आरम्भमें ही दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्‌में भी यही बात स्पष्ट है। यथा—मुण्डकोपनिषद् में—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

( २।२।१० )

‘तत्र=वहाँ; न सूर्यः भाति=न सूर्य प्रकाश करता है; न चन्द्रतारकम्=न चन्द्रमा और नक्षत्र ही प्रकाश करते हैं;

न इमाः विद्युतः भान्ति=न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाश करती हैं; अयं अग्निः कुतः=फिर इस ( लौकिक ) अग्निकी तो बात ही क्या है? तात्पर्य यह कि तो फिर यह लौकिक अग्नि वहाँ क्या प्रकाश करेगी? ( कारण कि ); तम् भान्तम् एव=उसके प्रकाश करते हुए ही ( उसके प्रकाशसे ); सर्वम्=ऊपर कहे हुए सूर्य, चन्द्रमा आदि सब प्रकाशित होते हैं। तस्य भासा=उसीके प्रकाशसे; इदं सर्वम्=यह सम्पूर्ण विश्व—जगत्; विभाति=प्रकाशित होता है।

यह त्रिपाद-विभूति, दिव्य परव्योम अथवा परम-धाम उन परब्रह्म परमात्मासे भिन्न कोई अन्य तत्त्व न होकर, उन्हींका प्रकाश, उन्हींका रूप, शुद्ध ब्रह्म ही है। केवल संसारी कर्मबन्धन और आवागमनके चक्रसे मुक्त आत्माओंके उसमें प्रवेश और निवासके सम्बन्धसे उसे परमधाम, ब्रह्मपुर आदि ( स्थानसूचक ) शब्दोंसे व्यक्त किया गया है। दृष्टान्तके लिये, जैसे सूर्य अपनी किरणोंके प्रकाशके बीच रहता है; वह किरणोंका प्रकाश, सूर्यसे भिन्न कोई पदार्थ न होकर सूर्यका ही रूप है; ऐसे ही परमधामके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

कर्मोंके भोगपर्यन्त जीव इस एकपाद-विभूति संसारमें अनेक शरीर धारण करते हुए, आवागमनके चक्रमें जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं। पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाद्वारा कर्मबन्धनसे मुक्त होनेपर फिर वे इस संसारमें जन्म नहीं धारण करते। अब ऐसी स्थितिमें वे मुक्तात्मा कहीं तो रहेंगे? वही है यह ‘परमपद’ अथवा ‘भगवान्‌का परमधाम’, जहाँ कर्मबन्धनसे मुक्त जीव, अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त होकर स्वयं ब्रह्ममें निवास करते हैं।

इस प्रकार परमात्माका सर्वव्यापकत्व तो इस एक-पाद-विभूति, विश्व-जगत् तक ही सीमित है; कारण कि व्यापक शब्द कहते ही, व्यापक और व्याप्य दोकी कल्पना सामने आ जाती है और इस प्रकारका द्वैत इस मायिक जगत्‌में ही सम्भव है। यहाँ जगत् व्याप्य और परमात्मा व्यापक है। यह व्याप्य और व्यापकका द्वैत, परमपद अथवा परमधाममें नहीं होता। वहाँ तो एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म ही है; वही धाम भी है और वही धामी भी है। द्वैतरूप मायाका आवरण वहाँ नहीं है।

पर उस दिव्य परमधाममें त्रिगुणात्मिका मायाका व्यापार न होते हुए भी एक अलौकिक विचित्रता यह है



कि उपासनाके विभिन्न दृष्टिकोणोंके अनुसार, वहाँ मुक्तात्माओंको उस ब्रह्म अथवा परमात्माकी प्राप्ति विभिन्न रूपोंमें होती है। कुछ आत्मा ज्ञानमार्गकी साधना-द्वारा, ब्रह्मरूपी आनन्दसागरमें नमकके ढेलेके समान अपने शुद्ध अहंको विलीन करके 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' की चरितार्थताको प्राप्त करते हैं; इसे 'कैवल्य मोक्ष' कहा जाता है; जैसा कि श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्डमें ज्ञानमार्गकी साधनाकी सिद्धिका संकेत करते हुए कहा गया है—

जो निर्विघ्न पथ निर्वहई । सो कैवल्य परम पद लहई ॥

पर जिन आत्माओंमें भगवान्‌के प्रति स्वामी, सखा, प्रियतम आदि सम्बन्धोंमें रागात्मिका भक्तिके संस्कार तीव्र और प्रबल होते हैं, उन भगवत्प्रेमभक्तिपरायण मुक्त आत्माओंको तो उस परमधाममें भी उन सच्चिदानन्दधन स्वरूप परब्रह्म परमात्माके साथ प्रेममय दिव्य अप्राकृत नित्यलीला और नित्यविहारमें ही प्रवेश प्राप्त होता है। वही उनकी उपासनाका चरम लक्ष्य होता है।

कैवल्यमोक्षके अतिरिक्त, ज्ञानद्वारा कर्मबन्धसे मुक्त हो अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लेनेपर भी, भक्तिपरायण आत्माओंके सम्बन्धमें सगुण साकार उपासनाके समान ही एक अद्वितीय निर्गुण निराकार शुद्ध ब्रह्ममें भी लीला और विहारकी सम्भावनापर एक विशिष्ट प्रकारके अद्वैतवादी वेदान्तियोंमें भी भावना देखी जाती है और उनके विचारसे उस अद्वितीय शुद्ध ब्रह्ममें यह बात एक असम्भव कल्पना है। पर तथ्यको समझनेके लिये, इस सम्बन्धमें बहुत जल्दी निर्णय न लेकर कुछ गहराईमें जाना अपेक्षित है। एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्मका यह अर्थ नहीं कि वह निर्गुण निराकार ब्रह्म केवल आकाश-जैसा कोई शून्य मात्र है; किंतु वह सच्चिदानन्दधन सब ओरसे परिपूर्ण है। इस तथ्यके स्पष्टीकरणके लिये अब हम कुछ मार्मिक बातें पाठकोंके समक्ष उपस्थित करते हैं। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ११में भगवान्‌ने स्वयं अर्जुनके प्रति स्पष्टरूपमें संकेत किया है; पर प्रवाहमें उस सूक्ष्मताकी ओर प्रायः गीताके विद्वानोंकी दृष्टि नहीं जाती। अतः पहले उस प्रसंगपर ही कुछ गहराईके साथ दृष्टिपात कीजिये।

उस प्रसंगमें भगवान्‌के प्रति उनका ऐश्वर्य-रूप देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए अर्जुनने निम्नलिखित वाक्य कहे—

एवमेतद्यथा त्वमात्मानं परमेश्वर ।  
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥  
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।  
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥

( गीता ११।३-४ )

हे परमेश्वर ! आप अपनेको जैसा कहते हैं, यह इस प्रकार ठीक ही है। पर हे पुरुषोत्तम ! आपके उस ऐश्वर्य-रूपको मैं देखना चाहता हूँ। प्रभो ! वह आपका रूप मेरेद्वारा देखा जा सकता है, ऐसा यदि आप मानते हैं तो हे योगेश्वर ! आप अपने उस अविनाशी ऐश्वर्य-रूपका मुझे दर्शन कराइये ।

उपर्युक्त श्लोकोंमें अर्जुनकी ओरसे उस ऐश्वर्य-रूपके लिये रेखाङ्कित 'रूपं' और 'तद्' एक वचनका ही प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि अर्जुनने भगवान्‌का ऐश्वर्य-रूप कोई एक ही समझ रक्खा था। पर उसके उत्तरमें, आगेके श्लोकमें भगवान्‌ने एक ही ऐश्वर्य-रूप दिखाना न कहकर सैकड़ों-हजारों ऐश्वर्य-रूप देखनेके लिये उन्हें आमन्त्रित और सावधान किया। यथा—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥

( गीता ११।५ )

हे पार्थ ! मेरे सैकड़ों, सहस्रों, नाना प्रकार, नाना वर्ण और आकृतिवाले दिव्य रूपोंको देखो ।

इस श्लोकमें भगवान्‌की ओरसे 'रूपाणि' बहुवचन शब्द साथ ही 'शतशः' और 'सहस्रशः' शब्दोंका प्रयोग स्पष्ट है, साथ ही उन रूपोंके विशेषणोंमें भी 'नाना-विधानि', 'दिव्यानि' आदि बहुवचन शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं। इससे भगवान्‌के श्रीमुखवचनसे उनका कोई एक ही ऐश्वर्य-रूप न होकर, उनके ऐश्वर्य-रूप भी असंख्य और नाना प्रकारके हैं, यह स्पष्ट है।

पर अपने सैकड़ों-सहस्रों ऐश्वर्य-रूप देखनेके लिये अर्जुनको आमन्त्रित और सावधान करते हुए भी भगवान्‌ने पहले वह एक रूप दिखाया, जिस एक रूपको ही देखकर अर्जुन भयसे काँप गये, फिर आगे दूसरे ऐश्वर्य-रूपको देखनेके लिये उनकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई; प्रत्युत उन्होंने शीघ्र ही भगवान्‌के प्रति पूर्ववत् शङ्क-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज सौम्य मानुषरूपमें ही दर्शन देनेकी प्रार्थना की।



अतएव फिर भगवान्की ओरसे दूसरे ऐश्वर्य-रूपोंको प्रकट करनेका अवकाश ही नहीं रहा। अब अपने असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंमें भगवान्ने पहले ही अर्जुनको अपना कौन-सा ऐश्वर्य-रूप दिखाया? इस बातको भी अर्जुनके पूछनेपर उती प्रसंगमें स्पष्ट कर दिया है। यथा—

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो

नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।

विशानुमिच्छामि भवन्तमाद्यं

न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

( गीता ११ । ३१ )

अर्जुन भगवान्के प्रति कहते हैं—‘मेरे प्रति कहिये कि उग्ररूपवाले आप कौन हैं? देवोंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार है; आप प्रसन्न होइये। आदिस्वरूप आपको जानना चाहता हूँ; क्योंकि आपकी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानता।’ इसके उत्तरमें अगले श्लोकमें भगवान् अपने उस उग्र ऐश्वर्य-रूपका परिचय देते हैं। यथा—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो

लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे

येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

( गीता ११ । ३२ )

‘लोकोंका नाश करनेवाला, वृद्धिको प्राप्त हुआ मैं काल हूँ। इस समय इन लोकों ( लोगों ) का संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित हुए योद्धालोग हैं, वे सब तुम्हारे बिना भी नहीं रहेंगे; अर्थात् तुम्हारे युद्ध न करनेपर भी इन सबका संहार होगा।’

अब अपने सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंमें भगवान्ने अर्जुनको पहले यही उग्र रूप क्यों दिखाया? इसका कारण भी अर्जुनको युद्धके लिये शीघ्र तैयार हो जानेको प्रेरित करना ही था। यह भी उसी स्थलपर आगेके श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है। यथा—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

मयैवैते निहताः पूर्वमेव

निमित्तमात्रं भव स्वयसाचिन् ॥

( गीता ११ । ३३ )

भगवान् अर्जुनके प्रति कहते हैं—‘इसलिये तुम उठो,

यशको प्राप्त करो और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यका भोग करो। ये सब योद्धा पहलेसे ही मेरे-द्वारा मारे जा चुके हैं। हे स्वयसाचिन् ! तुम तो केवल निमित्तमात्र हो जाओ।’ अब भगवान्के द्वारा इतनी स्पष्टोक्तिपर भी, यदि उनके सैकड़ों-हजारों, असंख्य ऐश्वर्य-रूप न मान करके, अर्जुनको दिखाये हुए उस एक उग्र रूपको ही भगवान्का समग्र विश्वविराट् रूप माना जाय तो उसमें विश्वमें उपस्थित होनेवाले सभी समयके दृश्य एक साथ उपस्थित होने चाहिये। उदाहरणके लिये जैसे महाभारतके योद्धाओंके संहारका जो दृश्य उस विश्वरूपमें अर्जुनको दिखाया गया, वह तो अभी बाहर कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिपर घटित नहीं हुआ था। अभी तो वे सभी योद्धा युद्धके लिये तत्पर बिल्कुल जीवितरूपमें उस युद्धभूमिपर विद्यमान ही थे; अतएव उन सबके रणक्षेत्रमें उपस्थित होनेका दृश्य भी भगवान्के इस विश्वरूपके अन्तर्गत दिखायी पड़ना चाहिये। ऐसे ही, आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करते हुए भीष्मपितामहका रूप, अर्जुन आदि शिष्यवर्गको धनुर्विद्याकी शिक्षा देते हुए द्रोणाचार्यका दृश्य, युद्धके पूर्व उपस्थित होनेवाले अन्य अनेक दृश्य भी तो उस विश्वरूपमें उपस्थित होने चाहिये; पर ऐसा नहीं है। अतएव सामान्य बुद्धिद्वारा विचार करनेपर भी यही स्पष्ट होता है कि भगवान्के ऐश्वर्य-रूप केवल एक ही न होकर असंख्य हैं; उनमेंसे महाभारतके विनाशके क्षणोंका वह एक ही ऐश्वर्य-रूप था, जिसमें निकट भविष्यके घमासान युद्धमें अनेक योद्धाओंके संहारका दृश्य ही मुख्यरूपसे अर्जुनके द्वारा देखा गया।

अब इस एक ऐश्वर्य-रूपके अतिरिक्त भगवान्के और कौनसे सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूप हो सकते हैं? इस सम्बन्धमें कुछ स्पष्टीकरण करनेके पूर्व प्रस्तुत विषयको समझनेके लिये एक विशेष मर्मकी ओर ध्यान ले जाना आवश्यक है। वह यह कि भगवान्के उस उग्र ऐश्वर्य-रूपमें अर्जुनने विनाशके अनेक भयावने और बीभत्स दृश्य देखे। पर वे सारे दृश्य कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटित होनेसे पूर्व ही उन्होंने भगवान्में देखे। इससे यह संकेत मिलता है कि इस विश्व-जगत्में वर्तमानमें उपस्थित, भूतकालमें हुए, ऐसे ही भविष्यमें होनेवाले सारे ही दृश्य भगवान्में एक साथ ही अव्यक्तरूपमें उपस्थित रहते हैं; और उनमेंसे कोई भी दृश्य, वे अपने भक्तोंको जब चाहें, अपनेमें ही



दिखा सकते हैं। इस सम्भावनाको भी हम पूर्वोक्त नटके जादूके दृश्योंके दृष्टान्तद्वारा ही समझ सकते हैं। वह इस प्रकार कि बाजीगर नट अपने जादूके द्वारा जितने भी दृश्य बाहर समाजके समक्ष उपस्थित करता है, वे सारे दृश्य उसके अन्तःकरणमें अव्यक्तरूपसे एक साथ ही उपस्थित रहते हैं; तभी बाहर समाजमें दिखानेका संकल्प होनेपर उनमेंसे किसी दृश्यको वह जादूके द्वारा बाहर उपस्थित कर देता है। इसी स्थलपर एक बात और समझ लेनी चाहिये। वह यह कि जादूके द्वारा बाहर उपस्थित किये हुए दृश्य तो सचमुच मिथ्या ही होते हैं; पर वही सारे दृश्य नटके अन्तःकरणमें मिथ्या नहीं होते; वहाँ तो वे सारे दृश्य अव्यक्तरूपमें यथार्थमें ही उपस्थित रहते हैं; केवल उन्हें यथासमय बाहर प्रकट कर देनेकी बात शेष रहती है। इसी प्रकार इस त्रिगुणात्मक जगत्में भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालके सारे दृश्य इस सृष्टिके रूपमें अवश्य ही मिथ्या, नश्वर और परिवर्तनशील होते हैं; पर भगवान्‌में वे सारे दृश्य अव्यक्तरूपमें एक साथ ही उपस्थित रहते हैं; वहाँ उन्हें मिथ्या नहीं कहा जा सकता; हाँ, उन्हें सृष्टिके रूपमें बाहर प्रकट कर देनेकी ही बात शेष रहती है।

अब इसी स्थलपर एक और बात समझ लेनेकी है कि शिष्य और सेवकके रूपमें बाजीगर नटके साथ रहकर, उसे संतुष्ट और प्रसन्न कर लेनेपर उन जादूके दृश्योंके बाहर उपस्थित होनेके पूर्व भी, उस नटकी कृपासे कलात्मक ज्ञान और अनुभवके द्वारा वे सारे दृश्य देखे और समझे जा सकते हैं; जैसे कि नटके सेवक झमूराके सम्बन्धमें समझा जा सकता है; उसी प्रकार इस त्रिगुणात्मक जगत्में उपस्थित होनेवाले किन्हीं दृश्योंको बाहर घटित होनेके पूर्व भी भगवान् अपनी कृपासे भक्तोंको अपनेमें ही दिखा सकते हैं। इसी प्रकार महाभारतकी विनाशकी उपर्युक्त घटनाओंके बाहर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटित होनेसे पूर्व ही भगवान्‌ने उन दृश्योंको अर्जुनको अपनेमें ही दिखा दिया।

अब इसी रहस्यको भगवान्‌की महिमारूप इस विश्व-जगत्‌की विशालता और अनन्तताके व्यापक दृष्टिकोणके अनुसार देखिये। यह विश्व-जगत् परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ है। साथ ही वह परमात्मा अथवा ब्रह्म इस जगत्‌के कण-कणमें व्याप्त है। इस कारण जैसे जीवात्माके शरीरमें

उपस्थित रहनेसे शरीरको जीवात्माके माध्यम अथवा रूपके स्थानमें लक्ष्य करके ही सारा लोक-व्यवहार चलता है, उसी प्रकार इस जगत्‌में परमात्माके व्याप्त होनेसे इसे उन भगवान्‌का विराटरूप कहा जाता है। साथ ही यह विश्व-जगत् परिवर्तनशील है; और क्षण-क्षण परिवर्तनको प्राप्त होता रहता है। अतएव क्षण-क्षणके इस परिवर्तन-के कारण इस विश्व-जगत् अथवा विराट्‌के क्षण-क्षणके विभिन्न रूप भी असंख्य हो जाते हैं। उपर्युक्त कथनके अनुसार बाजीगर नटके अन्तःकरणमें जादूके दृश्योंके समान इस विश्वके सारे ही दृश्य अव्यक्तरूपमें भगवान्‌में उपस्थित रहनेसे, क्षण-क्षणमें परिवर्तनको प्राप्त होनेवाले इस जगत्‌के वे असंख्य विराटरूप भी उनमें उपस्थित रहते हैं। हाँ, एक बात अवश्य है कि इस त्रिगुणात्मक मायिक जगत्‌में विश्वके वे क्षण-क्षणके असंख्य रूप एक ही साथ नहीं उपस्थित होते; किंतु एकके पश्चात् दूसरा रूप, इस प्रकार बदलते जाते हैं। परब्रह्म, परमात्मा अथवा भगवान्‌में, विराट् जगत्‌के क्षण-क्षणके वे सारे ही रूप अव्यक्तरूपमें एक साथ ही उपस्थित रहते हैं और विश्वके उन असंख्य रूपोंमें भगवान् जब चाहें, कोई भी रूप अपने भक्तोंको अपनेमें दिखा सकते हैं। यह विश्व-जगत् भगवान्‌की महिमा अथवा ऐश्वर्य होनेके कारण, अपने जिन रूपोंमें भगवान् इस विश्व-जगत्‌के उन रूपोंका प्रदर्शन करते हुए भक्तके सामने उपस्थित होते हैं, उन रूपोंको ही भगवान्‌का 'ऐश्वर्य-रूप' कहा जाता है। यही भगवान्‌के सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूप हैं; जिनका संकेत भगवान्‌के द्वारा अर्जुनके प्रति पाया जाता है।

अब भगवान्‌के द्वारा अर्जुनको दिखाये गये उग्र ऐश्वर्य-रूपके सहारे ही उनके उपर्युक्त ऐश्वर्य-रूपोंके सम्बन्धमें एक और मर्मकी बात समझ लेनेकी है। वह यह कि अर्जुनने भगवान्‌के उस ऐश्वर्य-रूपमें बहुतसे वीभत्स और भयावने, रोमाञ्चकारी दृश्य भी देखे; जैसे, भीष्म, द्रोण, कर्ण और अपने पक्षके योद्धाओंको भी भगवान्‌के उस उग्र-रूपके विकराल दाढ़ीवाले भयानक मुखोंमें प्रवेश करते और कई एकको चूर्ण हुए सिरोंसहित दाँतोंके बीचमें लगे हुए देखा। सम्पूर्ण मनुष्य-वीरोंको प्रचलित मुखोंद्वारा भक्षण करते और सब ओरसे चाटते हुए देखा; इत्यादि। परंतु इस स्थलपर ध्यानपूर्वक देखिये तो कुरुक्षेत्रकी रण-भूमिमें धमासान युद्ध आरम्भ हो जानेपर, जब सैकड़ों योद्धा घायल



अथवा मृत होकर धराशायी हुए होंगे, उस समय उस युद्ध-भूमिकी क्या दशा हुई होगी? कितने रक्तपात, कितने मृतक शरीरोंके जमाव, कितने बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्योंसे वह भूमि कितनी विकृत, घृणास्पद और अपवित्र हो गयी होगी; और युद्धकी समाप्तिपर भी उसकी शुद्धताके उपायोंमें कितना समय लगा होगा; पर भगवान्‌के द्वारा अर्जुनको दिखाये हुए उस उग्र ऐश्वर्य-रूपमें उपर्युक्त घोर बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्य उपस्थित होते हुए भी, उस रूपको अन्तर्धान कर लेनेपर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिकी तरह क्या वहाँपर भी कोई बीभत्स और घृणास्पद वातावरण उपस्थित रहा? कदापि नहीं।

अतः यह स्पष्ट है कि भगवान्‌के उस ऐश्वर्य-रूपमें भी बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्य, संसारके समान ही दीखते हुए भी, उनका वह रूप स्वरूपतः दिव्य, अप्राकृत और त्रिगुणके विकारोंसे रहित था। यही बात उनके पूर्वोक्त असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। इस प्रकार मायाद्वारा रचित त्रिगुणात्मक जगत्‌के क्षण-क्षणमें बदलते हुए, असंख्य विराटोंको अपनेमें लक्ष्य करानेवाले भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूपको 'विराट्मय ऐश्वर्य-रूप' कहा जाता है, जिसका संकेत तुलसीकृत रामचरितमानसमें बालकाण्डके अन्तर्गत धनुषयज्ञके प्रसंगमें आया है। यथा—  
विदुषन्ध प्रमु विराट् मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

भगवान्‌ने जिस प्रकार अर्जुनको अपने एक ऐश्वर्य-रूपका दर्शन कराया, वैसे ही ऐश्वर्य-रूप दिखानेके अन्य अनेक प्रसंग भी आर्ष-ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं; जैसे तुलसीकृत रामचरितमानस, बालकाण्डमें भगवान्‌ श्रीरामकी शिशु-लीलाके अन्तर्गत कौसल्याको और उत्तरकाण्डमें काकभुशुण्डिको तथा श्रीमद्भगवतमें यशोदाको। पर उन ऐश्वर्य-रूपोंमें, गीतामें अर्जुनको दिखाये गये ऐश्वर्य-रूपसे तथा परस्पर भी बहुत कुछ वैभिन्न्य पाया जाता है; इससे भी भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूपोंका बहुसंख्यक अनेक प्रकारके होना स्पष्ट है।

इस प्रकार ये सारे ही ऐश्वर्य-रूप अव्यक्तरूपसे उन सच्चिदानन्द ब्रह्ममें ही स्थित हैं। उन्हें प्रकृति अथवा माया नहीं कहा जा सकता; न उनपर प्रकृति अथवा मायाका आवरण ही होता है। इस प्रकार प्रकृतिपार, त्रिपाद्-विभूति, परमपद अथवा परमधाममें भी वह निर्गुण, निराकार, गुणातीत, अद्वितीय ब्रह्म केवल आकाशवत् शून्य न होकर

'परिपूर्ण', अर्थात् अनन्त दिव्य, अप्राकृत गुणों एवं लीलाओंका केन्द्र है।

यहाँतक तो हुई भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूपोंकी बात; अब प्रेमाभक्तिपरक माधुर्य-उपासनाके दृष्टिकोणसे भी इसी रहस्याका अवलोकन कीजिये।

वैसे उपर्युक्त विवेचनके अनुसार वह सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म ही इस अखिल विश्व-जगत्‌का निवासस्थान है और इसकी उत्पत्ति भी उस ब्रह्मसे ही होती है; जैसा कि ब्रह्मसूत्रमें ही 'जन्माद्यस्य यतः।' प्रसिद्ध है; फिर भी प्रेमभक्तिपरक माधुर्य-उपासकोंके लिये तो वे परब्रह्म परमात्मा माता, पिता, स्वामी, सखा, प्रियतम आदि प्रेम-सम्बन्धोंमें अनन्य आसक्ति और अनुरक्तिका ही केन्द्र बन जाते हैं; अर्थात् जैसे संसारी विषयासक्त जीव विविध लौकिक सम्बन्धों और इन्द्रिय-विषयोंमें आसक्त रहते हैं, उसी प्रकार माधुर्य-उपासकोंका अन्तःकरण सब प्रकारसे उन सच्चिदानन्दरसरूप भगवान्‌के दिव्य गुणोंमें ही आसक्त रहता है; और इस प्रकार उन परम प्रियतमका निरन्तर संयोग ही उनकी साधनाका चरम लक्ष्य रहता है। विचार करनेकी बात यह है कि उनका कर्मबन्धन तो भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर देनेके साथ ही समाप्त हो जाता है; तब फिर सामान्यतः कर्मसे उत्पन्न होनेवाले इस प्राकृत शरीरके धारण करनेका उनके लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है? और फिर ऐसी स्थितिमें भगवान्‌के परमधामके अतिरिक्त उनका निवास और कहाँ हो सकता है? साथ ही भगवान्‌के प्रति प्रेमभक्तिके रसास्वादनके बिना उनके लिये केवल कैवल्यमोक्ष भी संतोषप्रद नहीं होता। अतः प्रेमभक्तिके ऐसे नैष्ठिक उपासकोंके लिये ही उस परब्रह्मके अलौकिक सामर्थ्य और उनकी अलौकिक विशेषताके सम्बन्धमें उपनिषद्‌ने निम्नलिखित घोषणा की है। यथा—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।१७)

'सर्वेन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी वह परब्रह्म सर्वेन्द्रियगुणोंके आभाससे युक्त है। वह सबका प्रभु, ईश्वर और सबका महान् आश्रय (शरण देनेवाला) है।'।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक १४में स्वयं भगवान्‌ने भी अर्जुनके प्रति यही घोषणा और भी स्पष्ट शब्दोंमें की है। यथा—



सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

‘वह परब्रह्म सर्व-इन्द्रियगुणोंके आभाससे युक्त है; यद्यपि वह सर्व-इन्द्रियोंसे रहित है। वह स्वयं अनासक्त है। तात्पर्य यह है कि उसमें जो इन्द्रियगुणोंका आभास है, उसमें वह स्वयं अपने सुखके लिये आसक्त नहीं है। पर वह सबका भरण करनेवाला अर्थात् अपने प्रति संयोग और लीलाके आनन्दकी तीव्र उत्कण्ठावाले, सभी प्रेमभक्ति-परायण उपासकोंके उस चरम लक्ष्यको पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार वह सच्चिदानन्द, रसरूप, परब्रह्म परमात्मा अपने लिये अनासक्त और निर्गुण होते हुए भी, प्रेमभक्ति-परायण आत्माओंको अपने दिव्य संयोग और लीला-विहारका आनन्द देनेके लिये गुणोंका भोक्ता भी है। यह उसकी अलौकिक सामर्थ्य और सर्वशक्तिमत्ता है।’

सर्व-इन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी उस परब्रह्ममें सर्व-इन्द्रियगुणोंके व्यापारकी अपार अलौकिक दिव्य शक्ति और सामर्थ्यको अन्य श्रुतियोंमें भी व्यक्त किया गया है।  
यथा—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता  
पश्यत्यक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।  
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता  
तमाहुरग्र्यं पुंशं महान्तम् ॥

( श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । १९ )

‘वह परमात्मा हाथ-पैरोंसे रहित होते हुए भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेवाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है। नेत्रोंके बिना भी वह सब कुछ देखता है, कानोंके बिना भी वह सब कुछ सुनता है। वह समस्त जाननेवाली वस्तुओंको जानता है; पर उसको कोई नहीं जानता। अर्थात् उसका कोई पार नहीं पाता। उस परमात्माको महान् आदिपुरुष कहा जाता है।’

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत यही बात स्पष्ट है। यथा—बालकाण्ड ११७ । ३-४ में—  
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु कर्म करइ विधि नाना ॥  
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥  
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ प्रान बिनु बास असेषा ॥  
अस सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

इस प्रकार इस एकपाद-विभूति जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी प्रकृतिपार त्रिपाद-विभूति उस परब्रह्म परमात्माका निज धाम है। वहाँ व्यापक-व्याप्यका द्वैत न होकर इस परमधाममें वह अद्वितीय परब्रह्म मुक्तात्माओंमें बिना किसी व्यवधान (आवरण) के सतत प्रत्यक्ष रहता है। कैवल्यमोक्षके नैष्ठिक वहाँ अपने अहंको विलीन करके, सहज आत्मस्वरूपको प्राप्तकर ‘ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति’ की चरितार्थताको प्राप्तकर ब्रह्मरूप हो जाते हैं। पर प्रेमभक्ति-के नैष्ठिक माधुर्य-उपासक उस परमधाममें उसी सहज-स्वरूपमें स्थित हो, देही-देहविभागरहित दिव्य मङ्गल विग्रहको प्राप्तकर, उस सत्-चित्-आनन्दवन, रसरूप, प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रकाशस्वरूप परमात्माके साथ स्वामी, सखा, प्रियतम आदि नित्य सम्बन्धोंमें उनके समस्त ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, प्रकाश, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंका रसास्वादन करते हुए, अपने चरम-लक्ष्य भगवान्के साथ नित्य लीला-विहारको प्राप्त होते हैं। उपासनाके दृष्टिकोणसे उस नित्य लीला-विहारके अन्तर्गत भाविक उपासकगण साकेत, गोलोक, वैकुण्ठ आदि अपने इष्ट धामोंका भी लक्ष्य रखते हैं; वह भी उस अखिल विश्व विराट्मय परब्रह्ममें कोई असम्भव बात न होकर उनकी उपस्थिति भी उस अनन्त दिव्य लीलामय परमधाममें स्वाभाविकरूपसे है ही।

एक बात और समझ लेनेकी है। वह यह कि उस त्रिपाद-विभूति, परमधामके सम्बन्धमें धाम और ब्रह्मपुरु-जैसे स्थान-सूचक शब्दोंके प्रयोगसे कहीं यह भ्रम न हो जाय कि वह परमधाम इस प्रकृति-मण्डलके किसी विशाल-देश अथवा महाद्वीप-जैसा कोई विस्तृत और विशाल स्थानविशेष ही होगा। किंतु वह कहीं बाहर न होकर प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों आवरणोंके पार एवं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण तुरीयरूप, देश और कालकी सीमासे परे, शून्यके पार शुद्ध अव्यात्म है और ध्यानकी गम्भीर एकाग्रतासे उत्पन्न समाधिकी स्थितिमें उपलब्ध अध्यात्मज्ञानके द्वारा ही अनुभवगम्य है। इसीका संकेत तुलसीकृत विनयपत्रिकाके अन्तर्गत भक्तिकी अलौकिक महिमासे सम्बन्धित एक पदके अन्तिम भागमें किया गया है। यथा—



शुभपति-भगति करत कठिनाई ।  
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥

× × ×

सकल हस्य निज उदर मेलि सोवे निद्रा तजि जोगी ।  
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी ॥  
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस काल तहँ नाहीं ।  
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ॥  
( पद १६७ )

इस प्रकार उपर्युक्त विस्तृत विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परम पुरुष, परमात्माके इस एकपाद विश्व-जगत्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी, प्रकृतिपार उनके परमधामकी मान्यता श्रुति, पुराण एवं अन्य सद्ग्रन्थोंके प्रमाणके साथ-ही-साथ सात्त्विक तर्ककी दृष्टिसे भी सर्वथा युक्तिसङ्गत है ।

अब अन्तमें प्रस्तुत विषयसे ही सम्बन्धित उपनिषद्के एक प्रसिद्ध मन्त्रको स्पष्टीकरणके सहित उपस्थित कर निबन्धको समाप्त किया जाता है ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

परमधामके संदर्भमें, इस मन्त्रमें 'अदः' शब्दसे त्रिपाद-

विभूति परमधाम और 'इदम्' शब्दसे एकपाद-विभूति विश्व-जगत्का लक्ष्य मानकर अर्थ करनेसे मन्त्रका तात्पर्यार्थ बहुत स्वाभाविकरूपमें सामने आ जाता है ।

यथा—

ॐ; पूर्णमदः; अर्थात् वह त्रिपादब्रह्म, परमपद अथवा परमधाम, शून्य न होकर सच्चिदानन्दधन परमात्माके ऐश्वर्य, माधुर्य, आकाश, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंके वैभवसे 'पूर्ण' अर्थात् भरा हुआ है ।

पूर्णमिदं; अर्थात् यह एकपाद, विश्व-जगत् भी, अनेक प्रकारकी विचित्र त्रिगुणात्मिका सृष्टि और उसके कण-कणमें परमात्माकी व्याप्तिसे पूर्ण अर्थात् भरपूर है ।

पूर्णत्पूर्णमुदच्यते; अर्थात् पूर्वोक्त पूर्णत्रिपाद शुद्ध ब्रह्म, अथवा परमधामसे ही यह द्वितीय पूर्ण एकपाद विश्व-जगत् भी पूर्ण अर्थात् भरपूर है; ऐसा कहा जाता है ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । अर्थात् पूर्वोक्त पूर्ण, त्रिपाद ब्रह्म अथवा परमधामके अर्थात् उससे उत्पन्न पूर्ण, विश्व-जगत्को निकाल लेने, तात्पर्य यह कि सृष्टिके रूपमें पृथक् रूपमें प्रकट कर देनेपर भी, वह त्रिपादब्रह्म अथवा परमधाम, पूर्ण ही अर्थात् कुछ कम न होकर पूर्ववत् सम्पन्न और भरपूर ही बचा रहता है ।

## भगवत्तत्त्व एक है

निर्गुण निराकार हैं वे ही निर्विशेष वे ही पर-तत्त्व ।  
वही सगुण हैं निराकार सविशेष सृष्टि-संचालक तत्त्व ॥  
वही सगुण साकार दिव्य लीलामय शुद्धसत्त्व भगवान् ।  
अगुण सगुण साकार सभी हैं एक अभिन्न रूप सुमहान् ॥

## कैवल्य मोक्ष और परमधामके अधिकारी

निर्गुण निराकारके साधक पाते हैं 'कैवल्य' महान् ।  
होते लीन ब्रह्ममें तत्क्षण क्षारोदधिमें लवण-समान ॥  
पर 'कैवल्य' नहीं दे पाता जिन प्रेमी भक्तोंको तोष ।  
मुक्त भक्त वे 'परमधाम'में जाकर पाते हैं परितोष ॥



## परलोकको सुधारनेके उपाय

( लेखिका—श्रीमती प्रेमवती देवीजी शर्मा )

परलोकको सुधारनेके लिये मनुष्यको गीतोक्त दैवी सम्पत्तिका आश्रय लेना चाहिये। दैवी-सम्पत्तिके आश्रयसे मनुष्यका स्वभाव देवताके सदृश बन जाता है, जिससे वह सर्वदा-सभीमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि रखता है। ऐसा व्यक्ति सर्वदा, सभीके लिये हित-चिन्तनमें तत्पर रहता है और स्वप्नमें भी किसीके अनिष्टका चिन्तन नहीं करता। वह सर्वत्र ईश्वरकी व्यापकता और सभीमें ईश्वरका अस्तित्व समझता है। वह ईश्वरमें विश्वास और धर्ममें श्रद्धा-विश्वास रखता है। वह सभीमें समभाव और सुहृद्भाव रखता है, सभीके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझता है। वह सर्वदा परोपकारमें तत्पर रहता हुआ परमात्म-चिन्तनमें संलग्न रहता है। वह अपने पिता, माता एवं गुरुजनोंमें श्रद्धा-भक्ति रखता हुआ उनकी सेवा-शुश्रूषा करता है। वह इहलोककी तरह परलोकमें पूर्ण विश्वास रखता है। इस प्रकार जो लोग दैवी-गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, वे ही अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार लेते हैं। परलोकको सुधारनेके लिये बहुत-से उपाय हैं, जिनमेंसे कुछ उपाय लिखे जाते हैं। इनके पालन करनेसे अवश्य ही परलोकमें सुधार हो सकता है।

१-इहलोककी तरह परलोकको भी मानना चाहिये।

२-अच्छे और बुरे कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है, विश्वास रखना चाहिये।

३-अपने पितरोंका श्राद्ध और तर्पण सदा करना चाहिये।

४-वेद और वेदोक्त कर्मोंमें श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये।

५-पर-निन्दा और पर-हानिसे सर्वदा बचना चाहिये।

६-परद्रव्य और पराये हकसे सदा बचना चाहिये।

७-गीता, रामायण और श्रीमद्भागवतका अध्ययन—इनकी कथा सुननी चाहिये।

८-महापुरुषोंके चरित्र प्रतिदिन सुनने चाहिये और तदनुसार अपने चरित्रको बनाना चाहिये।

९-अपने-अपने बालकोंको ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक कथाएँ सुनानी चाहिये, जिनसे उनका चरित्र उज्ज्वल हो।

१०-अपना रहन-सहन, खान-पान सादगीसे परिपूर्ण और सात्विक होना चाहिये।

११-जो मनुष्य जिस आश्रममें रहे, वह उसके अनुरूप रहे और उसको उस आश्रमकी मर्यादाका पालन पूर्णतया करना चाहिये।

१२-प्रत्येक जातिको अपनी जातिके अनुसार धर्मका पालन करना चाहिये।

१३-अपने किये हुए धर्मकी और अपने किये हुए दानकी प्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१४-आत्मस्तुति या आत्मप्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१५-अपने आत्माको सब प्रकार उन्नतिशील बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

१६-पुरुषको परस्त्री और स्त्रीको परपुरुषसे सर्वदा बचना चाहिये।

१७-वेदादि सच्छास्त्रोंकी निन्दा, गुरुजनोंकी निन्दा, ब्राह्मणोंकी निन्दा, साधु-महात्माओंकी निन्दा, धार्मिकोंकी निन्दा और देवी-देवताओंकी निन्दा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरोंसे सुननी चाहिये।

१८-मनसा-वाचा-कर्मणा—किसीके आत्माको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।

१९-धर्म करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति और अधर्म करनेसे अधम लोककी प्राप्ति होती है, इसमें विश्वास रखना चाहिये।

२०-धर्माचरणसे समस्त दुःखोंकी निवृत्ति होकर सुखकी प्राप्ति होती है, यह निश्चित समझना चाहिये।

२१-परमात्माकी सर्वव्यापकतापर पूर्ण विश्वास करना चाहिये।



२२-परमात्मा सबके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं और तदनुसार वे सबको उचितानुचित दण्ड देते हैं, ऐसा विश्वास करना चाहिये ।

२३-परमात्माकी कृपाके बिना कोई भी मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये ।

२४-परमात्माकी कृपासे ही प्रत्येक मनुष्यको संतति, धन, विद्या, बल, आरोग्य आदि सुखोंकी प्राप्ति होती है, यह विश्वास होना चाहिये ।

२५-परमात्मा ही सर्वविध पूर्णतासे परिपूर्ण कहे गये हैं । अतः परमात्माकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णताको प्राप्त कर सकता है, यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये ।

२६-परमात्माकी भक्तिसे ही मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न हो सकता है, इस बातको कभी भी नहीं भूलना चाहिये ।

२७-परमात्माको ही समस्त संसारका कर्ता, धर्ता और संहर्ता समझना चाहिये ।

२८-परमात्माको ही सबका रक्षक और पालक समझना चाहिये ।

२९-परमात्माको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये ।

३०-सत्य ही परमात्माका असली स्वरूप है । अतः सत्यस्वरूप परमात्माका अथवा परमात्मस्वरूप सत्यका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये ।

३१-पुरुषको अपने माता, पिता और गुरुको ईश्वरका स्वरूप समझना चाहिये और स्त्रीको अपने पतिको ईश्वरका स्वरूप समझना चाहिये ।

३२-अपने गुणोंकी प्रशंसा और आत्माभिमान नहीं करना चाहिये ।

३३-किसी भी जीवकी हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये । जीव-हिंसाको महापाप समझना चाहिये ।

३४-परमात्माकी भक्तिसे कभी भी विमुख नहीं होना चाहिये ।

३५-प्राणिमात्रसे अपने परिवारकी तरह प्रेम करना चाहिये ।

३६-ज्ञानका सम्पादन करना चाहिये । ज्ञानसे ही मुक्ति की प्राप्ति होती है । ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, यह विश्वास रखना चाहिये ।

३७-ज्ञानसे ही भगवान्के वास्तविक स्वरूपका परिचय मिलता है । अतः ज्ञान-सम्पादनार्थ सर्वदा प्रयत्नशील होना चाहिये ।

३८-अपनी मातासे भी बढ़कर सबका कल्याण करने वाली गोमाता है । अतः गोमाताकी सेवा और रक्षा सर्वदा करनी चाहिये ।

३९-साधु, संत, महात्मा और विद्वान्का सर्वदा आदर करना चाहिये ।

४०-सन्ध्योपासन, पञ्चमहायज्ञ, तीर्थयात्रा और अतिथि-सेवा सदा करनी चाहिये ।

४१-भगवत्सेवार्थ धनिकोंको द्रव्यदान, श्रमिकोंको श्रमदान, विद्वानोंको विद्यादान और बलवानोंको बलदान करना चाहिये ।

४२-अपनेसे सभीको श्रेष्ठ समझना चाहिये ।

४३-दूसरे किसीका भी, भूलकर भी अपमान नहीं करना चाहिये ।

४४-दूसरोंका दोषन देखकर अपना दोष देखना चाहिये ।

४५-सबको सर्वदा सद्भाव और परोपकार-सम्पन्न होना चाहिये ।

४६-अपने अमूल्य समयको सर्वदा प्रभु-भक्ति और सत्सङ्गमें लगाना चाहिये ।

४७-सर्वदा मिथ्या-अभिमान और मिथ्या-प्रपञ्चोंसे बचना चाहिये ।

४८-बड़ी-से-बड़ी आपत्ति आनेपर भी धैर्यका त्याग नहीं करना चाहिये ।

४९-मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता । अतः इस अमूल्य जीवनका सर्वदा सदुपयोग करना चाहिये ।

५०-प्रभुको सदा स्मरण रखना चाहिये ।





## कर्मफलकी ईश्वरीय वैज्ञानिक विधिव्यवस्था

(लेखक—डा० श्रीचमनलालजी गौतम, सम्पादक 'युग-संस्कृति')

### कर्मका अभिप्राय और नियम

कर्मका अर्थ है, जो किया जाय—क्रिया, उसकी परम्परा, नियम, जिसमें कार्य अपने कारणके पीछे चलता है। देवी-भागवत (१।५।७४) में भी कहा है—'बिना कारणके कार्यका होना कैसे सम्भव हो सकता है?' कार्य और कारणका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्यके पुराने विचार जब साकाररूप धारण कर लेते हैं तो वे कर्म कहलाने लगते हैं। इसके साथ वर्तमान, भूत और भविष्य जुड़ा रहता है। प्रत्येक कर्मकी ये तीनों अवस्थाएँ होती हैं।

सृष्टिकी रचनाके गम्भीर अध्ययनसे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संचालन निश्चित नियमोंपर आधारित है, जिन्हें बदला नहीं जा सकता, अल्पज्ञताके कारण उन नियमोंको हम नहीं जानते और हानि उठाते हैं, उनके ज्ञान और पालनसे हम शक्ति प्राप्त करते हैं।

प्राकृतिक नियमोंका पालन करना ही प्रकृतिकी शक्तियोंको अपने वशमें करना है। नियमोंका पालन करनेवाला प्रकृतिको अपने अनुकूल बना लेता है और प्रतिकूल परिस्थितियोंको टाल सकता है। इसलिये चतुर व्यक्ति गतियोंका अध्ययन करता है। अनुकूल नियमोंका पालन करके वह शक्तियोंका सृजन करता है, विरोधी धाराको वह दबा देता है। जिस तरह दो रसायनोंको मिलानेसे एक दूसरा निश्चित रसायन बन जाता है, इसी तरह प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंकी अनुकूल धाराके अनुसार चलनेसे निश्चित परिणाम ही निकलते हैं, जिनका हमें पूर्वज्ञान होता है। इसलिये प्रतिकूल फलके उपस्थित होनेपर दैवयोगसे कहना या भाग्यपर दोषारोपण करना अज्ञानताके चिह्न हैं। जिस तरह दो और दो चार होते हैं, उसी तरह कर्मोंके निश्चित फल हमारे सामने आते हैं—भले ही उनके साकाररूप लेनेमें कुछ देर लग जाय। लोकमें हम दो विरोधी धाराएँ चलती देखते हैं—एक शक्तिकी और दूसरी अशक्तिकी। एक पंक्तिमें धनवान् खड़े हैं, दूसरीमें धनहीन; कुछके विशाल भवन खड़े हैं, कुछको झोंपड़ी भी प्राप्त नहीं है। जगत्के ऐश्वर्य पाकर भी उन्हें निरन्तर मानसिक अशान्ति रहती है और बहुत-से लोग उनसे विहीन होकर भी संतुष्ट रहते हैं।

रोगोंसे कराहने और भाग्यको कोसनेवालोंको भी देखा जा सकता है। समाजका अभिशाप सहनकर हड्डियोंका टाँचा बननेवालोंकी भी कमी नहीं है। परिस्थितियोंका रोना रोने-वाले और दुःखों तथा चिन्ताओंकी दावानलमें जलनेवालोंका भी अभाव नहीं है।

जो ज्ञानी हैं, वे जानते हैं कि जो भी दुःख या सुखके दृश्य हमारे सामने आ रहे हैं, उस प्रत्येक चित्रके पीछे उसका कारण निहित है। बिना कारणके कार्य सम्भव नहीं है। प्रकृति किसीका पक्षपात नहीं करती और न किसीका विरोध ही करती है; वह तो समताकी देवी है। उसके राज्यमें जो जैसा कार्य करता है, उसे वह वैसा ही फल देती है। जो नियम-व्यवस्था जानकर उसके अनुसार चलता है, उसे वह सुख देती है और नियम-भङ्ग करनेवालेको दुःख। फिर दुःख आनेपर रोना कैसा? दुःख आनेपर यह जानना चाहिये कि अवश्य हमने किसी प्राकृतिक नियमका उल्लङ्घन किया है। उसकी खोज करके उसका पालन करना आरम्भ कर देना चाहिये। वह दुःख सुखमें परिणत हो जायगा। प्रकृति उस व्यक्तिके लिये आशाकारी सेवकका कार्य करती है, जो नियमोंका पालन करता है। वही शक्ति और सिद्धिके साम्राज्यका स्वामी बन पाता है, धन और वैभव-ऐश्वर्य भी उसे ही प्राप्त होते हैं, परिस्थितियाँ उसके आज्ञा-पालनकी प्रतीक्षा करती हैं, सफरता उसके स्वागतके लिये सदैव आरतीका थाल लिये खड़ी रहती है। अतः विकासका उत्तम सूत्र है—प्रकृतिके नियमोंका पालन करना। इसीसे सुख-शान्ति और शक्तिकी प्राप्ति सम्भव है। देवीभागवतमें कहा है—'ब्रह्मादि सभी इस नियमके वशमें हैं।' (४।२।८)। इसीसे संसारका सुव्यवस्थित संचालन हो रहा है।

### कर्मफल और उसका नियन्त्रण

मनुष्य जैसे कार्य करता है, वैसे ही वह फल पाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।५) का मत है कि 'मनुष्यकी जैसी इच्छा होती है, वैसे ही उसके विचार बनते हैं। विचारोंके अनुसार ही उसके कर्म होते हैं। कर्मोंके अनुसार ही वह फल पाता है।' महाभारत, शान्तिपर्व (२०१।२३)।



में इसी तथ्यका समर्थन किया है—‘कर्मफलमें आसक्त व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसे ही शुभ और अशुभ फलों-को वह भोगता है।’ इसलिये महाभारत, शान्तिपर्व (२९१।१२) में प्रेरणा दी है कि ‘बीजके बिना किसी वस्तुकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। सत्कर्मके बिना सुखकी उपपत्ति नहीं हो सकती। मनुष्य अच्छे कार्य करके ही परलोकमें सुख प्राप्त करता है।’ परंतु गीता (५।१२) के अनुसार ‘जब वह कर्मफलमें आसक्त हो जाता है तो बन्धनमें पड़ जाता है।’

कर्मोंकी जड़ विचारोंमें है और विचारोंका मूल मनमें है। कर्मोंकी रचना मनसे ही होती है। वही इनकी रचना करनेवाला है और वही इनका नियामक है। जैसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है, वैसे ही मन विचारोंको बनाता है। मनुष्य जैसे विचार करता है, वह उसी धारामें बहता है, वैसा ही बन जाता है। छान्दोग्योपनिषद् (३।१४।१) में कहा है—‘मनुष्यका निर्माण उसके अपने विचारोंके अनुसार ही होता है।’ क्षुद्र या महान्, पापी या सत्कर्मी, संत या डाकू बनना उन्हींके अधिकारमें है। इनमें अपार शक्ति है। यह व्यक्तिको निम्न परिस्थितियों-से विकासकी उच्चतम अवस्थामें पहुँचानेमें समर्थ है। देवी-भागवत (९।२७।१८-२०) में कहा है—‘जीव अपने शुभकर्मोंकी सहायतासे इन्द्रपद प्राप्त कर सकता है, वह हरिका सेवक हो सकता है, आवागमनके चक्रसे मुक्त हो सकता है, समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ अमरत्वपदतक पहुँच जाता है, सालोक्य मुक्तिका अधिकारी बन सकता है और वह देवता, राजा, शिव, गणेश और जो कुछ भी चाहे, वही बन सकता है। मनको अपूर्व शक्तियोंसे विभूषित किया गया है; परंतु उन शक्तियोंका लाभ मनुष्य तभी उठा सकता है, जब उसे प्रकृतिके नियमों-के अनुकूल चलाया जाय। यदि वह स्वच्छन्द होकर अपनी मनमानी करने लगे तो मनुष्यको नाना प्रकारके दुःखोंकी अग्निमें जलना पड़ता है, चारों ओरसे निराशाके बादल उमड़ने लगते हैं और वह अज्ञानान्धकारमें डोकरें खाता है। जिस तरह भूत-प्रेतको वशमें करके उनसे इच्छानुसार कार्य कराये जाते हैं, उसी तरह मनको भी प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंके अनुसार चलाकर ही उसकी अपार सामर्थ्यका अनुकूल लाभ उठाया जा सकता है। इस तरहते अपने भविष्यका निर्माण स्वयं किया जा सकता है और कर्मफलका नियमन भी किया जा सकता है।

**दुःखको गले लगानेसे सुखका द्वार खुलता है—**

दुःख आनेपर रोना-पीटना हमारी अज्ञानताका परिचायक है। इसका स्पष्ट अभिप्राय है—प्रकृतिके नियमोंकी जानकारीका अभाव। कोई भी दुःख बिना कारणके नहीं आ सकता, जैसे कोई भी पेड़ बिना बीजके नहीं उग सकता। कारणकी खोज किये बिना दैवको कोसना, भाग्यको पूहड़ बताना और नास्तिकताकी भावनाओंको उद्दीप्त करना अज्ञानताके प्रदर्शनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो भी बुरा कार्य किया गया है, प्रकृति उसका बुरा फल अवश्य देगी। यह उसका नियम है। उसके चरणोंमें गिड़गिड़ावले-पर वह क्षमा नहीं करती। उसका स्पष्ट निर्देश है कि पिछले कर्मोंके फलोंको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो और आगामी जीवनको नियमबद्ध करो। यही सुखका राजमार्ग है। जो आदेशका पालन नहीं करते हैं, वे अपने दुःखोंको और बढ़ाते हैं। प्रकृति हमारी शत्रु नहीं है। हमें दुःख देनेमें उसे प्रसन्नता नहीं होती। सभी प्राणी उसके लिये समान हैं। जो मार्गसे भटक गये हैं, उनके सुधारका कार्य ही उसे सौंपा गया है। बुरे कार्यका परिणाम सामने आनेसे उसके कारणकी जड़ कट जाती है। प्रकृति हमारे स्थायी सुखकी उत्तम व्यवस्थापिका है। वह हमारे दुःखोंके कारणोंको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करती है; परंतु हम अज्ञानतावश उसे नहीं समझते और कृतज्ञताकी भावना व्यक्त करनेके स्थानपर उसे दुःख देनेके लिये कोसते हैं और उसे अपनी विरोधी और शत्रु घोषित कर देते हैं। क्या विडम्बना है ? अपने हितैषीको हम अपना शत्रु समझने लगते हैं और कृतघ्नताकी पापमयी भावनाएँ उपज पड़ती हैं, जिनका दुष्परिणाम फिर हमें और भुगतना पड़ता है। नियम तो यही है कि जिसने हमारे प्रति उपकार किया है, हम उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें और वैसा ही उपकारी कार्य उसके प्रति करनेका प्रयत्न करें, तभी संतुलनसे हमें शान्ति मिल सकती है। हम एक व्यक्तिसे लेते-ही-लेते रहें और दें नहीं, तो ऋण बढ़ता ही रहेगा। उसको देते रहनेसे ही दोनों पलड़े बराबर रहेंगे। हम इसके विपरीत कार्य करते हैं, इससे दुःखोंका बढ़ना स्वाभाविक ही है।

प्रकृति हमारे सुधारका निरन्तर प्रयत्न करती है और कार्य-कारणके संतुलनको बनाये रखना चाहती है; परंतु हम उस संतुलनको निरन्तर बिगाड़ते रहते हैं। दुःख उस संतुलनको



बनाये रखनेके लिये ही आते हैं। जब उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है और असंतोष, क्लेश, चिन्ताकी अग्नि जला दी जाती है तो इसका परिणाम यह होता है कि पहले कर्मके परिणामका निपटारा तो हुआ नहीं, दूसरा और उपज पड़ा। पहले ऋणको उतारा नहीं गया, दूसरा और आ गया। यह दुःख कम होनेके नहीं, बढ़नेके लक्षण हैं। दुःखोंको कम करनेकी कला यही है कि उन्हें प्रसन्नतापूर्वक भोगा जाय। यह तो निश्चित है कि उन्हें ढाला नहीं जा सकता। वे आयेंगे ही। उन्हें धीर-वीर पुरुषकी तरह सहन करना चाहिये। उनसे डरना नहीं चाहिये, वरं वीरतासे उनका प्रेमालिङ्गन करना चाहिये। दुःख तो अपनी संतान हैं। अपनी संतान यदि प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दें तो क्या उनको शत्रु समझ लिया जाता है? उनके दुष्कर्मोंको सहन ही किया जाता है। दुःखोंको भी हमने स्वयं उपजाया है और स्वयं ही अपने पास बुलाया है। निमन्त्रित व्यक्तिके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता। वह बुरा हो तो भी उसका सम्मान किया जाता है। वस्तुतः दुःखोंका ऊपरी रूप अवश्य भयावना होता है, परंतु उनका परिणाम सदैव सुखशायी सिद्ध होता है।

एक तो वे भोगोंका निपटारा करने आते हैं और हमें सुख-शान्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर देते हैं और दूसरे वे हमें संवर्षके लिये प्रेरित करते हैं, जिससे हमारी शक्तियोंका विकास होता है, प्रगतिके लिये बंद द्वार हमारे स्वागतके लिये खुल जाते हैं। दुःखके अभावमें व्यक्ति सुखमें लिप्त होकर विलासी, आलसी और निकम्मा हो जाता है। उसकी शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जिससे सफलताके खुले द्वार बंद हो जाते हैं। शक्तिके अभावमें चारों ओरसे विरोधी धाराओंके आक्रमण होने लगते हैं और जीवन एक दुःखालय बन जाता है। यह सब प्रकृतिके नियमोंके अनुसार न चलनेका ही परिणाम है। यदि दुःखोंको अभिशाप नहीं, वरदान माना जाय, यदि उन्हें ईश्वरीय कोषके वजाय ईश्वरीय कृपा समझा जाय तो मनका यह परिवर्तित दृष्टिकोण दुःखको दुःख अनुभव नहीं होने देगा। वह सदैव उनके स्वागतके लिये तैयार रहेगा तो पहाड़-जैसे दिखायी देनेवाले दुःख राईके समान हो जायेंगे। दुःखोंसे डरना कायरता है। उन्हें झेलते हुए प्रसन्न रहना वीरता है। डरनेसे दुःख बढ़ते हैं, झेलनेसे वे कम होते हैं और उनके कारणका

नाश होता है। अतः सुलझा हुआ दृष्टिकोण अपनानेमें ही बुद्धिमानी है और यही स्वस्थ-जीवन जीनेकी कला है। जो व्यक्ति इस कलाको जान जाते हैं, वे दुःखोंको अपना मित्र और साथी समझते हैं। डरनेवालोंको वे भूत लगते हैं। उन्हें मित्र बनानेमें ही हमें लाभ है। शत्रु तो सदैव विनाशकी ही सोचता है। अतः दुःखको अपना सहयोगी समझना ही जीवनकी उत्तम नीति है।

### कर्मफल प्राकृतिक नियमोंपर आधारित है

कर्म-व्यवस्थामें प्रकृतिका गहरा हाथ है। वही इस पेचीदी व्यवस्थाको निष्पक्ष रीतिसे सम्पन्न करती है। शक्तिके लिये सिद्धान्तसे इस प्रक्रियाका जो सुसंचालन होता है, वह इस प्रकार है। विश्वमें प्रत्येक कार्यकी प्रतिक्रिया होती है। दीवालपर एक गेंदको हम जितनी शक्तिसे फेंकते हैं, उतनी ही शक्तिसे वह लौटकर आती है। गेंदका फेंकना क्रिया है और लौटकर आना उसकी प्रतिक्रिया है। पहाड़के नीचे या गुम्बदमें खड़े होकर हम आवाज देते हैं तो वह आवाज लौटकर आती है। आवाज देना क्रिया और उसका लौटकर आना प्रतिक्रिया है। पृथ्वीपर हम पैर रखते हैं, इससे दबाव पड़ता है, यह क्रिया है। पृथ्वी अपनी शक्तिसे पैरको ऊपर उठानेका प्रयत्न करती है, यह प्रतिक्रिया है। चूँकि ये दोनों शक्तियाँ समान होती हैं, इसलिये दोनों ओरके स्पष्ट दबावका पता नहीं चलता। यदि उनमें थोड़ी भी असमानता हो तो यह प्रतीत होने लगे। पैरका दबाव अधिक हो तो वह पृथ्वीमें उसी अनुपातसे घँस जायगा। जो भूमि पैरके दबावको उसी अनुपातसे वापस नहीं करती है, वहाँ पैरको भूमि नीचे जानेकी आशा देती है। प्रकृतिका कार्य शक्तिका संतुलन बनाये रखना है।

एक व्यक्तिने दूसरेको गोली मार दी, एकने दूसरेका धन अपहरण कर लिया, एकने दूसरेके मकानमें आग लगा दी आदि। इन क्रियाओंसे विश्वकी शक्तियोंमें असमानता उत्पन्न हो गयी। प्राकृतिक कर्तव्य समानता लाना है। ईश्वरकी ओरसे सौंपा हुआ यह प्रमुख कार्य है। वह हर क्रियाकी प्रतिक्रियाको लाकर समताको स्थिर रखती है। जिस व्यक्तिने गोली मारी, गाली दी, धन अपहरण किया या आग लगायी, इन क्रियाओंकी प्रतिक्रियाओंको साकार-रूपमें लाकर ही



विश्वकी शक्तियोंमें समता स्थापित हो सकती है। प्रतिक्रियाके समय और आकारमें अन्तर हो सकता है; परंतु प्रकृतिके साम्राज्यमें यह नहीं हो सकता कि किसी क्रियाकी प्रतिक्रिया न हो। कर्म एक क्रिया है, फल उसकी प्रतिक्रिया है। यदि प्रकृतिके नियम निश्चित और अटल हैं तो कर्म और कर्मफलकी व्यवस्था भी स्वाभाविक और प्राकृतिक नियमोंके आधारपर अवस्थित है। इन नियमोंको बदलना किसी व्यक्ति-विशेषकी सामर्थ्यके बाहर है। इसीलिये कहा जाता है कि कर्मकी गति टाली नहीं जा सकती। जो भले या बुरे कर्म हमने किये हैं, उनका अच्छा या बुरा परिणाम हमें मुगतना ही पड़ेगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

### अन्तर्मनद्वारा कर्मोंका सूक्ष्म चित्रण

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें प्राणियोंकी ८४ लाख योनियोंका वर्णन आता है। प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन अनेक कर्म करता है। कुछ कर्म स्पष्ट और व्यक्त होते हैं, कुछ गुप्तरूपसे एकान्त स्थानपर किये होते हैं। कुछ मानसिकरूपसे होते हैं। इन सभी कर्मोंकी प्रतिक्रियाओंकी व्यवस्था प्रकृति कैसे करती होगी, यह भी एक उलझनभरी समस्या है। इसको बड़ी चतुराईसे सुलझाया गया है।

हमारे शरीरके संचालनके लिये विभिन्न प्रकारके यन्त्र लगाये गये हैं। कुछ स्थूल हैं और कुछ सूक्ष्म। फेफड़े, हृदय, यकृत, आँतें आदि स्थूल हैं। मन सूक्ष्म है। मनके दो प्रकार होते हैं—एक बाहरी मन और दूसरा अन्तर्मन। आधुनिक मनो-वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'जो कार्य भी हम करते हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तर्मनमें हो जाता है।' इस चित्रणको आध्यात्मिक भाषामें रेखाएँ कहा जाता है। इस सिद्धान्तके प्रबल समर्थक हैं—विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ० फ्रायड। अन्तर्मनपर हुए चित्रणको ही भाग्य-रेखाएँ कहा जाता है। वैज्ञानिकोंने इन रेखाओंका गहन अध्ययन किया है। डा० योवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसंधान-के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि 'जब मस्तिष्कके भूरे चर्बीदार पदार्थको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रोंमें देखा गया तो उसके एक-एक परमाणुपर असंख्य रेखाएँ अंकित हुई मिलीं। ये रेखाएँ क्रियाशील प्राणियोंमें अधिक और क्रियाशून्य प्राणियोंमें कम देखी गयीं।' विशेषज्ञोंका कहना है कि यही

रेखाएँ उपयुक्त समयपर कर्मोंका साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

रेखाएँ कर्मोंका साकार रूप कैसे धारण कर सकती हैं, इस समस्याको आधुनिक विज्ञानने अनेक आविष्कारोंद्वारा सिद्ध कर दिया है। ग्रामोफोनके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जायगा। गाने-बजानेको विशेष यन्त्रोंकी सहायतासे रिकार्डमें भर लिया जाता है। यह ध्वनि रेखाओंके रूपमें ही होती है। इन ध्वनियोंका रेखाओंके रूपमें चित्रण सुरक्षित रहता है। जब भी चाहे, एक विशेष विधिसे सुईके आघातसे उसी ध्वनिको साकार रूप दे दिया जाता है। इसी तरहसे प्रत्येक शारीरिक एवं मानसिक कार्यका सूक्ष्म चित्रण अन्तर्मनके परमाणुओंपर होता रहता है और उपयुक्त अवसर पाकर आघात लगनेसे वह प्रकट हो जाता है। यह प्रकट होना उस क्रियाकी प्रतिक्रियाका स्थूलरूप है।

### चित्रगुप्तकी निष्पक्ष कर्तव्यभावना

कर्मोंका सूक्ष्म रेखाङ्कन स्वचालित यन्त्रद्वारा ही अपने-आप होता रहता है। इस प्रतिक्रियाको समझानेके लिये चित्रगुप्तरूपी देवताका नाम रक्खा गया है कि वे प्राणियोंके सभी कर्मोंको निरन्तर वहीमें लिखते रहते हैं और मृत्युके पश्चात् जब प्राणीको यमराजके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्योंका लेखा-जोखा बताते हैं; उसीके अनुसार उसे फल मिलता है। यह चित्रगुप्त वास्तवमें हमारा अन्तर्मन—गुप्त मन ही है, जो निरन्तर हमारे कार्योंके चित्र लेता रहता है और उन्हें सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आनेपर उन्हें प्रकट कर देता है।

इस गुप्त मनको 'ईश्वरीय शक्ति'की संज्ञा दी गयी है। यह सत्यनिष्ठ जजके समान है। यह किसीका पक्षपात नहीं करता। निष्पक्षरूपसे हर कार्यके चित्र लेते रहकर सुरक्षित रखते रहना ही इसका कार्य है। इन चित्रोंमें कोई परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है। वहाँतक पहुँचका अधिकार किसीको भी नहीं दिया गया है। बाहरी मन तो तर्क-वितर्क करता है, झूठको सत्य और सत्यको झूठ सिद्ध करता रहता है। यदि उसे यह व्यवस्था दी जाती तो निश्चयरूपसे कार्यमें शिथिलता आ जाती। बाहरी मन पुण्योंको तो बढ़ा-चढ़ाकर दिखाता; परंतु पापोंको बिल्कुल दर्ज न करता। इससे ईश्वरीय न्याय खण्डित हो जाता और प्रकृतिका संतुलन बिगाड़ जाता। परंतु ऐसा हुआ नहीं।



जगत्में तो पुलिस जिस मुकदमेको जैसे प्रस्तुत करे, जज उसे वैसे ही ग्रहण करता है। परंतु प्रकृतिका जज दोनों कार्योंको स्वयं करता है। इसलिये कर्मोंका विकृत रूप उपस्थित होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। उनका विशुद्ध रूप ही सामने आता है। यह अन्तश्चेतनाका निष्पक्षभावसे सभी कर्मोंके समाचार अपनी लिपिमें लिखते रहनेका कार्य ही प्रकृतिकी प्रतिक्रियाओंको वास्तविक रूपमें व्यक्त करनेमें सहायक होता है।

असंख्य क्रियाओंको कैसे लिपिबद्ध किया जाता है, इसकी भी व्यवस्था कर दी गयी है। यह प्राकृतिक नियम है कि स्थूल वस्तुओंके लिये स्थानकी अपेक्षा रहती है। सूक्ष्म इस सीमाके बाहर है। लाखों विचार और भावनाएँ हमारे मनमें रहती हैं, समय पाकर वे उभर भी आती हैं। यदि उन्हें निवासके लिये स्थानकी आवश्यकता रहती तो मनमें उनका समा सकना सम्भव न था; परंतु यदि लाखों विचार और आ जायें तो भी वहाँ समानेकी गुंजायश रहती है। चित्रगुप्तके खींचे हुए चित्र सूक्ष्म होते हैं। इसलिये सूक्ष्म-चित्रणके लिये स्थानकी कमीका कोई प्रश्न नहीं उठता।

### सूक्ष्म भावनाओंका मूल्याङ्कन

चित्रगुप्तके दरबारमें स्थूल क्रियाओंका महत्त्व नहीं है। वहाँ तो सूक्ष्म भावनाओंकी जाँच होती है। गुप्त मन एक ऐसा यन्त्र है, जो भावनाओंकी माप-तोल करके ही अपना फैसला लिखता है। दान यश, कीर्ति और किसी अन्य स्वार्थके लिये भी दिया जा सकता है और विशुद्ध परमार्थ-भावनासे भी। सेवा दिखावेके लिये भी की जाती है और पवित्र भावनासे भी। धर्मप्रचारकमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों

लिपे रहते हैं। किसीको सहयोग देनेमें दोनों भावनाएँ कार्य करती हैं। संसार तो बाह्य रूपरेखाका मूल्याङ्कन करता है। एक लाख रुपया दान देनेवाले सेठकी कीर्ति चारों ओर फैल जायगी, बड़े-बड़े धर्मध्वजियोंको जनता भरपूर सम्मान देती है; परंतु उनके अन्तर्मनमें झाँककर देखनेकी क्षमता किसीमें नहीं है, ताकि उनकी भावनाओंकी जाँच कर सके। यह कार्य केवल गुप्त मन ही कर सकता है। उसके सामने स्थूल क्रियाका महत्त्व नहीं है। वह उच्च भावनाओंको श्रेष्ठ समझता है; भले ही स्थूलरूपसे उस क्रियाका कोई विशेष महत्त्व न हो। जैसे किसी बुढ़ियाने अपनी समस्त सम्पत्ति दस रुपये दानमें दे दिये हों। दस रुपयेके दानका कोई विशेष महत्त्व नहीं है; परंतु जिस त्याग-भावनासे उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, ईश्वरके दरबारमें इसीका मूल्य अधिक लगाया जाता है और इसकी जिम्मेदारी गुप्त मनको सौंपी गयी है, जो निष्पक्षभावसे दिन-रात इस कार्यको करता रहता है। इसमें भूल-चूककी कुछ भी सम्भावना नहीं है। इन बाह्य-क्रियाओंसे स्थूल-नेत्रोंको तो धोखा दिया जा सकता है; परंतु दिव्यदृष्टिकी महान् शक्तियोंसे सम्पन्न मनकी आँखोंमें धूल नहीं डाली जा सकती। वहाँ स्थूल, सूक्ष्म, गुप्त या मानसिक जैसे भी हम कार्य करते हैं, उनको उसी रूपमें, उसी तरह लिख लिये जानेकी व्यवस्था है। अतः इस व्यवस्थाके अनुसार प्राणीकी समस्त क्रियाओंका सूक्ष्म रेखाङ्कन होता रहता है और प्रकृतिके संतुलनको बनाये रखनेके लिये प्रतिक्रियारूपमें आघात लगनेपर उपयुक्त अवसर पाकर वह साकाररूपमें प्रकट होती रहती है। कर्मफलकी ये समस्त प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक रीतिसे स्वयमेव संचालित होती रहती हैं।

## मानवको उद्बोधन

अरे अज्ञानी मानव ! अमर आत्माका निषेध करनेवाले ग्रन्थोंका आधार लेकर तुम पथ-भ्रष्ट हो गये हो। अब इस मोह-निद्रासे जग जाओ। अपने नेत्र खोलो। तुमने तो अपने लिये नरकमें स्थान सुरक्षित कर लिया है और उस अन्धतम प्रदेशमें जानेके लिये सीधा पारपत्र प्राप्त कर लिया है। स्वर्गद्वार बंद करनेवाले निरुष्ट ग्रन्थोंके पढ़नेसे ऐसा हुआ है। इन्हें अग्निको भेंट कर दो तथा गीता एवं उपनिषदोंको पढ़ो। नियमित जप, कीर्तन तथा ध्यान करो और इस भाँति अपने बुरे संस्कारोंको आमूल नष्ट कर डालो। तभी तुम विनाशसे सुरक्षित रह सकोगे।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती\*



## पापोंके अनुसार नारकीय गति

जीवको माताके गर्भमें अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर-उधर फिरता और निर्वेद (खेद) को प्राप्त होता है। अपने मनमें सोचता है—‘अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े।’ सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है। तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है। गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है। तदनन्तर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है। इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट) की भाँति घूमता रहता है। कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें। कभी इस संसारमें पुनः जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है। कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़ेसे शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर फिर इस संसारमें जन्म लेता है—

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं। पुण्यवान् स्वर्गमें जाते हैं। स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्यक्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा। साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी।

यमराजके आदेशानुसार पापी जीव यातना-शरीर प्राप्त करके विविध नरकोंमें गिराये जाते हैं। फिर, विभिन्न दुःखद योनियोंमें भेजे जाते हैं। उनका कुछ विवरण यह है—

एक भयानक नरकका नाम है—‘रौरव’। इस रौरव नरककी लंबाई-चौड़ाई दो हजार योजनकी है। यह एक गड्ढेके रूपमें है। यह नरक अत्यन्त दुस्तर है। इसमें भूमिके बराबरतक अङ्गारोंके ढेर बिछे हैं। इसके भीतरकी भूमि दहकते हुए अङ्गारोंसे बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्र वेगसे प्रवृत्त होता रहता है। यमराजके

दूत पापी प्राणीको इसीके भीतर डाल देते हैं। वह धधकती आगसे जब जलने लगता है, तब इधर-उधर दौड़ता है; किंतु पग-पगपर उसके पैर जल-भुनकर राख होते रहते हैं। वह दिन-रातमें कभी एक बार पैर उठाने और रखनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह इस नरकसे छुटकारा पाता है।

(यातना-देह उस देहको कहते हैं, जो नरककी पीड़ा भुगतानेको दिया जाता है। इसमें जलने-कटने आदिकी भयानक पीड़ा होती है, पर यह जल या कटकर नष्ट नहीं होता। पीड़ा भोगनेके लिये ज्यों-का-त्यों बना रहता है।)

अब ‘महारौरव’का वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है। वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है। उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयंकर है। यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्गमें कौबे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार ‘अरे बाप ! अरे मैया ! हाय मैया ! हा तात !’ आदिकी रट लगाता हुआ कर्षण कन्दन करता है, किंतु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार उसमें पड़े हुए जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं।

इसके सिवा ‘तम’ नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दों पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है; किंतु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दोंसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक-दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोरकी लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी हाँते रहते हैं। ओलोंके साथ बहनेवाली भयंकर वायु शरीरमें लगकर हड्डियोंको चूर्ण किये देती है और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसीको वे क्षुधातुर प्राणी खाते हैं। एक-दूसरेके शरीरसे



सटकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं। इस प्रकार जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

इससे भिन्न एक 'निकुन्तन' नामक नरक है। उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुतसे चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अंगुलियोंमें कालसूत्र लेकर, उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते। उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किंतु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता।

अब 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही कुलालचक्र होते हैं। साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी घने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुल मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं; ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ धे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं तो बारंबार रक्त वमन करते हैं। उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं। उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्रके लिये असह्य है।

अब 'असिपत्रवन' नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये। वहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयंकर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा संतप्त होते रहते हैं। उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं; किंतु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं। उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे

जब दोनों पैर जलने लगते हैं, तब वहाँ गये हुए पापी जीव 'हाय माता! हाय पिता!' आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपासाके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है; फिर अपने सामने शीतल छायासे युक्त असिपत्रवनको देखकर वे प्राणी विश्रामकी इच्छासे वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जोरकी हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर जलते हुए अङ्गारोंके ढेरमें गिर पड़ते हैं। वह आग अपनी लपटोंमें सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-सी जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए, पापियोंके सब अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं।

अब इससे भी अत्यन्त भयंकर 'तप्तकुम्भ' नामक नरक है। वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हुए बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे खोलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेका चूर्ण होता है। यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गध्र उनके अङ्गोंको नोच-नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं। तदनन्तर यमराजके दूत करछुल्लसे उलट-पुलटकर खोलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं।

पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको जो वहाँ जानेसे रोक देता है और वे प्यासी रह जाती हैं, इससे उसको भयंकर नरकमें जाना पड़ता है, जो आगकी लपटें निकलती रहनेके कारण घोर दुःखदायी होता है। उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी रहते हैं, जो पापियोंको चोंचसे नोचा करते हैं। वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेके लिये उनके मुखसे रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे रक्त-कीचड़ जमा रहता है। तप्तबालुका और तप्तकुम्भ नरकोंमें उसे संतप्त किया जाता है।



जो नीच मनुष्य काम और लोभके वशीभूत हो, दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत्-शास्त्रका उपदेश किया है तथा किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, उन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयंकर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं; पिता-पुत्रमें, स्वजनमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, सङ्गी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर करवा देते हैं, वे ही ये आरसे चीरे जा रहे हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं, जो तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छूँसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्वेगतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही यहाँ पीष, विष्टा और मूत्रसे भरे हुए गड्ढोंमें नीचे मुख करके डबाये जा रहे हैं। जो लोग देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीष और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किंतु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। जो लोग पशुक्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्टा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें

साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्योंको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खखार भोजन करते हैं। जिन्होंने स्वेच्छा-पूर्वक जूटे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो जान-बूझकर पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अङ्गारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग जलता रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोक देते हैं। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पौसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने-चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीरमें बहुत-से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा संकटकालमें अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अर्किचन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है, वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगानेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोलहूमें परे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है। जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्यको धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अङ्ग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, विन्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं।



इसमें लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका विशाल वृक्ष है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथ-पथ रहते हैं। नरश्रेष्ठ ! परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करने-वाले लोग यमराजके दूतोंद्वारा धरियामें रखकर गलाये जाते हैं। जो उदण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार डोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ देनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्टाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्टा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बार-बार नीचे गिराये जाते हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अङ्गारे चबाने पड़ते हैं। पीठ-पीछे बुराई करनेवाले पापी लोगोंकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये प्रतिदिन खाया करते हैं।

उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता करनेवाले भूखसे व्याकुल तथा अन्धे, वहरे और गूंगे होकर भटकते हैं। मित्रोंकी बुराई करनेवाले तप्तकुम्भ नरकमें गिराये जाते हैं। इसके बाद चक्रियोंमें पीसे जाते, फिर तपायी हुई बालमें भूने जाते हैं। उसके बाद कोल्हूमें पेरें जाते हैं। तत्पश्चात् अस्तिपत्रवनमें यातना दी जाती है। फिर आरसे यह चीरा जाता है। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जाता है। इसके बाद और भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ती हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी— ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धक्कती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा

आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीचे-से-नीचे नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जिन-जिन पातकके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, उनका कुछ विवरण इस प्रकार है—

पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निरसंदेह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। माईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किंतु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है। धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े घुँहका चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयंकर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध, साँप, सूअर तथा कौएकी योनिमें जन्म लेता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न-भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है। जो पितृके समान पूजनीय बड़े माईका अपमान करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौच पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। यदि उसने ब्राह्मणिके गर्भसे संतान उत्पन्न कर



दी हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर, कृमि, विष्टाका कीड़ा और चाण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिलचूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। धी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जलकागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला बिसतुइया होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। कौंसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पत्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटम्बर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रूईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे कौँच और अग्निके अपहरणसे बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अङ्गराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता

है। लाल वस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छबूंदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है। फल चुरानेवाला नपुंसक और काष्ठकी चोरी करनेवाला धुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पङ्खु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयंकर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, शाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् वह क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि धृष्टित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिमें वह पङ्खु, अन्बा, बहरा, कोढ़ी, राजयक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लेकर दूसरेको देता है, वह पूर्व नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है। (मार्कण्डेयपुराणके आधारपर)

## रूमीकी आकाङ्क्षा

“मैं (पाषाणादि) स्थावरदेहमें मरकर उद्भिज्ज (पेड़-पौधा) बना; उद्भिज्ज देहमें मरकर पशुके रूपमें प्रकट हुआ; पशुदेहमें मरकर मनुष्य बना। तब फिर मैं किससे डरूँगा? मरकर मैंने कब नीची गति प्राप्त की? इसके बाद मैं मरकर देवदेह प्राप्त करूँगा। वहाँसे भी आगे बढ़नेकी आशा करूँगा। तदनन्तर ‘उसकी सुख-शोभा’के अतिरिक्त अन्य सब चीजें नष्ट हो जायँगी। मैं देवताओंसे भी आगे बढ़ जाऊँगा। वाणी उस स्थितिका वर्णन नहीं कर सकती। मन उसका चिन्तन नहीं कर सकता।

(जलाशरीर रूमी—‘मशनबी’)



## भगवान् कालस्वरूप

( लेखक—श्रीपरशुरामजी पाण्डेय बी० ए० )

भगवान् समस्त प्राणियोंके नियामक हैं। उनकी लीला एवं उनके संकल्पोंका रहस्य जीव किसी साधनसे नहीं जान सकता। भगवत्कृपासे ही जीव उनके सम्बन्धमें यत्किंचित् जान पाता है। भगवान् अप्रमेय हैं। कालोंके भी काल हैं। उनकी प्रत्येक लीला अलौकिक होती है। भगवान् मन-वाणीके विषय नहीं हैं। फिर भी यथाशक्ति कवियों, भक्तों एवं प्रेमियोंने उनका गुणानुवाद किया है। वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर भगवान्के गुणों एवं लीलाओंका वर्णन किया है। भगवान् ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं रुद्ररूपसे संहार करते हैं। यहाँपर उनके इसी संहारकारी रूपका—कालस्वरूपका किंचित् दिग्दर्शन कराया जाता है।

भगवान्में सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेकानेक गुण हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव वृणां भग इतीक्ष्णा ॥

( विष्णुपुराण ६।५।७४ )

सभी गुणोंके निवास-स्थान भगवान् ही हैं। भगवान्ने अपनी लीला-हेतु ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। उनके लिये सृष्टि, पालन एवं संहार—तीनों ही प्रकारकी लीलाएँ समान हैं। जिस प्रकार बालक मिट्टीका घरोँदा बनाते हैं, उससे खेलते हैं और अन्तमें उसे नष्ट कर देते हैं; उन्हें तीनों ही क्रियाओंमें बराबर आनन्द आता है। उसी प्रकार ये भगवान्की तीनों लीलाएँ हैं। भगवान् मङ्गलमय हैं। उनकी हरएक लीला मङ्गलमयी है। अतएव उनकी संहारकारी लीलामें भी मङ्गल गुप्तरूपसे भरा हुआ है। ( वास्तवमें वे लीलामय ही लीला भी बनते हैं। )

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने प्रिय, सखा अर्जुनको अपने विराट्स्वरूपका दर्शन कराया था, उसमें भगवान्ने अपने कालस्वरूपका दिग्दर्शन कराया—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो

लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

अस्मि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे

येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

( गीता ११।३२ )

श्रीभगवान् बोले—'मैं लोकोंको नाश करनेवाला बड़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा।'

दसवें अध्यायमें भगवान्ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए बतलाया कि 'गणना करनेवालोंमें मैं काल हूँ, अक्षरोंमें अकार, समासोंमें द्वन्द्व तथा अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं ही हूँ—'अहमेवाक्षयः कालो'।'

भगवान् पृथ्वीका भार कालस्वरूप होकर ही उतारा करते हैं। भगवान् सत्य-संकल्प हैं। जीवके संकल्पकी सफलता भगवदिच्छापर है। भगवान् लोकमें अपनी इच्छा-के विपरीत भी कार्य करते देखे जाते हैं; परंतु उन्हें उसमें सफलता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण लोकसंग्रहके निमित्त पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये। दुर्योधनादि कौरवोंको समझानेका प्रयास किया, परंतु दुर्योधन संधि करनेको तैयार नहीं हुआ। त्रिभुवनमें कौन ऐसा कार्य है, जिसे भगवान् करना चाहें और उसमें सफलता न मिले। परंतु भगवान्की इच्छा इसके विपरीत थी। भगवान् युद्धद्वारा भू-भार उतारना चाहते थे। हुआ भी ऐसा ही। १८ अश्वहिणी सेनामें पाण्डव पक्षमें—भगवान् श्यामसुन्दर, पाँचों पाण्डव एवं सात्यकि तथा कौरव पक्षमें—कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामाके अतिरिक्त सभी काल भगवान्के मुखमें चले गये। भगवान्के कालस्वरूपका दर्शन कर अर्जुनके सहस्र भगवद्भक्त भी भयभीत होकर धैर्य एवं शान्तिको खो देते हैं तो फिर दुष्टोंके लिये तो कहना ही क्या है।

महाभारत-युद्धके पश्चात् पृथ्वीका भार हल्का हो गया था और सभी लोग यही सोचते भी थे; परंतु भगवान्ने सोचा कि 'यद्यपि लोगोंकी दृष्टिमें भू-भार उतर गया है; लेकिन मेरे विचारसे अभी पूर्णतया पृथ्वीका भार हल्का नहीं हुआ है; क्योंकि अभी ये यदुवंशी बचे हुए हैं। ये मेरे आश्रित हैं, अतः इनको कोई पराजित भी नहीं कर सकता। अब मुझे ही किमी प्रकारसे इन्हें नष्ट करना है।'।





माता, पिता, गुरुजनोंका अपमान करनेवालोंकी गति  
[ पृष्ठ ६६१ ]



गुरु, देवता और वेदोंकी निन्दासे प्रसन्न  
होनेवालोंकी गति [ पृष्ठ ६६१ ]

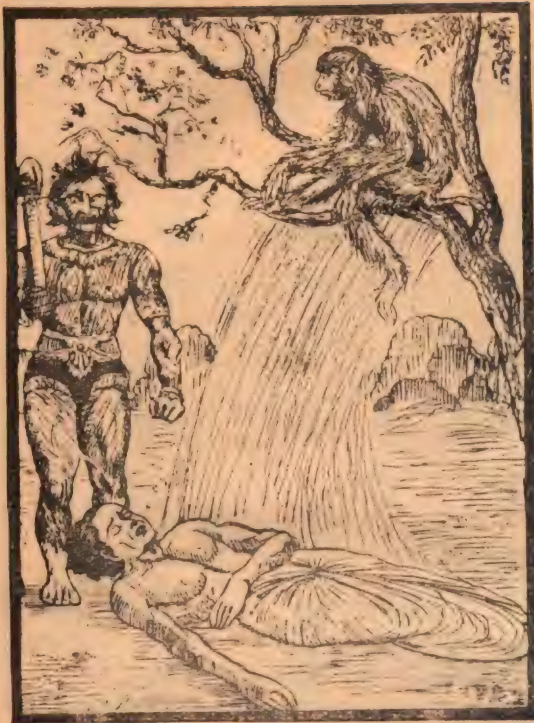


आताथ आदको न देकर अकेले खानेवालोंकी गति  
[ पृष्ठ ६६२ ]



सर्पचोर, शराबी, प्रह्लादहत्यारे आदिकी गति  
[ पृष्ठ ६६२ ]





स्वामीका अन्न खाकर उसका काम न  
करनेवालोंकी गति [ पृष्ठ ६६२ ]



पर-स्त्रीगामियोंकी गति [ पृष्ठ ६६२ ]



कुतश्चन आदिकी गति [ पृष्ठ ६६३ ]



भोजनादिकी चोरी करनेवालोंकी गति [ पृष्ठ ६६३ ]



ऐसा विचारकर भगवान्ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने यदुवंशियोंमें ही फूट डालकर उन्हें कालके हवाले कर दिया। भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ।

गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥

( ११।१६।१० )

‘गतिशील पदार्थोंमें मैं गति हूँ। अपने अधीन करने-वालोंमें मैं काल हूँ। गुणोंमें मैं उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ।’

भगवान् कालके भी आधार हैं—महाकाल। भगवान्के समान तो कोई है ही नहीं; फिर उनसे बढ़कर कौन हो सकता है? भगवान् स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं। रामचरितमानसमें माल्यवन्त राक्षसराज रावणको सचेत करते हुए भगवान्के काल-स्वरूपका बोध कराता है—

कालरूप खलु वन दहन गुनागार घनबोध ।  
सिव बिरचि जेहि सेवहि तासों कवन विरोध ॥

( लंकाकाण्ड ४८ ख )

इसी प्रकार भगवान्के अन्य स्वरूपोंके साथ-साथ भगवान्के कालस्वरूपका वर्णन सभी शास्त्रों, पुराणों, महाभारत एवं रामचरितमानसके अनेकानेक स्थलोंपर आता है। यदि मनुष्य भगवान्के कालस्वरूपका स्मरण करता रहे तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है तथा उसका निश्चित ही कल्याण हो सकता है। कंसने भगवान्के इसी स्वरूपका स्मरण करते हुए भगवत्प्राप्ति की। वह चौबीस घंटे—उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते, काम करते, विचार करते समय उन्हीं भगवान्का चिन्तन करता था। उसने भगवान्का स्मरण प्रेमसे नहीं, वैरसे ही किया, परंतु उसका कल्याण हो गया। नारायणभक्तने कहा है—

दो बातन काँ भुल मत, जो चाहै कल्यान ।

‘नारायण’ एक मौत को, दूजे श्रीभगवान् ॥

## सुकरात और परलोक

( लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे )

‘मुझे राज्यके विशेष सम्मानित व्यक्तियों और कतिपय हितचिन्तकोंकी तरह जन-कोषसे खर्च देकर नगर-भवनमें भोजन करनेका अधिकार प्राप्त होना चाहिये।’

प्राण-दण्ड सुन लेनेके बाद उसके स्थानपर दूसरे दण्डका प्रस्ताव रखनेकी आज्ञा मिलनेपर सुकरातने इतनी तिक वात कह दी। इसका कारण यही था कि उन्हें अपने शरीरका तनिक भी मोह नहीं था। वे अच्छी प्रकार समझते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि आत्मा अनश्वर एवं अमर है। भौतिक देहके नष्ट हो जानेपर उसकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता। वे प्रायः कहा करते कि ‘तुम्हें इस बातसे लजा नहीं आती कि तुम केवल धन, यश और सम्मानका अर्जन करनेमें ही व्यस्त हो तथा ज्ञान, सत्य और आत्माकी पूर्णताके लिये प्रयत्नशील होनेकी तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है?’

न्यायालयमें अपने भाषणके अन्तमें सुकरातने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें जन-समाजसे प्रार्थना की कि ‘जब मेरे पुत्र सयाने हो जायँ तो उन्हें भी दण्ड देना तथा उन्हें भी इसी प्रकार हैरान करना जैसा कि मैं दूसरोंको करता रहा हूँ,

जब कि आप उन्हें सम्पत्ति-संग्रहमें संलग्न पायें तथा विशुद्ध आचरणसे बढ़कर अन्य किसी प्रकारकी चेष्टा करते देखें। इतना ही नहीं, यदि वे यह समझ बैठें कि वे अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, जब वास्तवमें वे इस योग्य न हों तो अवश्य ही आप लोग उन्हें प्रताड़ित करें जैसा कि मैं आप लोगोंको करता आया हूँ। आप उन्हें बेशक इस बातका उलाहना दें कि उन्हें कर्तव्यको पहचानना चाहिये और अपनेको बड़ा नहीं समझना चाहिये, वास्तवमें वे निरे अयोग्य ही हों।’

सुकरात दृढ़तासे कहते कि “हर व्यक्तिकी विशेषताके पीछे छिपे ‘अविशेष’ को देखनेका प्रयत्न किया जाय तो मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको ढूँढ़ा जा सकता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे राग-द्वेष, वैष-भूषा, आचार-विचारमें कितना ही भिन्न हो, सब व्यक्तियोंमें एक ही समान तत्त्व विद्यमान है, जो कि उनके विशेषणोंके आडम्बरोंसे आवृत रहता है; किंतु उसे ढूँढ़ा जा सकता है। यह ‘समानता तत्त्व’ मानवका आत्मा है। इसे जानना ही मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको जान लेना है।”



सुकरात प्रायः अपने मिलनेवालों और नगर-निवासियोंसे बार-बार आग्रह करते कि उन्हें आत्मज्ञानके लिये सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये । उन्होंने स्वयं कहा है—‘मैं तुमसे हर एकके पास जाकर यही अनुरोध करता हूँ कि पहले अपने आत्माको उन्नत और पवित्र करो; फिर संसारी बातों, धन आदिपर ध्यान दो ।’

वे आगे और बल देकर कहते कि ‘तुम्हें अपने बारेमें तबतक चिन्ता नहीं करनी चाहिये, जबतक कि तुम अपने आत्माकी चिन्तासे निवृत्त न हो जाओ और जबतक कि अपनेको तुम भरसक बुद्धिमान् और परिपूर्ण न बना लो ।’

ज्ञान-प्राप्त करनेके लिये मृत्युसे नहीं डरना चाहिये । सुकरात कहा करते—‘जो व्यक्ति मरनेसे डरता है, वह ज्ञानका प्रेमी नहीं है, किंतु अपने शरीरका प्रेमी है । वह कदाचित् धन या नामका या दोनोंका ही प्रेमी है ।’

× × ×

‘मैं समझता हूँ कि शरीरके साथ अत्यन्ताधिक रहनेसे और उसके लिये अधिक चिन्ता करनेसे उसका स्वभाव शारीरिक हो जाता है । वह उसमें विघ्न जाता है ।’

मृत्यु डरनेकी वस्तु नहीं, वह तो थके यात्रीको विश्राम देनेके लिये आती है । वह शान्ति एवं सुख देनेवाली है । सुकरात कहते हैं—‘जब हम मृत्युका भय करते हैं, तब हम अपनेको उससे डरनेके लिये बुद्धिमान् समझते हैं; किंतु वास्तवमें हम मृत्युके बारेमें कुछ नहीं जानते; क्योंकि मनुष्यके लिये सबसे भलाई मृत्यु ही है । किंतु वे उससे डरते हैं और यह समझते हैं कि मानो मृत्यु ही सबसे बड़ी विपत्ति है और यह समझना कि मृत्यु भयंकर विपत्ति है, क्या लजाजनक मूर्खतासे कम है ?’

सुकरातकी तर्कबुद्धि अत्यन्त विलक्षण थी । संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है और मृत्युके अनन्तर कालान्तरमें पुनर्जीवन प्राप्त होता है । इस विषयको कारागारमें उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सीविसको प्रमाणोंद्वारा बताया था । उन्हींके शब्दोंमें—

सुकरात—आत्मा मृत्युके बाद दूसरे लोकमें रहता है या नहीं, इस प्रश्नपर हमें इस भाँति विचार करना चाहिये । यह एक पुराना विश्वास है कि मृत्युके बाद आत्मा दूसरे लोकमें रहता है और लौटकर मरे

हुए शरीरसे वह फिर उत्पन्न होगा । किंतु यदि यह सत्य हो कि मरे हुएसे जीवित पैदा होते हैं तो हमारा आत्मा मरनेके बाद अवश्य दूसरे लोकमें रहता है, नहीं तो वह फिर उत्पन्न न होता । यदि हम यह प्रमाणित कर सकें कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है तो हमारा कथन प्रमाणित हो जायगा; किंतु यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो हम किसी दूसरे तर्कका आश्रय ग्रहण करेंगे ।

सीविस—यह ठीक है ।

सुकरात—इस बातको हल करनेकी सबसे सरल रीति यह है कि हम इस बातको देखें कि केवल मनुष्य ही नहीं, किंतु सारे जीव और वृक्षके ऊपर जो कि उत्पन्न होनेवाली वस्तु हैं, यह सिद्धान्त लागू है या नहीं ? क्या वह वस्तु, जिसकी विपरीत ( विरुद्ध ) भी कोई वस्तु है, अपनी विपरीत वस्तुसे उत्पन्न होती है या नहीं ? विरुद्ध या विपरीत कहनेसे मेरा मतलब ऐसी चीजोंसे है—जैसे माननीय और नीच, न्यायी और अन्यायी आदि । अब हमें यह देखना चाहिये कि क्या यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तु अपनी वस्तुहीसे उत्पन्न हो ? उदाहरणके लिये जो वस्तु बड़ी हो जाती है, वह पहले अवश्य ही छोटी रहती है और पीछे बड़ी होती है ।

सीविस—हाँ ।

सुकरात—और यदि कोई वस्तु छोटी हो जाती है तो पहले वह बड़ी रहती है और तब छोटी होती है ।

सीविस—हाँ, यह ठीक है ।

सुकरात—और फिर जो अधिक कमजोर होता है, वह पहले अधिक शक्तिशाली होता है और जो अधिक तेज हो जाता है, वह अवश्य ही पहले धीमा होगा ।

सीविस—निस्संदेह ।

सुकरात—फिर बुराई भलाईसे उत्पन्न होती है और अधिक न्याय अधिक अन्यायसे उत्पन्न होता है ।

सीविस—ठीक है ।

सुकरात—तो यह स्पष्ट है कि सब वस्तु अपने विरुद्धसे उत्पन्न होती है ।

सीविस—बहुत ठीक ।

सुकरात—और प्रत्येक विरुद्ध वस्तु, जब एक दशासे दूसरी दशामें पहुँचती है और फिर उस दशासे अपनी पहली दशामें पहुँचती है, तब क्या उसे दो अवस्थाओंमें



होकर जाना नहीं पड़ता ? बड़ेसे छोटे और छोटेसे बड़े होनेमें वस्तुको घटना और बढ़ना पड़ता है और हम कहते हैं कि वह घटती या बढ़ती है । क्या हम यह नहीं कहते ?

सीविस-हाँ, यह ठीक है ।

सुकरात-और इसी तरह फिर विभाग और जोड़ है, सर्दी और गरमी है । असलमें हम इस नियमको इतने लंबे-चौड़े शब्दोंमें नहीं कहते, तथापि क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि विरुद्ध विरुद्धहीसे उत्पन्न होते हैं और एक दशासे दूसरी दशामें जाते समय उसे उत्पन्न होनेकी अवस्थामें होकर जाना होता है ?

सीविस-हाँ, ऐसा ही होता है ।

सुकरात-अच्छा, तो जिस तरह जाग्रत्-अवस्थाकी उलटी अवस्था निद्रावस्था है, क्या वैसे ही जीवनकी भी कोई उलटी अवस्था है ?

सीविस-अवश्य है ।

सुकरात-वह क्या है ?

सीविस-मृत्यु ।

सुकरात-तब यदि जीवन और मृत्यु दोनों एक दूसरेके उलटे हैं, तो वे एक दूसरेसे उत्पन्न होते हैं । ये अवस्था दो ( भिन्न अवस्था ) हैं और इन दोनों अवस्थाओंके बीचमें दो उत्पन्न होनेकी अवस्थाएँ हैं । ऐसा है कि नहीं ?

सीविस-निस्संदेह ।

सुकरात-अब मैं अभी कहे हुए दो विरुद्ध जोड़ोंमेंसे एक विरुद्ध जोड़ और उसके उत्पन्न होनेकी अवस्थाका वर्णन करूँगा और तुम मुझे दूसरे जोड़को समझाना । नींदका उलटा है जागना । नींदसे ही जाग्रत्-अवस्था उत्पन्न होती है । उसके उत्पन्न होनेकी रीति इस प्रकार है कि पहले सोना, फिर जागना । अब समझ गये ?

सीविस-अच्छी तरहसे ।

सुकरात-अब तुम हमसे जीवन और मृत्युके विषयमें कहो । जीवन मृत्युका उलटा है कि नहीं ?

सीविस-हाँ ! है ।

सुकरात-तो एक-दूसरेसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस-हाँ ।

सुकरात-तो जीवितसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस-मरा हुआ ।

सुकरात-और मरे हुएसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस-हमको अवश्य यह कहना होगा कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है ।

सुकरात-तो सीविस ! जीवित वस्तु और जीवित मनुष्य मरी हुई वस्तु और मरे हुए मनुष्योंसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस-यह साफ जाहिर है ।

सुकरात-तो हमारा आत्मा दूसरे लोकमें ( मृत्युके बाद ) वर्तमान रहता है ?

सीविस-मालूम तो ऐसा ही पड़ता है ।

सुकरात-अच्छा, तो इन उत्पन्न होनेवाली अवस्थाओंमेंसे मैं समझता हूँ कि एक अर्थात् मृत्यु अवश्यम्भावी है ।

सीविस-अवश्य ।

सुकरात-तो अब हमें किस पथका अनुसरण करना चाहिये ? क्या हम ( इस अवश्यम्भावी अवस्था ) मृत्युके विरुद्ध नियमानुसार कोई उलटी अवस्था नियत नहीं कर सकते ? अथवा प्रकृति इस स्थानपर अपूर्ण है ? क्या मरनेका कुछ उलटा नहीं है ?

सीविस-अवश्य कुछ होना चाहिये !

सुकरात-और वह क्या होना चाहिये ?

सीविस-पुनर्जीवन ।

सुकरात-और यदि पुनर्जीवन कोई वस्तु है तो यह मृत्युसे जीवनका उत्पन्न होना है ?

सीविस-अवश्य ।

इसी प्रकार अनेक प्रमाणों एवं अकाट्य तर्कोंसे वे सिद्ध कर देते हैं कि 'आत्मा अमर और अविनाशी है और अवश्य ही हमारे आत्मा परलोकमें विद्यमान रहेंगे ।'

इस प्रकार महान् दार्शनिक सुकरात स्वीकार करते हैं और जगत्को बताते हैं कि 'मरे हुए फिरसे जीवित होते हैं और मरे हुएोंके आत्माका अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता । पुण्यात्मा ( सज्जन ) मनुष्यका आत्मा इस स्थितिकालमें सुखसे रहता है और पापीका आत्मा दुःख भोगता है ।'

सुकरात कहते हैं कि 'परलोकमें सुखसे, शान्तिपूर्वक रहनेके लिये सच्चा दार्शनिक सदा संयमसे रहता है और शारीरिक सुखोंसे दूर भागता है और कभी भी अपनेको



सुखोंमें मग्न नहीं होने देता। वह अपनी सम्पत्तिकी बर्बादी या अपनी दरिद्रतासे नहीं डरता; जैसा कि जन-समुदाय डरा करता है और न वह शक्ति या मान-प्रतिष्ठाके भूखे लोगोंकी तरह दुष्टोंके अनादर या अपमानसे ही डरता है।

सुकरात मनुष्यके आत्यन्तिक मङ्गलके लिये; उसमें शुद्ध सत्त्वगुणोंको भरनेके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करते थे। वे चाहते थे कि मनुष्यके जीवनमें दम्भका लेश भी न हो। वे अन्तर्वाह्य सदा स्वच्छ और पावन रहे—जीवनान्त ज्ञानकी गवेषणामें संलग्न रहे। वे कहते हैं—

‘यदि हम शरीरकी आवश्यकताएँ मात्र पूरी कर दिया

करें और उसकी आदतोंसे अपनेको अपवित्र न होने दें, तो जीवनमें हम ज्ञानके बहुत पास पहुँच जायेंगे। हमें उससे (शरीरसे) बचकर जहाँतक हो सके; वहाँतक पवित्र रहना चाहिये; जबतक कि ईश्वर हमें इससे (शरीररूपी बन्धनसे) न छुड़ा दे। और जब इस तरहसे हम पवित्र हो जायेंगे और शरीरकी मूर्खताओंसे सम्बन्ध न रखेंगे; तो हम (परलोकमें) पवित्रात्माओंके साथ निवास करेंगे और हम स्वयं पवित्र बातोंको जान जायेंगे; और सम्भव है कि वे पवित्र बातें ही ‘सत्य’ (ज्ञान) हों; क्योंकि मुझे विश्वास है कि अपवित्र वस्तु पवित्र वस्तुको नहीं पा सकती।’

## परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत)

[ पृष्ठ-संख्या १६७ से आगे ]

### (ज) क्या परलोकमें जानेसे पुनर्जन्ममें अनुपपत्ति आती है ?

कई व्यक्तियोंका यह विचार होता है कि “पुनर्जन्म-सिद्धान्तके आधारपर स्वर्ग-नरक आदि लोकविशेषोंकी आवश्यकता ही नहीं रहती। पुण्य-पापकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्ग-नरककी प्राप्ति बतायी जाती है; वह आत्माके जन्म-जन्मान्तरोंमें शरीरके धारण करनेसे भाँति-भाँतिकी योनियोंमें यहाँ प्राप्त हो जाती हैं; उनकी परलोकमें स्थिति नहीं होती। ‘स्वर्ग’का अर्थ ‘सुख’ है और ‘नरक’का अर्थ ‘दुःख’ है। ‘लोक’का अर्थ ‘शरीर’ है। ये लोक हमारे शरीर ही हैं; जो आत्माको अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। यदि स्वर्ग-नरक आदि लोक-विशेषोंमें जीवका गमन माना जाय; तब यह पुनर्जन्म किसका होता है ? पुनर्जन्म और स्वर्गादि-लोककी प्राप्ति—ये दो सिद्धान्त इकट्ठे नहीं रह सकते। जो मुसलमान आदि सम्प्रदाय पुनर्जन्म (आवागमन) में विश्वास नहीं रखते; उनके मतमें तो स्वर्ग (बहिस्त) नरक (दोज़ख) अपनी सत्ता रखते हैं; परंतु आवागमनरूप पुनर्जन्म मानने-वाले हिंदुओंके लिये स्वर्ग-नरकादि परलोकमें जानेकी बात ही हास्यास्पद है। इसलिये परलोकगत जीवोंके लिये पिण्डदान-श्राद्ध-तर्पण आदि कर्म भी व्यर्थ हैं।

‘‘जब कि जीव मरणके बाद तत्काल ही पुनर्जन्मको ग्रहण

कर लेता है, जैसे कि बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४) में ‘तृणजलौका’ न्यायसे स्पष्ट कर दिया गया है। जैसे जोंक जलमें तृणके अन्तमें पहुँचकर दूसरे तृणपर जाती हुई; पहले तिनकेको तब छोड़ती है; जब वह दूसरे तिनकेपर पाँव जमा लेती है; इस प्रकार जीवात्मा भी एक शरीरको छोड़कर तत्काल ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है।

(ख) इसलिये महाभारतमें भी कहा है—

आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्रायं कलेवरम् ।

सम्भवत्येव युगपद् योनौ नास्त्यन्तरा भवः ॥

(वनपर्व १८३।७७)

‘मरनेपर जीव तत्क्षण ही अन्य योनिमें चला जाता है; क्षणके लिये भी जीव असंसारी (बिना शरीरके) नहीं रहता।’

(ग) भगवद्गीतामें भी यही कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

(२।२२)

यहाँपर पुराने वस्त्रके त्याग तथा नये वस्त्रके पहननेके दृष्टान्तसे जीवात्मा इस शरीरको छोड़नेके बाद ही



सद्यः पुनर्जन्म ग्रहण कर लेता है, तब उसके लिये मृतक श्राद्धादि व्यर्थ हैं।

“जीवके इस शरीरको छोड़नेपर उसका सारा सांसारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। पुनर्जन्म होनेपर पितरोंके नामसे दी हुई सामग्री हमारे पास नहीं आती। हम भी किसीके पितर होंगे ही। इस प्रकार स्वर्ग-नरक आदिकी भाँति मृतक श्राद्ध-तर्पण आदिका भी पुनर्जन्म-सिद्धान्तके साथ कुछ भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।”

यह एक विचारणीय आवश्यक विषय है। इसपर भी हम विचार करना चाहते हैं। इसमें यह ध्यान देना चाहिये कि—परलोकादि विषय प्रत्यक्ष नहीं हैं, किंतु परोक्ष हैं; तब परोक्षविषयमें युक्तियोंकी भला गति कैसे हो सकती है? उसमें तो, वेदादि शास्त्रोंका ही प्रामाण्य होगा। देखे हुए चन्द्रमाको माननेवाले चार्वाक हुआ करते हैं। उनकी वाणियाँ आपात-मनोहर हुआ करती हैं; वस्तुतः तो निरर्थक ही होती हैं।

यह हमारा पृथ्वीलोक ‘इहलोक’ वा ‘अयं लोकः’ कहा जाता है; परंतु स्वर्गादि लोक तो ‘परलोक’ वा ‘असौ लोकः’ इत्यादि शब्दोंसे कहा जाता है। पहले कहा जा चुका है कि—‘अदस्’ शब्दका प्रयोग ‘दूरस्थित’ के लिये आता है और ‘इदम्’ शब्द निकटके लिये आता है। अतएव ‘पृथिवीलोक’ के लिये हम ‘अयं लोकः’ कहते हैं; और स्वर्गादिको ‘असौ लोकः’ कहते हैं। वे इस लोकसे भिन्न एवं दूर सिद्ध होते हैं; इस विषयमें ‘व’ भागके ‘उ’ आदि विभागमें हम प्रमाण दे चुके हैं।

‘तस्माद् लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे।’

(शतपथ १४।७।२।८)

यही वचन बृहदारण्यक उपनिषद् (४।४।६)में भी आता है। यहाँ ‘तद्’ शब्दसे ‘परलोक’ स्वर्गादि इष्ट है। उससे वापस इस लोकमें फिर कर्म करनेके लिये आना या पुनर्जन्म लेना कहा है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि परलोक भोगस्थान है। उसमें प्राप्त हुए ‘भोगयोनि’ होते हैं; वहाँ कर्म करना फलजनक नहीं होता। इस लोकको ‘कर्मस्थान’ कहा गया है। तब जो व्यक्ति परलोक जानेपर फिर उसके इस लोकमें आवागमनमें अनुपपत्ति मानते हैं, वे भ्रान्त सिद्ध होते हैं। अधिकतया भोग तो स्वर्गादि लोकमें हो जाता है। शेष बचे हुए-से हम यहाँ आते हैं; उनका फल भी प्राप्त करते हैं

और नवीन कर्म भी करते हैं। हाँ, जब जीव मुक्तिलोकमें जाता है; उस समय कोई भी कर्म शेष न रह जानेसे उसका फिर इस लोकमें भी कर्मबद्ध आगमन नहीं होता।

ईसाई और मुसलमान मरे हुआँकी कब्रमें स्थिति मानते हैं; उनका पुनर्जन्म नहीं मानते। पर वे भी ‘क्यामत’ के समय पुनः परमात्माके द्वारा मरे हुआँका जीवन मानकर पुनर्जन्म-सा मानते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि—परलोक इस लोकसे भिन्न है। हमें रातको जो तारामण्डल दीखता है, यही स्वर्गलोक-का परलोक हुआ करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है—‘देवाह्ना वै नक्षत्राणि’ (१।५।२।६) यहाँ तारामण्डलको देवताओंका स्थान कहा है। वहाँ कहा गया है—‘यो वा इह यजेत। अमुं स लोकं नक्षते, तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्’ (१।५।२।५) यहाँ पृथिवीलोकमें यज्ञ करनेवालोंका परलोकमें तारामण्डलमें जाना कहा है। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहितामें कहा है—‘सुकृतां वा एतानि ज्योतीष्वि यन्नक्षत्राणि।’ (५।४।१।३) यहाँ तारामण्डलको यज्ञ करके परलोकमें गये हुआँकी ज्योति बताया गया है।

न्यायदर्शनके वात्स्यायनभाष्यमें भी कहा है—‘नित्यः खलु अयमात्मा। यस्माद् एकस्मिन् शरीरे धर्मं चरित्वा कायभेदाद् (मरणे सति) स्वर्गे देवेषु उपपद्यते। अधर्मं चरित्वा देहभेदाद् (मृत्यौ) नरकेषु उपपद्यते।’ (३।२।४१) यहाँ भी स्वर्गादि लोक तथा उसमें देवता माने गये हैं। ‘ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।’ (भगवद्गीता ९।२१) यहाँपर देवताओंका स्वर्गलोक भोगकर फिर मनुष्यलोकमें आना कहा है।

वेदान्तदर्शनके शाङ्करभाष्यमें कहा है—‘लोक’ शब्दश्च प्राणिनां भोगायतनेषु भाष्यते—‘मनुष्यलोकः, पितृलोकः, देवलोकः।’ (४।३।४) अर्थात् लोकका अर्थ है कि—प्राणियोंको जिस लोकमें सुख-दुःखका फल मिले। ‘पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।’ (अथर्ववेद सं० १२।२।४५) यहाँपर मृतकोंका ‘पितृलोक’में जाना कहा है।

आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजी भी ग्रह-नक्षत्रमण्डलमें पुरुषोंकी स्थिति मानते हैं। देखिये, उनका उद्धरण—



प्रश्न—सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं; और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

( उत्तर—) ये सब भूगोललोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है.....जब पृथ्वीके समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वस्तु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजाके होनेमें क्या संदेह ?.....( प्रश्न—जैसे इस देशमें मनुष्यादि सृष्टिकी आकृति अवयव है, वैसे ही अन्य लोकोंमें भी होंगी, वा विपरीत ? ( उत्तर—) कुछ-कुछ आकृतिमें भेद होना भी सम्भव है.....( सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लासके अन्तमें ) ।

वेदान्तदर्शन शाङ्करभाष्यमें कहा है—‘सम्पतन्ति अनेन अस्माद् लोकाद् अमुं लोकं फलोपभोगाय ।’ ( ३ । १ । ८ ) यहाँपर आर्यसमाजके श्रीतुलसीरामजीके भाष्यका सारांश यह है कि—‘इष्टापूर्त आदि उत्तम कर्मके करनेवाले चन्द्रलोक आदि उत्तम लोकोंमें फल भोगकर कुछ अपना अवशिष्ट कर्म अपने साथ लाकर इस लोकमें उत्तमयोनिमें जन्म लेते हैं ।’ वहीं ३ । १ । १२ शाङ्करभाष्यमें भी कहा है—‘ये वै केचिद् अधिकृता अस्माल्लोकाद् प्रयन्ति, चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति ।’ यहाँ भी वही बात कही है। मृतकोंका चन्द्रलोकमें जाना कहा है ।

‘विधुर्ध्वभागे पितरो वसन्ति’ ( सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना १३ श्लोक ) यहाँ पितरोंका चन्द्रलोकपर रहना कहा है। जब ऐसा है, तब मृत पितर लोग विशेष शक्तिशाली होनेसे हमसे दिये हुए श्राद्ध-पिण्ड-दानादिको अपनी आकर्षण-शक्तिसे खींच लेते हैं ।\*

### तृणजलौका-न्याय

अब इस न्यायपर भी विचार करना चाहिये । बृहदारण्यक उपनिषद्में यह वचन है—‘तद् यथा तृणजलायुका तृणस्य अन्तं गत्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति,

\* इस विषयमें आर्यसमाजके विद्वान् श्रीरघुनन्दनशर्माजीकी ‘वैदिक सम्पत्ति’ ( प्र० सं० ) के पृ० ३७१ । ३७२ पृष्ठमें तथा हमारे ‘श्रीसनातनधर्मालोक’ पञ्चम पुष्पके ६८१ । ६८४ पृष्ठमें देखा जा सकता है । इसलिये श्राद्धादि कर्म भी व्यर्थ नहीं हैं । इस विषयमें ‘श्रीसनातनधर्मालोक’ चतुर्थ पुष्पमें पृ० ३३०-३४४ तथा वहीं ‘परलोकविद्या’ विषयमें ३४५-३५६ पृष्ठमें देखना चाहिये ।

एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानं उपसंहरति । ( ४ । ४ । ३ )

उक्त वचनमें मृत्युके बाद जो देह तैयार होता है, वह पारलौकिक सूक्ष्मदेह ही होता है, चाहे वह देवलोकका देह हो, चाहे पितृलोक या गन्धर्वलोकका । इसलिये पहले स्थान ‘शरीर’ लिखा है, दूसरे स्थान ‘शरीर’ न लिखकर ‘अक्रम’ ही लिखा है । वह भी ‘पुनर्जन्म’रूप है । मृत्युके बाद जीवका इस लोकमें पुनर्जन्म तत्क्षण नहीं होता । स्वा० दयानन्दजी भी ‘सविता प्रथमेऽहन्.....’ ( यजुर्वेदभाष्य ३९ । ६ ) इस मन्त्रसे कम-से-कम बारह दिनके बाद जीवका पुनर्जन्म मानते हैं । तब जीव इतने दिनोंतक जहाँपर सूक्ष्मशरीरसे रहता है, वही ‘परलोक’ कहा जाता है । स्वामी दयानन्दजीने उसका नाम संस्कारविधि ( अन्त्येष्टिके आरम्भमें ) ‘यमालय’ माना है । यमालय वे अन्तरिक्ष ( आकाश ) में मानते हैं । तब वह जीव उपनिषदोंके अनुसार बादलोंमें, फिर वृष्टिके साथ सन्जियोंमें, फिर सन्जियोंके साथ पुरुषके शुकमें और शुकके साथ स्त्रीके गर्भाशयमें प्रवेश करके उसीसे दसवें महीने उत्पन्न होता है । तब वहाँ ‘तृणजलायुका’ न्यायका संघटन नहीं हो सकता । मरनेके बाद पारलौकिक सूक्ष्मदेह तो तत्काल ही मिल जाता है, जो परलोकमें स्थिति करानेवाला होता है । वह ‘पितृदेह’ भी हो सकता है, ‘प्रेतदेह’ भी हो सकता है और ‘देवदेह’ भी हो सकता है । अतः उक्त बृहदारण्यकका उपक्षिप्त वचन उसीमें समन्वित होता है । वह वचन मनुष्य या पशुके बेहसे विलक्षण सूक्ष्मदेहोंके लिये है । उसीकी स्पष्टता करनेवाला बृहदारण्यकका वचन उक्त वचनके आगे मिलता है, जिससे हमारा कथन स्पष्ट हो जाता है । वह है—

‘तद् यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादाय अन्यद् न-वतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं कुर्वते-पित्र्यं वा, गान्धर्वं वा, दैवं वा प्राजापत्यं वा, ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम् ।’ ( ४ । ४ । ४ )

‘जैसे सुनार सोना लेकर उसे टोंक-पीटकर उसका अन्य नया सुन्दर रूप कर दिया करता है, इसी प्रकार आत्मा इस शरीरको समाप्त करके नया कल्याणतर रूप बना लिया करता है । वह पितरोंका, या गन्धर्वोंका, या देवोंका, या प्राजापतिका, या ब्रह्माका, या अन्य भूत-प्रेत आदिका होता



है।<sup>१</sup> ये सब शरीर सूक्ष्म होते हैं। अतः पृथ्वीलोकमें नहीं रह सकते; किंतु परलोकमें रहते हैं। वहाँसे पतन होनेपर फिर मनुष्यलोकमें स्थूलशरीर धारण करते हैं। पहला 'सूक्ष्म पुनर्जन्म' था और यह 'स्थूल पुनर्जन्म' हो जाता है।

इससे मृतकोंकी जब पितृलोकमें प्राप्ति भी सूचित हो गयी; तब पित्र्य-शरीरवश उनके लिये मृतक पितृ-श्राद्ध भी प्रयोजनीय सिद्ध हो गया। पितृलोकका वर्णन यजुर्वेद-शतपथ ब्राह्मण (१४।४।३।२४; ३।७।१।२५) में स्पष्ट है। पितृ, गन्धर्व, देवता, प्रजापति—ये मनुष्ययोनिसे उन्नत योनियाँ होती हैं, जिनका वर्णन और पृथक्-पृथक् आनन्दकी मात्रा बृहदारण्यक उपनिषद् (४।३।३३) में तथा तैत्तिरीयोपनिषद् (ब्रह्मानन्दवल्ली अष्टम अनुवाक) में स्पष्ट है। इनके लिये भी पिण्डदान आदिका शास्त्रोंमें विधान है।

इससे स्पष्ट हो गया कि जीव मृत्युके बाद साधारण रूपसे पारलौकिक विविध लोकोंमें स्थित होकर, वहाँका आनन्द अनुभूत करके, तब अवशिष्ट कर्मोंसे फिर इस मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म प्राप्त करनेके लिये गर्भमें आता है। इससे पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती। यह बात वेद एवं उपनिषद्की शिक्षाके अनुकूल है। इसमें स्वर्ग-नरक आदि वादकी भी अनुकूलता हो जाती है। पितृलोक-प्राप्तिमें पितृयज्ञरूप पितृश्राद्ध उसमें सहायक होनेसे उपयोगी ही होता है। अथवा यदि जीव तत्काल ही मनुष्य-शरीर भी ग्रहण कर ले, तब उस समय भी श्राद्धादि कर्मकी व्यर्थता नहीं होती। उस समय नित्य पितर, वसु, रुद्र और आदित्य उसका फल उस जीवको मनीआर्डरकी भाँति मनुष्यलोकमें भिजवा दिया करते हैं; अथवा यदि जीव मुक्तिलोकमें गया हुआ हो, तब श्राद्ध वहाँ नहीं पहुँचता; वह श्राद्धकर्ताको ही पुनः प्राप्त हो जाता है।\* हमें जो भोजन प्राप्त हो गया है, इसे हम नहीं जान पाते कि यह हमारे कर्मोंका हमें प्राप्त हो रहा है, या हमारे पुत्रादिद्वारा दिये गये श्राद्धके फलरूपमें हमें प्राप्त हो रहा है। अथवा हम अकालके मुखमें आ पड़ें तो यह भी सम्भव हो सकता है कि—हमारे लिये हमारे गतजन्मके पुत्रादि श्राद्धकर्म नहीं करते रहे हों।

\* इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' के चतुर्थ तथा पञ्चम पुण्य देखने चाहिये।

(ख) महाभारतका जो वचन पहले दिया गया है, उसके साथवाले पद्योंको मिलाकर अर्थ करनेसे तब स्पष्टता होती है। वह यह है—

एषा तावदबुद्धीनां गतिरुक्ता युधिष्ठिर।

अतः परं ज्ञानवतां निबोध गतिमुत्तमाम्॥

(महाभारत, वन० १८३।८०)

अर्थात् साधारण गति तो मूर्खोंकी होती है; पर शानियोंकी गति यह होती है—

‘कर्मभूमिभिर्मां प्राप्य पुनर्यान्ति सुरालयम्।’

(महाभारत, ३।१८३।८५)

यहाँ कर्मभूमि इस मनुष्यलोकमें स्थित शानियोंकी देवलोक स्वर्गलोकमें प्राप्ति भी कही गयी है। आगे वहाँ ‘तेषामयं चैव परश्च लोकः।’ (९१) ‘स्वर्गं परं पुण्यकृतो निवासं क्रमेण सम्प्राप्स्यथ कर्मभिः स्वैः।’ (९६) यहाँ मनुष्यलोक तथा स्वर्गलोकका प्राप्त करना कहा है।

(ग) ‘वासांसि जीर्णानि’ इस गीताके पद्यमें भी कहा है—

‘तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही।’

(२।२२)

यहाँ नये शरीरोंमें बहुवचन होनेसे पितर आदि शरीरोंकी प्राप्ति सूचित की गयी है। वे भी लोकान्तरके शरीर ही कहे जाते हैं। जैसे कि न्यायदर्शनमें कहा गया है—

‘तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्।... आप्य तैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि’ (३।१।२८)। हाँ, उनमें पार्थिव तत्त्वकी अल्पता तथा जल, तेज, वायु तत्त्वोंकी मुख्यता होनेसे वे शरीर मनुष्य-शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म हुआ करते हैं। तभी तो भगवद्गीतामें भी कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितॄव्रताः।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

(९।२५)

यहाँपर जीवको देव, पितर, प्रेत आदि लोकोंकी प्राप्ति कही है।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।

प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

(१७।४)



यहाँ भी पूर्ववचनकी स्पष्टता है। वेदमें भी इस विषयमें स्पष्टता है—

‘पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।’

( अथर्व० १२।२।४५ )

‘अथा मृताः पितृषु सम्भवन्तु ।’

( अथर्व० १८।४।४८ )

इन मन्त्रोंमें मृतकोंकी पितृलोकमें प्राप्ति सूचित की गयी है। मृतकोंका श्राद्ध भी वेदमें सूचित किया गया है। जैसे कि—

‘जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।’

( ऋग्वेदसं० १।१६४।३० )

यहाँपर श्रीसायणाचार्यने व्याख्या की है—

‘मृतस्य शरीरस्य सम्बन्धी जीवः; मर्त्येन—मरणधर्मकेन शरीरेण सयोनिः पूर्वं समानोत्पत्तिस्थानः। यद्यपि जीवस्य न जन्मास्ति, तथापि वपुषस्तत्सद्भावात् तत्सम्बन्धेन उपचर्यते। तदेवाह अमर्त्यः—अमरणस्वभावः। ‘जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते, न जीवो म्रियते।’ ( छान्दोग्योपनिषद् ६।११।३ ) इति श्रुतेः। उक्तस्वभावो जीवः स्वधाभिः चरति—पुत्रकृतैः स्वधाकारपूर्वकदत्तैः अन्नैः चरति—वर्तते इत्यर्थः।’

‘मृतकका जीव जिसका पहले शरीरसम्बन्धसे जन्म उपचारभावसे कहा जाता है; वस्तुतः अमरणस्वभाववाला जीव पुत्रसे दिये हुए स्वधात्र ( श्राद्ध ) से तृप्त हो जाता है।’

फलतः जीवके परलोक प्राप्त होनेपर भी पुनर्जन्मवादमें कोई भी अनुपपत्ति नहीं आती। परलोकमें फल अनुभव करके जीव अवशिष्ट कर्मवश फिर मनुष्यलोकमें वापिस आता है।

( झ ) क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति

कर्मवश जीव स्वर्गादि परलोकमें जाता है और वहाँ सुख-दुःखका अनुभव करके तब मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेता है। उसमें कारण यह है कि स्वर्गादि स्थान भोगस्थान हैं। उनमें इस लोकमें किये हुए कर्मोंके भोगार्थ जीव जाता है। वहाँ वह कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये स्वर्गमें गये हुए जीव ‘देवयोनि’ बने हुए ‘भोगयोनि’ ही माने जाते हैं। तब कर्मफलकी समाप्तिमें थोड़े शेष कर्मोंको

लिये जीव पुनः कर्म करनेके लिये इस लोकमें आता है और मनुष्य बनता है। मनुष्य ‘कर्मयोनि’ माना जाता है।

कर्मफल भोगकर स्वर्गसे गिरकर इस लोकमें आना भगवद्गीतामें भी कहा है—‘ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।’ ( ९।२१ ) इससे पूर्व वहाँ कहा है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गंति प्रार्थयन्ते ।  
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥  
( ९।२० )

यह आशय है कि ‘जीव यज्ञादि-कर्मोंसे स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। वहाँ देवता बनकर दिव्य भोगोंको भोगते हैं। फिर पुण्यके समाप्त हो जानेपर स्वर्गसे गिरकर इस मनुष्य-लोकको प्राप्त होते हैं।’ यही बात उपनिषदोंमें भी कही है—

‘तद् यथा इह कर्मजितो लोकः क्षीयते, एवमेव अमुत्र [ परलोके ] पुण्यजितो लोकः [ स्वर्गः ] क्षीयते ।’ ( छान्दोग्य० ८।१।६ )। यहाँ स्वर्गकी क्षीणताका तात्पर्य स्वर्गसे गिरकर फिर मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेनेमें है।

इसी प्रकारका वचन मुण्डकोपनिषद्में भी मिलता है—  
‘इष्टापूर्तं (यज्ञादिकं) मन्यमाना वरिष्ठं..... यज्ञादिभिः ( प्रासस्य ) नाकस्य [ स्वर्गलोकस्य ] पृष्ठे ते [ जीवाः ] सुकृते [ पुण्यलभ्ये ] अनुभूत्वा इमं [ मानुषम् ] लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।’ ( १।२।१० )

यहाँ भी कर्मयोनि मनुष्योंके फलभोगके लिये स्वर्गगमन कहा है; तब वे भोगयोनि देव होकर, कर्म समाप्तप्राय हो जानेपर स्वर्गलोकसे गिरकर फिर इस मनुष्यलोकमें आ जाते हैं और कर्मयोनि होकर कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं। यही बृहदारण्यक उपनिषद्में भी कहा है—

‘प्राप्य अन्तं कर्मजः [ स्वर्गलोकमें कर्मफल प्राप्त करके ] तस्य यत् किंच [ कर्म ] इह [ इस मनुष्यलोकमें ] करोति अयम् [ कर्मयोनिर्मनुष्यः ]; तस्मात् [ स्वर्गात् ] लोकात् पुनरोति अस्मै लोकाय [ अस्मिन् मनुष्यलोके ] कर्मणे [ कर्म कृतम् ] ।’ ( ४।४।६ )

यहाँ भी पूर्व-जैसा भाव है। स्वर्गलोकमें देवता बनता है—

‘दिवि देवाः’ ( अथर्ववेदसं० ११।७।२३ )। ‘देवा वै नाकसहः’ ( शतपथ ब्रा० ८।६।१।१ )। ‘द्यौर्वै सर्वेषां



देवानामायतनम्' ( शत० १४ । ३ । २ । ८ ) । स्वर्ग जब परलोक है, इस लोकसे भिन्न है, तब स्वर्ग 'सुख' का पर्यायवाचक नहीं—'पुनर्त्तु स्वर्गसुखं विप्र लोका नानाविधास्तथा ।' ( महा०, वन० २६१ । २७ ) यहाँ स्वर्ग का सुख कहा है । यदि स्वर्ग 'सुख' का पर्यायवाचक होता, तो 'स्वर्ग-सुखम्' में पुनरुक्ति या व्यर्थता होती । 'न स्वर्गेण सुखेन वा' ( महा०, वन० २६१ । ४२ ) यहाँ भी स्वर्ग और सुख दोनोंको भिन्न-भिन्न बताया गया है; अतः स्वर्गलोक इस लोकसे भिन्न ही सिद्ध हुआ । इसलिये अथर्ववेद-संहितामें—

'पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्, अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ग्योत्तरिगामहम् ।' ( ४ । १४ । ३ )

यहाँ दुलोक, जिसके पृष्ठपर स्वर्गलोक है, पृथिवीलोकसे भिन्न माना गया है । उसीमें देवता रहते हैं । इससे सिद्ध होता है—मनुष्य 'कर्मयोनि' है और देवता केवल 'भोगयोनि' । यदि देवता भी कर्मयोनि होते तो उन्हें कर्म करनेके लिये फिर इस लोकमें आना न पड़ता ।

कर्मोंका फल जो स्वर्ग कहा है, उसमें 'कर्म' यज्ञादि समझना चाहिये । इसी कारण वेदमें कहा है—'यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्' ( अथर्ववेद-सं० १८ । ४ । २ ) ( ईजानाः—यज्ञ करते हुए ) । 'स्वर्गकामो यजेत'—यह वचन भी दर्शनमें सुप्रसिद्ध है । तब यज्ञके कर्म होनेसे और कर्मोंके सीमित होनेसे उससे प्राप्त स्वर्गके भी सीमिततावश क्षयी होनेसे 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।'—यह पूर्वोक्त गीता-वचन संगत हो जाता है । 'गतागतं कामकामा लभन्ते ।' ( गीता ९ । २१ )—इस वचनमें 'गमनागमन' कहनेसे 'पुनर्जन्म' भी सिद्ध हो गया ।

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि 'काम' ही कर्म है; काम न होनेपर कर्म भी 'अकर्म' होता है । कामना न होनेपर कर्म न रह जानेसे 'मुक्ति' कही गयी है । कामना होनेपर कर्म रह जानेसे उन कर्मोंके क्षयी तथा सीमित होनेसे स्वर्ग भी क्षयी होता है । कामनाके अभावमें अभावके नित्य होनेसे कर्माभावसे होनेवाली मुक्ति भी नित्य हुआ करती है ।

तब मुक्ति हो जानेपर तो पुनर्जन्ममें अवश्य अन्तराय हुआ करता है, परंतु स्वर्गादि परलोक प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म स्वतः सिद्ध है; उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि

उसमें मुक्तिकी भाँति सदाके लिये निवास नहीं रहता; अतः इस विषयमें जो कि कई व्यक्तियोंको संदेह हुआ करता है, उसका कारण यह है कि उन्होंने स्वर्ग-नरकमें भी जीवका मुक्तिकी भाँति सदा निवास मान रक्खा है; पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । मुक्तिको छोड़कर अन्य लोक-लोकान्तरोंमें जानेसे तो पुनर्जन्मकी सिद्धि हुआ करती है । पर मुक्ति परम कठिन है, प्रत्येकको प्राप्त नहीं हो सकती; अतः पुनर्जन्म सर्वसाधारण है । पुनर्जन्मवाद एवं स्वर्ग-नरकादि माननेसे ही पुरुषोंको पुण्यके लिये प्रोत्साहन तथा पापसे घृणा-भीति उत्पन्न होगी; पर नास्तिकतावाद माननेसे तो पापकी भारी वृद्धि होगी; उसीसे संसारमें अव्यवस्था फैलेगी । इसीलिये लोगोंका कल्याण मानकर 'कल्याण'ने 'पुनर्जन्म'में वास्तविकता बताकर जगत्में व्यवस्था लानेका अनुकरणीय प्रयास किया है । पुनर्जन्मकी घटनाएँ आये दिन समाचारपत्रोंमें निकला करती हैं । उनमें अनुसंधानसे सत्यता सिद्ध हुई है; अतः पुनर्जन्मवाद जहाँ शास्त्रीय है । वहाँ प्रत्यक्ष सिद्ध भी है ।

### ( व ) परलोकविद्या

हिंदुओंद्वारा मृतकोंका श्राद्ध-तर्पण देखकर वैदेशिक वैज्ञानिकोंका इधर ध्यान गया । उन्होंने उसका परीक्षण प्रारम्भ कर दिया । उससे उन्हें प्रतीत हुआ कि मरा हुआ व्यक्ति अभावको प्राप्त नहीं हो जाता, किंतु मरनेके बाद उसकी स्थिति परलोकमें हो जाती है । उत्तम माध्यमद्वारा हम उससे सम्बन्ध करके उससे लाभ ले सकते हैं । हमारे भारतीय पुरुषोंका भी इधर ध्यान गया और इसमें उन्होंने भी पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली । वैदेशिक लोग सब परीक्षणोंमें अपना ही दृष्टिकोण रखते हैं । उन्हें ऐसा आभास हुआ कि मृतकका जीव सदा परलोकमें ही रहता है; उसका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता । पर पुनः-पुनः अवगाहनसे कई वैदेशिक भी अब परलोकगतका इस लोकमें 'पुनर्जन्म' भी मानने लग गये हैं ।

सबकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । वैदेशिकोंने मृतकोंके आकर्षणार्थ अपने ढंगके उपाय जारी किये । हमारे पूर्वजोंने कुश, मधु, तिल, गङ्गाजल, तुलसीपत्र, चावलोंके पिण्ड आदिका मृतकोंके जीवके आकर्षणार्थ उपयोग कर रक्खा है । अब इनका भी यन्त्र बनाकर निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिये । हमारे पूर्वजोंकी प्रायः सभी बातें परीक्षण-निरीक्षण करनेपर सत्य सिद्ध हुई हैं ।



अब इस परलोकविद्याका अपलाप नहीं किया जा सकता। अभिज्ञान इसमें उद्यत हो रहे हैं। इस विद्यासे कई लाभ होनेकी सम्भावना है। वह यह कि हम स्थूल-शरीरी होनेसे सीमित शक्तिवाले हैं; पर मृतक पुरुष स्थूल-शरीर छूट जानेसे पारलौकिक दिव्य सूक्ष्मशरीर मिलनेसे अलौकिक शक्तिशाली होते हैं। उनसे सम्बन्ध स्थापित करके हम उस लोकोत्तर शक्तिका लाभ उठा सकते हैं। घड़ेमें ढके दीपककी प्रकाशन-शक्ति सीमित होती है। घड़ेसे बाहर ठहरे दीपककी प्रकाशन-शक्ति अधिक रहा करती है। हम भी स्थूल शरीराच्छन्न होनेसे उस घड़ेमें रखे दीपककी तरह हैं और परलोकप्राप्त पुरुष उसके अपवाद हैं। आत्माके न्यायादि शास्त्रसम्मत विभुत्वका वही उपयोग ले सकते हैं।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति बहुत बीमार है। हम उसका उपचार करके भी उसे स्वस्थ नहीं कर सके। उस समय यदि हम परलोकस्थ आत्मासे सम्बन्ध करके उससे उसकी दवाइयाँ पूछें, तो अधिक ज्ञानशाली होनेसे उनसे बतायी गयी दवाइयाँ सम्भवतः उस बीमारके लिये हितकारक सिद्ध होंगी। इस प्रकारकी परलोकस्थ आत्माओंसे बतायी गयी दवाइयाँ प्रायः सफल सिद्ध भी हो चुकी हैं।

जब परलोकप्राप्तके हस्ताक्षर मिल जाते हुए देखे गये हैं; उनकी बतायी गुप्तधन गड़नेकी बातें मिल गयी हैं; उनके छाया-चित्र गृहीत हो जाते हैं; तो इस विद्यामें उन्नति करके हम कई लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस विषयमें श्रद्धा करनेसे 'श्रद्धया सत्यमाप्यते।' (यजुर्वेद १९। ३०) 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' (गीता ४। ३९) हमें सत्य एवं ज्ञानकी प्राप्ति होगी। हमारे प्राचीन लोग भी मृतक व्यक्तिका परलोकमें निवास और उसका आह्वान भी मानते थे। लङ्का-विजयके बाद अग्नि-शुद्धिके समय परलोकसे आये हुए राजा दशरथने भी सीताकी शुद्धिमें साक्षा दी थी।

इस विषयमें यह एक बड़ा लाभ मिलेगा कि फिर 'मृत्युभय' छूट जायगा। अन्य लाभ यह होगा कि हमारा मृतक-सम्बन्धी, जिसे हम सदाके लिये बिछुड़ गया समझते हैं, फिर हम उसे अपने निकट पायेंगे। फिर मृतकका श्राद्ध-तर्पण भी प्रत्यक्षानुगृहीत हो जायगा। इस परलोकविद्याकी उन्नति हो जानेपर हम स्वर्गीय देवताओंसे भी बातचीत कर सकेंगे।

कई शार्मिक प्राचीन बातें वर्तमानमें प्रचलित न होनेसे

बुद्धयग्राह्य मालूम पड़ती हैं, पर हमारे श्रुति-मुनि बहुशये। उनकी बातें अब विज्ञान-सिद्ध सिद्ध हो रही हैं।

हमारी अपेक्षा पितरोंमें अधिक शक्ति रहती है। उनकी अपेक्षा देवताओंमें अधिक शक्ति होती है। देवता-विषय बहुत जटिल है, यह ठीक है। आरम्भमें पितृ-विषय भी बहुत जटिल था। पितरोंका आह्वान तथा आकर्षण एवं उनका यहाँ आगमन और संवाद तथा उनसे हमारा संरक्षण होता है—यह बात बहुत लोग नहीं मानते थे। इतिहास-पुराणमें मृतक दशरथ आदिका इस लोकमें आनेका वर्णन आता है। योगदर्शनके व्यासभाष्यमें भी 'पितॄन् भतीतान् अकस्मात् पश्यति।' (३। २२) में भी यह संकेत आया है। अनुसंधाता लोगोंकी गवेषणाओंसे यह विषय समूल सिद्ध हो रहा है। बहुत कुछ सफलता भी इस विषयमें प्राप्त हो चुकी है; तब आगे अनुसंधाताओंका देवतावादकी ओर भी ध्यान बढ़ेगा।

शास्त्रानुसार पितृगण चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहते हैं। चन्द्रग्रहकी कक्षा सब ग्रहोंसे नीचे और भूमण्डलके निकट है। तभी भूमण्डलके निवासी उसके साथके ठहरे चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहनेवाले पितरोंका यथाशक्ति आह्वान या आकर्षण करनेमें शीघ्र सफल हो गये हैं।

वेदमें भी 'आ वन्तु नः पितरः' (यजु० १९। ५८) इत्यादि मन्त्रोंसे पितरोंका आह्वान तथा 'अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तः।' से तृप्ति 'अधि ब्रुवन्तु' से पितरोंका हमें उपदेश वा संवाद, 'ते अवन्तु अस्मान्' से हमारी पितरोंद्वारा 'पान्ति रक्षन्ति इति पितरः' इस व्युत्पत्तिसे हमारे किसी बीमार आदिके स्वास्थ्यकी, (उत्तम औषधि बताकर) रक्षा करना प्रसिद्ध है।

पितरोंके आकर्षणपर आर्यसमाजी विद्वान् श्रीरघुनन्दन शर्माने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक-सम्पत्ति' (प्र० सं०) के ३७१ पृष्ठपर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

'प्रश्न यह है कि चन्द्रलोकसे जीवोंको किस प्रकार खींचा जाय। जीवोंके खींचनेका वही तरीका है, जो सूर्यकान्तमणिके द्वारा सूर्यताप खींचनेमें और चन्द्रकान्तमणिके द्वारा चान्द्र-जलके खींचनेमें प्रयुक्त किया जाता है। जिस प्रकार चन्द्र-कान्तके प्रयोगसे चान्द्रजलकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार चान्द्र-पदार्थोंको एकत्रित करनेसे चान्द्रवीर्य भी आकर्षित होता है। चान्द्रवीर्यमें ही जीव रहते हैं; इसलिये उन



पदार्थोंमें खिंच आते हैं, जो चन्द्राकर्षणके लिये विविधे एकत्रित किये जाते हैं। वे पदार्थ—दूध, घृत, चावल, मधु, तिल, रजतपात्र, कुश [ तुलसीदल ] और जल हैं। यह प्रक्रिया शरत्पूर्णिमाके दिन लोग करते हैं; परंतु विधिपूर्वक क्रिया तो पितृश्राद्धके समय ही होती है। पितृश्राद्ध अपराह्नके समय होता है। उसमें दूध, घृत, मधु, कुश आदि सभी पदार्थ रखे जाते हैं। पितरोंका प्रतिनिधि पुत्र अथवा पौत्र भी उन पदार्थोंको छूता हुआ वहींपर बैठता है। इसलिये यह सब हवि आदि सामग्री उसी प्रकारका यन्त्र बन जाती है, जिस प्रकार चन्द्रमणि। इसीमें पितर खिंचकर आते हैं—

‘परा यात पितरः सोम्यासः ।’

( अथर्ववेद १८।४।६३ )

भूमण्डलके निकट होनेसे ही वैज्ञानिक लोग भी राकेट आदिसे चन्द्रलोककी यात्रा करनेकी चेष्टा करते हैं, पर देवता ब्रुलोकके अन्य विभागोंमें रहा करते हैं। वे पितरोंकी अपेक्षा हमसे बहुत दूर हैं। हमारा एक मास पितरोंका दिन-रात होता है। हमारा एक वर्ष देवताओंका दिन-रात होता है। परंतु यदि हमारा विज्ञान बढ़ता गया तो हम पितरोंकी भाँति देवताओंके भी निकट हो जायेंगे। कुन्तीको हुर्वास मुनिसे दिये हुए मन्त्रोंसे सूर्य, यम, वायु, इन्द्र, अश्विनी-कुमार—ये देवता आये थे, यह प्रसिद्ध ही है।

पुराण-इतिहासमें भी जो देवताओंका भूलोकमें आना बताया गया है, वह इसी बातको सिद्ध करता है कि हमारे पूर्वजोंको देवताओंको बुलानेकी विद्या भी ज्ञात थी। हमारे राजा दशरथ आदि रथोंद्वारा देवलोकमें भी जाया करते थे। अब यदि प्रयत्नसे पितृवाद कुछ सुलझ गया है; तब समयपर देवतावाद भी सुलझ जायगा।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथि-भिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु । तेऽवन्तु अस्मान् ।

( यजुर्वेद-सं० १९।५८ )

—इस मन्त्रसे मालूम होता है कि पितरोंको स्वधासे तृप्त करनेका विचार करनेसे ही वे हमारे आह्वानपर हमारे यहाँ आते हैं और वे हमसे संवाद करते हैं और हमें उत्तम उपाय बताकर ‘पितृ’ नामको ( पाति रक्षति इति ) सार्थक करते हुए हमारी रक्षा भी करते हैं। इस अवसरपर माध्यम भी उत्तम होना चाहिये। श्राद्ध भी पूर्व समयमें उन्हीं माध्यमोंके प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक ब्राह्मणोंको खिलाया जाता

था। श्राद्धविधिके अनुसार सुचरित्र, वेदादि शास्त्रोंका विद्वान्, बहुभाषाप्रवीण, पितृकर्मनिष्णात ब्राह्मण माध्यम रखा जाय। इस कर्ममें मृतकके पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रका सम्पर्क अवश्य होना चाहिये। उन्हें श्रद्धालु भी होना चाहिये।

पितरोंके आह्वानके समय अमावास्या आदि तिथिका नियम, अपराह्नकाल, यज्ञोपवीतके दक्षिण स्कन्धमें करनेका नियम, तिल, घृत, मधु, तुलसीदल, गङ्गाजलयुक्त ओदनका तथा रजतपात्रका उपयोग भी शास्त्रानुकूल अनुसृत किया जाना चाहिये। हाँ, आश्विनके दिनोंमें मृतककी मृत-तिथिके अनुसार भी पितरोंका आह्वान हो सकता है, अथवा क्षयाहवाले दिन भी मृतकका आह्वान हो सकता है। उसका कारण यह है कि पितृलोक चन्द्रलोकपर है। आश्विनके दिनोंमें चन्द्रमा अन्य मासोंकी अपेक्षा पृथिवीके अधिक निकट होता है, इसलिये उसकी आकर्षण-शक्तिका प्रभाव पृथिवी तथा उसमें स्थित देहधारियोंपर विशेष रूपसे पड़ता है। तब चन्द्रलोकस्थित पितरोंका भी हमसे सम्बन्ध होकर परस्पर आदान-प्रदान होता है। क्षयाहकी तिथिमें वे पितर सीधे उसी मार्गमें होते हैं; क्योंकि तिथि चन्द्रगतिके अनुसार हुआ करती है और उस स्थितिमें वे पितर उसी मार्गमें हुआ करते हैं, जिस तिथिमें वे मृत्यु प्राप्त करके उस स्थानमें प्राप्त हुए थे।

कृष्णपक्षमें पितरोंके आह्वानका कारण यह होता है कि उस समय सूर्य उनके निकट होनेसे वह उनका दिन होता है, अमावास्या उनका मध्याह्न होती है। जब पितरोंका निद्रा-समय हो, ( शुक्लपक्षकी दशमीसे कृष्णपक्षकी सप्तमीतक ) उस समय पितरोंका आह्वान नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय वे बिना आश्विनमासके अन्य मासमें संवाद नहीं करना चाहते, उस समय कई अन्य भूत-प्रेतादि ही हमसे संवाद कर रहे हों, यह सम्भव होता है। तीन पीढ़ीसे अधिकके पितरोंको भी संवादके लिये नहीं बुलाना चाहिये; क्योंकि वे उस समय चन्द्रलोकसे ऊपरके लोकमें चले जाते हैं। पितृकोटिमें न रहकर देवकोटिमें चले जाते हैं। उन्हें बुलानेके लिये शास्त्रीय अन्य उपाय करने पड़ेंगे। कई मृतक तो आरम्भमें ही पितृकोटिमें न जाकर परलोकके निम्नस्तर नरकादि लोकोंमें अथवा भूत-प्रेतादि योनिमें चले जाते हैं, जहाँ उन्हें बहुत अशान्ति रहती है।

हमारे पूर्वज जिस बातको आध्यात्मिक प्रकारसे तथा मन्त्रशक्तिके करते थे, पाश्चात्य वैज्ञानिक उसी बातको



आधिभौतिक प्रकारसे तथा यन्त्रशक्तिसे करते हैं। पहले प्रकारका अवलम्बन करनेपर शास्त्रोंपर दृढ़ निष्ठा बनी रहती है; श्रद्धा-विश्वास बना रहता है; आस्तिकता बनी रहती है। अतः हमें इधर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

फलतः परलोकविद्या अवश्य है, पुनर्जन्म भी अवश्य है। यह सब सुकर्म-दुष्कर्मके फल हैं। जो इन वादोंपर हृदयसे आस्था रखते हैं; वे असत्य, कपट, चोरी, ठगी, बेईमानी आदि दुष्कृत्य नहीं करते; पर परलोकसे डरनेवाले लोग, पुनर्जन्म और परलोक एवं कर्मफलमें विश्वास रखनेवाले, धर्मपरायण, निर्लोभ, प्रायः निःस्वार्थ, परोपकार-परायण,

पुण्यनिरत रहा करते हैं। आजकल कई लोग आडम्बरसे तो 'पुनर्जन्म' मानते हैं; पर वेद-शास्त्रादिमें छल, अर्थका अनर्थ आदि करके, स्वविरुद्ध शास्त्रीय सिद्धान्तोंमें प्रक्षेप बताकर ऋषि-मुनियोंके अनभीष्ट अर्थ करके परमेश्वर या परलोकसे डर नहीं रखते; उन्हींके लाभार्थ 'कल्याण' ने इस विशेषपाङ्कसे जनताकी सेवा की है। आशा है जनता भी इसका प्रचार करके हिंदू-धर्मको गौरवमय पद प्रदान करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखेगी। यह विषय हमारी 'श्रीसनातनधर्मालोक ग्रन्थमाला' के विभिन्न पुष्पोंमें देखना चाहिये।\*

( जन्माष्टमी सं० २०२५ )

## पुनर्जन्म: एक दार्शनिक विवेचन

( लेखक—पण्डित श्रीजनार्दनजी मिश्र, पट्टज, शास्त्री )

[ पृष्ठ २०० से आगे ]

कई नास्तिकोंका कहना है कि 'जबतक शरीर है, तभीतक इसमें चेतन आत्माकी प्रतीति होती है, शरीरके जला या दफना दिये जानेपर आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है; अतः शरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है। अतएव मरणके पश्चात् परलोककी यात्रा अथवा ब्रह्मलोकदिमें पहुँचकर मुक्त हो जानेकी बातें असंगत हैं।' ( चार्वाक दर्शन ) उनके कथनका वेदान्तने युक्तियुक्त खण्डन किया है। शरीर ही आत्मा है और पुनर्जन्म नहीं होता—यह कथन ठीक नहीं, गुमराह करनेवाला है। किंतु शरीरसे भिन्न, शरीर आदि पञ्चभूतों तथा उनके कार्योंको जाननेवाला, द्रष्टा या साक्षी आत्मा अवश्य है। सांख्योक्त सूत्र—'देहादिष्वतिरिक्तोऽसौ।' से यह सिद्ध होता है; क्योंकि मृत्युकालमें शरीर हमारे-आपके सामने निश्चेष्ट पड़ा रहता है, तो भी उसमें सब पदार्थोंको जाननेवाला चेतन आत्मा नहीं रहता। अतः जिस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि शरीरके रहते हुए भी उसमें जीवात्मा नहीं रहता, इसी प्रकार यह भी मान लेना होगा कि शरीरके न रहनेपर भी आत्मा रहता है। वह इस स्थूलशरीरमें नहीं तो अन्य ( सूक्ष्म व लिङ्ग ) शरीरमें रहता है। अतः दर्शन-शास्त्रका यह कथन कि लिङ्गनाश होनेपर ही मुक्ति

होती है—कितना सारगर्भित एवं रहस्यमय है, यह विद्वानोंके चिन्तनका ही विषय है। अथच मृत्युके बाद भी आत्माका अभाव नहीं होता। असत्का भाव नहीं और सत्का अभाव नहीं—इस न्यायसे यह कथन सर्वथा युक्तिविरुद्ध है कि 'स्थूलशरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है।' यदि इस शरीरसे पृथक् चेतन आत्मा नहीं होता तो वह अपने तथा दूसरोंके शरीरोंको नहीं जान सकता; क्योंकि घटादि जड़ पदार्थोंमें एक-दूसरेको या अपने-आपको जाननेकी शक्ति नहीं है। अतएव जिस प्रकार सबका ज्ञाता होनेके कारण ज्ञातरूपमें आत्माकी उपलब्धि प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार शरीरका ज्ञाता होनेके कारण इस ज्ञेय शरीरसे उसका भिन्न-पृथक् होना भी प्रत्यक्ष है।

कहना नहीं होगा कि गौतमादि तार्किकोंने अपुनर्जन्मवाद नास्तिक दर्शनों तथा बाइबिल और कुरानादिकी ईश्टका जवाब पत्थरसे दिया है। इनकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल और अकाट्य हैं। न्यायदर्शनमें स्पष्ट लिखा है—

'पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः।'

( न्या० सू० ३।१।१९ )

\* 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके दस पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं; तृतीय पुष्प अब नहीं मिलता। हमारे नामसे 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमाला कार्यालय, १ बी० १९, लाजपतनगर फर्स्ट ( नई दिल्ली १४ )। इस पतेसे मँगाना चाहिये। इससे धर्मसम्बन्धी सब शङ्काओंका समाधान हो जाता है।



यहाँ एक प्रश्न उठाकर उत्तर देनेकी चेष्टा की गयी है कि नवजात शिशुओंके मुखपर जो आनन्द, भय और शोकके चिह्न देखनेमें आते हैं, उनका क्या कारण है ? ऊपरके सूत्रकी व्याख्या करते समय दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रजी कहते हैं—

‘अभिप्रेतविषयकप्रार्थनाप्राप्ता सुखानुभवो हर्षः ।  
अनिष्टविषयसाधनोपनिपाते तज्जिह्वासोर्हानाशक्यता भयम् ।  
इष्टवियोगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थना शोकः । तदनुभवः  
सम्प्रतिपत्तिः । प्रत्यक्षबुद्धिनिरोधे तदनुसंधानविषयः  
स्मृतिः । अनुबन्धो भावनास्मृतिहेतुः संस्कारः ।’

( न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका )

भावार्थ—“अभीष्ट विषयकी पूर्ति होनेपर ‘हर्ष’ होता है । अनिष्ट विषयकी उपस्थिति हो जानेपर, उसे दूर करनेकी इच्छा होनेपर भी दूर नहीं कर सकनेपर ‘भय’ होता है । इष्टके वियोगसे ‘शोक’ होता है । इन्हींका प्रत्यक्ष अनुभव ‘सम्प्रतिपत्ति’ कहलाता है । अतीत अनुभवके अनुसंधानको ‘स्मृति’ कहते हैं और स्मृतिका कारणस्वरूप संस्कार ही ‘अनुबन्ध’ कहलाता है ।”

अब स्पष्ट समझ लीजिये कि हर्ष, भय, शोककी उत्पत्तिका कोई-न-कोई कारण तो होगा ही । अथच सद्योजात शिशुकी मुखाकृतिपर प्रकट और लुप्त होनेवाले हर्ष, भय, शोकादि विकारोंका एकमात्र कारण पूर्वजन्मका अभ्यास ही है । यह पूर्वस्मृति एवं तज्जन्य संस्कार ही है, जिससे बालखिल्यों ( छोटे-छोटे बच्चों ) के मुखपर हर्ष, भय और शोकके लक्षण उदित होते रहते हैं ।

बहुत सम्भव है, अपुनर्जन्मवादी यहाँ एक शङ्का खड़ी कर दें और अपनी दलीलमें कह दें कि ‘बच्चोंका यह हँसना, रोना, किलकारियाँ भरना आदि प्राकृतिक हैं । जिस प्रकार कमल तालाबमें मुसकरा उठते हैं और संध्या समय सगुणित हो जाते हैं, अथच इसे क्यों न ‘आकस्मिकवाद’ मान लिया जाय ?’ उपर्युक्त आक्षेपके उत्तरमें न्याय-सूत्रकारने अपना दूसरा सूत्र सामने रख दिया है—

‘नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम् ।’

( न्या० सू० ३।१।२१ )

कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कमलके विकास तथा संकोचवाले इस उदाहरणसे भी ‘आकस्मिकवाद’ की सिद्धि नहीं होती । इसलिये कि पञ्चभूतों ( पृथ्वी, जल,

अग्नि, वायु तथा आकाश ) से बनी वस्तुओंमें जो विकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, उनके कारण ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत हैं । विशेष कारणके बिना उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं । अथच शिशुके मुखपर जो भिन्न-भिन्न विकार या लक्षण परिलक्षित होते हैं, उनके लिये कुछ-न-कुछ कारण तो मानना ही पड़ेगा । यही विशेष कारण ‘पूर्वजन्माभ्यास’ है । यही कारण है कि जन्म लेते ही शिशुकी जननीके स्तन्यपानकी ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति जग जाती है । लिखा भी है—

‘प्रेत्याऽऽहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ।’

( न्या० सू० ३।१।२२ )

अर्थात् ‘सद्योजात शिशुको माताका स्तन चूसना बतलानेवाला गुरु उसका पूर्वजन्मका अभ्यास ही है ।’ ऊपरके सूत्रका भाष्य करते हुए वात्स्यायनने लिखा है—

‘जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिलिङ्गः स्तन्याभिलाषो गृह्यते । स च नान्तरेणाहाराभ्यासम् ।’ ‘तेनानुमीयते भूतपूर्व शरीरं यन्नानेनाहारोऽभ्यस्त इति । स खल्वयमात्मा पूर्व-शरीरात् प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः क्षुत्पीडितः पूर्वामाहारमभ्यस्त-मनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति ।’ ( वा० भा० )

भावार्थ—‘जन्म लेते ही बच्चेमें माताके स्तनोंको चूस-चूसकर दूध पीनेकी प्रवृत्ति देखी जाती है । दुग्धपान ( भोजन ) की ऐसी अभिलाषा पूर्वाभ्यासके बिना कदापि सम्भव नहीं । इसीसे अनुमान होता है कि वही आत्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आकर पूर्वाभ्याससे प्रेरित भूख लगनेपर दूध पीनेमें प्रवृत्त होता है ।’

नास्तिकवादने आगे चलकर फिर दूसरा आक्षेप किया है । उसका कहना सम्भवतः यदि ऐसा हो—

‘अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम् ।’

( न्यायसूत्र ३।१।२३ )

अर्थात् ‘जिस प्रकार लोहा स्वभावतः ( बिना किसी अभ्यासके ) चुम्बककी ओर खिंच जाता है, उसी प्रकार शिशु भी स्वभावतः ( न कि पूर्वाभ्यासवशातः ) दुग्धपानकी ओर प्रवृत्त होता है ।’

इस युक्तिका उत्तर नैयायिक गौतमने जिस प्रबल युक्तिसे दिया है, वह विचारणीय है ।

‘नान्यत्र प्रवृत्त्यभावात् ।’ ( न्या० सू० ३।१।२४ )



—वस्तुतः ऐसा आक्षेप निःसार है—तथ्यहीन है। इसलिये कि लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होता है, अन्य वस्तुओंसे नहीं। इससे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि कारण-कार्यका सम्बन्ध नियमित है—विनिश्चित है और उसमें अन्यथा भी नहीं हो सकता। माताके स्तनोंको चूसनेवाले बालकका स्तन्यपान सकारण है—आकस्मिक नहीं। न्यायसूत्रमें महर्षि गौतमने प्रमेयोंके अन्तर्गत बारह पदार्थोंके नाम दिये हैं। जैसे—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), फल, दुःख और अपवर्ग। प्रेत्यभावका अर्थ है—

‘प्रेत्य मृत्वा भावो जननम् इति प्रेत्यभावः।’

“मृत्युके पश्चात् पुनः जन्म लेना ही ‘प्रेत्यभाव’ है।” अर्थात् प्रेत्यभाव पुनर्जन्मका ही पर्याय है। ‘तर्कदीपिका’में लिखा है—

‘मरणोत्तरं जन्म प्रेत्यभावः।’ अर्थात् मृत्युके अनन्तर जन्म लेना ही ‘प्रेत्यभाव’ है। न्यायसूत्र (१।१।१९) में सूत्रकारने कहा है—‘पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।’—अर्थात् मरणके उपरान्त पुनः उत्पन्न होना ही ‘प्रेत्यभाव’ है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार—‘उत्पन्नस्य सम्बद्धस्य सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिः, पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः।’

शरीरान्तरके साथ-ही-साथ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और संस्कारोंसे युक्त होना ही ‘प्रेत्यभाव’ है।

श्रीमद्भगवद्गीताके १५वें अध्यायमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका वचन है—

शरीरं यद्वान्मोति यच्चाप्युत्क्रामतीधरः।

गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाकायात् ॥

अर्थात् ‘जब यह जीवात्मा शरीर धारण करता है और जब इसे छोड़ देता है, वह इन्हें इस प्रकार ले जाता है जैसे वायु अपने साथ गन्ध लिये जाती है।’ कहना नहीं होगा कि वायुका एक दूसरा नाम ‘गन्धवह’ भी है। उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर शरीरान्तर धारण करनेवाला यह जीव भी कान, आँख, स्पर्श, रसना (जीभ), घ्राण (नाक) तथा छठे मनकी सूक्ष्मशक्तिको साथ लेकर चलता है और उनके द्वारा विषयोंका उपसेवन करता है।

न्याय तथा अपर दार्शनिक ग्रन्थोंके मतानुसार मृत्युसे स्थूलशरीरका अवसान तो हो जाता है; आत्माका विनाश

नहीं होता। हाँ, प्राचीन शरीरके साथ अलवृत्ता उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। तदनन्तर नवीन देह धारण करना ही ‘प्रेत्यभाव’ अथवा ‘पुनर्जन्म’ है। पुनर्जन्मकी पुष्टिके लिये न्यायसूत्रकारने एक-से-एक बढ़कर युक्तियोंका सहारा लिया है। उनका एक सूत्र है—

‘वीतरागजन्माऽदर्शनात्।’ (न्या० सू० ३।१।२५)

इसका अभिप्राय यह है कि ‘वीतरागपुरुषका जन्म नहीं होता।’ इससे सिद्ध हो जाता है कि रागी या रागयुक्त पुरुषका ही पुनर्जन्म होता है। राग क्या है? पूर्वानुभूत विषयोंका चिन्तन। और यही चिन्तन रागका कारण है। पूर्वजन्ममें अनुभूत भोग-विषयोंको याद करके ही जीव पुनः पुनरपि विषयोंमें आसक्त होता है और पूर्ववत् आचरण करने लगता है। बस, जन्मना कर्म तथा कर्मणा जन्मका ताँता लग जाता है।

ऐसी अवस्थामें ‘योगभ्रष्ट’—अपरिपक्वप्राय पुरुषोंको भी ‘पुनर्जन्म’ लेना पड़ जाता है। गीतामें अर्जुनका प्रश्न है कि ‘योगसे विचलित तथा अप्राप्त योग-संसिद्धि पुरुषोंकी क्या गति होती है?’ धनञ्जयकी इस शङ्काके उत्तरमें (गीता ६।४०-४१) भगवान् दृष्टीकेशने कहा है कि ‘ये योग-विचलित पुण्यात्माओंके लिये सुरक्षित लोकोंमें अनेक वर्षोंतक वास करके पुनः पवित्र ब्राह्मण अथवा राजकुलमें जन्म लेते हैं।’

गीतामें एक बात बड़े मार्केकी है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि ‘दे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से—न जाने कितने जन्म इससे पूर्व भी हो चुके हैं। मुझे तो वे सभी जन्म याद हैं, लेकिन तुझे एक भी याद नहीं।’ (गीता ४।५) यहाँ यह शङ्का स्वाभाविक है कि अपने विगत जन्मोंका स्मरण सभीको क्यों नहीं रहता? इस शङ्काके निराकरणके लिये दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रने अपनी ‘न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका’में लिखा है कि ‘पूर्वाभ्यासे ही जीवनका स्मृति-संस्कार बनता है—यह एक अनुभव-सिद्ध बात है।’ किसी भी शिशुमें पूर्वसंस्कारजनित प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, उसीसे उसके पूर्वजन्मका अनुमान होता है। फिर क्या कारण है कि उसे पूर्वजन्मकी बातोंकी याद नहीं रह जाती? इसका उत्तर यही है कि ‘अदृष्टका परिपाक जितना संस्कार उद्बोधित करता (जगाता) है, उतनी ही स्मृति उद्बुद्ध हो सकती है।’ ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक बात यदि स्मृति-पटलपर अङ्कित हो जाय



तो सारी बातें भी अङ्कित ही हो जायँगी। शरीरान्तर-प्राप्ति होनेपर केवल प्रबलतम संस्कार ही सूक्ष्मरूपसे पुनरुत्पन्न होता है।

इस विषयमें पातञ्जलयोगदर्शनमें एक सूत्र आया है—

‘संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।’

( योगदर्शन, विभू० पाद, सू० १८ )

भावार्थ—‘संस्कारके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।’ संस्कार दो प्रकारके होते हैं—( १ ) एक स्मृतिके बीजरूपसे रहते हैं, जो स्मृति और क्लेशोंके कारण हैं। ( २ ) विपाकके कारण वासनारूपसे रहते हैं, जो जन्म, आयु, भोग और उनमें सुख-दुःखके कारण होते हैं। वे धर्म और अधर्मरूप हैं। ये सभी संस्कार इस जन्म तथा पिछले जन्ममें किये हुए कर्मोंसे बनते हैं तथा ग्रामोफोनकी प्लेटके रेकार्डके समान चित्तमें चित्रित रहते हैं। वे परिणाम, चेष्टा, निरोध, शक्ति, जीवन और धर्मकी भाँति अपरिहृष्ट चित्तके धर्म हैं। उनमें संयम करनेसे योगीको उनका साक्षात् हो जाता है। इससे उसको जिस देश, काल और जिन-जिन निमित्तोंसे वे संस्कार बने हैं, सब स्मरण हो जाते हैं। यही ‘पूर्वजन्म-ज्ञान’ है। ( योगियोंके अतिरिक्त भी बहुत-से शुद्ध संस्कारवाले बालक भी अपने पूर्वजन्मका हाल बतला देते हैं। ) जिस प्रकार संस्कारोंके साक्षात् करनेसे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होता है, उसी प्रकार दूसरेके संस्कारोंके साक्षात् करनेसे दूसरेके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। विज्ञानभिक्षुके अनुसार ‘पर’ अर्थात् भावी जन्मोंका भी इसी भाँति संस्कारके साक्षात् करनेसे ज्ञान हो जाता है। इस क्रममें योगसूत्र-भाष्यकारोंने आवश्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवाद उपन्यस्त किया है।

‘साधनपाद’के ३९वें सूत्र—‘अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म-कथन्तासम्बोधः ।’ के अनुसार ‘अपरिग्रहकी स्थिरतामें भूत तथा भविष्य जन्मका ज्ञान हो जाता है कि इससे पूर्वजन्म क्या था, कैसा था और कहाँ था ? और आगे कैसा होगा ।’

‘आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।’—अक्षपादके ऊपरके सूत्रसे इतना सिद्ध हो जाता है कि ‘मृत्युके बाद प्रेत्यभाव ( पुनर्जन्म ) होता है तथा आत्मा नित्य होनेके कारण एक-रस रहता है ।’

न्यायदर्शनके भाष्यकार वात्स्यायनके मतानुसार प्रेत्य-भाव अर्थात् पुनर्जन्मकी अस्वीकृतिसे दो प्रबल दोष उपस्थित होते हैं—

( १ ) कृतहान—किये हुए कर्मोंके फलोंका अभोग।

( २ ) अकृताभ्यागम—अकृत अर्थात् नहीं भी किये हुए कर्मोंका भोग। आस्तिक दर्शनोंका सिद्धान्त है—

‘भवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।’—तदनुसार

हमारे जीवनके सुख-दुःख हमारे कर्मोंके ही फल हैं। शुभ कर्मोंके फल शुभावह तथा अशुभके भयावह होते हैं। किंतु यह भी देखनेमें आता है कि इस जीवनमें किये गये बहुत-से कर्मोंके फल हमें इसी जीवनमें नहीं मिलते। अब प्रश्न उठता है कि यदि जन्मान्तर नहीं माना जाय तो इन कृत कर्मोंके फल ही लुप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि तब तो ऐसा प्रतीत होने लगेगा कि जीवनमें बिना पुण्य या तप किये ही कोई सुख भोग रहा है और बिना पाप किये ही कोई दुःख उठा रहा है। अथच यदि पूर्वजन्मका पचड़ा हटा दिया जाय तो फिर बिना कर्मोंके ही फलभोग मानना पड़ जायगा।

‘न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका’में वाचस्पति मिश्रजीका कहना है कि ‘यदि पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंका अस्तित्व ही नहीं माना जाय और अणु-परमाणुओंके संयोगसे ही शरीरोत्पत्ति मान ली जाय, तब तो इसे मान ही लेना पड़ेगा कि सुख-दुःखका भोग यों ही होता है। तब तो फिर कार्य होता है, परंतु कारणका अभाव है और फल कर्मपर बिल्कुल निर्भर नहीं करता। ऐसी अवस्थामें कर्मफल कोई वस्तु ही नहीं रह जाता। साथ ही शास्त्रीय विधि-निषेध भी महत्त्वहीन और निरर्थक हो जाते हैं। जब मनुष्य बिना शुभ कर्म किये ही सुख भोगता है, तब वह आपातमनोहर वर्जित कर्मको छोड़कर बुरा-साध्य शास्त्रविहित कर्मोंकी ओर क्यों अग्रसर होगा ? और तब उस द्राविड़ प्राणायामका मूल्य ही क्या रह जाता है ? यदि कर्मको निष्फल और जीवनको आकस्मिक मान लिया जाय तो सभी शास्त्र बगल झाँकने लग जायँगे—व्यर्थ प्रतीत होने लगेंगे। शास्त्रानुष्ठानके लिये तो गीतामें स्वयं भगवान्ने श्रीमुखसे आदेश दिया है—( १६ । २३-२४ ) के अनुसार अर्थात् ‘कर्तव्याकर्तव्य-विवेचन’के लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं। अतएव कृतहान और अकृताभ्यागम दोषके परिहारार्थ कर्मानुसार पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि ‘जन्म ही क्यों होता है ?’ इसका समीचीन एवं तर्कसंगत उत्तर न्यायदर्शनने दिया है—



‘पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।’

(न्या० सू० ३।२।६४)

अर्थात् ‘पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलानुबन्धसे ही देहकी उत्पत्ति होती है।’ यह शरीर-धारण स्वतन्त्र भूतोंसे नहो, बल्कि धर्माधर्मरूप अदृष्टकी शक्तिसे प्रेरित पञ्चभूतोंसे होता है। यहाँ भी नास्तिक अडगा लगाते हैं और अपनी लचर दलील पेश करते हैं कि ‘जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—पञ्चतत्त्वोंसे ही देह बन जाता है तो फिर उसके निमित्त पूर्वजन्मके कर्मोंको मान लेनेकी आवश्यकता ही क्या ! घट ( बड़े ) की भाँति भौतिक अणु-परमाणुओंके संयोगसे बन जानेवाले शरीरके लिये निमित्त कारण क्यों ?’ इस आक्षेपका उत्तर गौतमने निम्नस्थ सूत्रमें दिया है—

‘भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत्तदुपादनम् ।’

(न्या० सू० ३।२।६५)

महर्षि वात्स्यायनके भाष्यानुसार भावार्थ यह है—  
‘सिकता ( बालू ) से कंकड़-पत्थर आदिकी उत्पत्ति कर्मसापेक्ष नहीं। इसलिये कि ये कंकड़-पत्थर अपने-आप भौतिक परमाणुओंके संयोगसे बन जाते हैं। लेकिन गर्भस्थ शरीर केवल शुक्र-शोणितके संयोगसे ही नहीं बन जाता। यहाँ तो पूर्वकर्मको हेतु मानना ही पड़ेगा। इसलिये कि कंकड़-पत्थर वीर्यके बिना ही उत्पन्न हो जाते हैं, किंतु शरीरोत्पत्ति वीर्यसे होती है।’

ऊपरके आक्षेपका खण्डन न्यायसूत्र-भाष्यकार वात्स्यायनने बड़े ही जोरदार शब्दोंमें किया है। वे लिखते हैं—

‘विषमश्चायमुपन्यासः । कस्मात् ? निर्बीजा इमा मूर्त्ययः उत्पद्यन्ते, बीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः । सत्त्वस्य गर्भवासानुभवनीयं कर्म पित्रोश्च पुत्रफलानुभवनीये कर्मणी मातुर्गर्भाशये शरीरोत्पत्तिर्भूतेभ्यः प्रयोजयन्ति ।’

( ३।२।६७ की टीका )

अर्थात् ‘यह कैसी उलटी गङ्गा बहाते हो ! सजीव शरीरका दृष्टान्त निर्बीज मिट्टी-कंकड़-पत्थरसे नहीं दिया जा सकता। देहात्पत्तिके लिये जीवका माताके गर्भमें वास आवश्यक है। अपने माता-पिताके कर्मानुरूप जीवकी सृष्टि गर्भमें होती है। कर्म ही पञ्चभूतोंसे जीवके शरीरकी रचना करवाते हैं।’

शरीरकी रचनाके विषयमें महर्षि गौतमने अपने न्याय-

दर्शनमें कहा है कि ‘खाया-पीया आहार भी देहकी उत्पत्तिमें कारण है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार वही आहार पच जानेपर माताके शरीरमें रस होकर बढ़ता है। उसीके अनुसार गर्भस्थ बीज बढ़कर मांस, ग्रन्थि आदि अनेक रूप धारण करता है। गर्भकी नाड़ीसे उतरकर रस-द्रव्यकी जो वृद्धि होती है, उसीसे गर्भस्थ शरीर पुष्ट होकर प्रसव-योग्य बन जाता है। लेकिन थालीमें सजे-सजाये भोजन-द्रव्यमें ऐसी शक्ति नही होती। इससे प्रमाणित होता है कि आमाशयस्थ भोजन ही गर्भ-शरीरकी उत्पत्तिका एकमात्र कारण नहीं है। इसलिये कि कर्मकी सहायता लेनी पड़ती है।’ ( ३।२।६८ )

अपुनर्जन्मवादी यह आक्षेप कर सकते हैं कि जब स्त्री-पुरुषके रजोवीर्यका संयोग ही गर्भाधानका कारण है, तब फिर पुनर्जन्मका अस्तित्व क्यों माना जाय ? तो इसका खण्डन गौतमके नीचे लिखे सूत्रमें किया गया है—

‘प्राप्तौ चानियमात् ।’ (न्या० सू० ३।२।६९)

इसपर महर्षि वात्स्यायनका भाष्य कहता है—

‘न सर्वदृश्यव्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्इदंयते, तत्रासति कर्मणि न भवति सति च भवति, इति अनुपपन्नो नियमाभाव इति ।’

—अर्थात् ‘पति-पत्नीके सभी संयोग गर्भ स्थापित नहीं कर सकते। इससे प्रकट होता है कि शुक्र-शोणितसंयोग ही गर्भाधानका एकमात्र निरपेक्ष कारण नहीं है।’ उसके लिये किसी और वस्तुकी अपेक्षा बनी रहती है और वह है ‘प्रारब्ध’। प्रारब्धकर्मके अतिरिक्त रजोवीर्यका संयोग गर्भधारण करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं। अथच पञ्च महाभूतोंको देहोत्पत्तिका निरपेक्ष कारण नहीं माना जा सकता। कर्म-सापेक्ष मानना ही युक्तियुक्त होगा। प्रारब्धकर्मानुसार ही देहकी उत्पत्ति और उसमें आत्माका संयोग होता है। गौतमने लिखा है—

‘शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।’

(न्या० सू० ३।२।७०)

ऊपरके सूत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कर्म ही कारण है कि कोई ब्राह्मण अथवा राजाके कुलमें जन्म लेता है और कोई शूद्रादि नीच कुलमें। कोई शरीरके सर्वांगयोंसे पूर्ण होता है और कोई अपूर्ण या विकलाङ्ग। कोई रोगी तथा कोई नीरोग। इसी प्रकार कोई मेधावी और कोई मन्द। शरीरगत यह



भिन्नता भिन्न-भिन्न प्रारब्ध कर्मोंके फलस्वरूप ही हुआ करती है। अब यदि प्रारब्ध कर्मका अस्तित्व न माना जाय, तब तो सभी आत्माओंको तुल्य (एक समान) मानना होगा। साथ ही पृथ्वी, जल, पावक, पवन और गगन—पञ्चभूतोंका कोई नियामक ही नहीं रह जाता और नियामक न हो तो सभी शरीर एक-से बनेंगे, किंतु यह कथन तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके शारीरिक संस्कार लेकर ही जीव जन्म ग्रहण करते हैं। अथच इस कर्मको ही निमित्त मानना पड़ेगा। यदि प्रारब्धकर्म नहीं माना जाय, तब तो जन्म-विषयक अनियम या अव्यवस्था बनी ही रहेगी। अतः गौतमके निम्नलिखित सूत्रसे—

‘एतेनानियमः प्रत्युक्तः ।’ (न्या० सू० ३।२।७१)

‘प्रारब्ध कर्मको निमित्त कारण मान लेनेसे जन्मसम्बन्धी अव्यवस्था अथवा अनियम खण्डित हो जाता है ।’

यह सत्य है कि कृतकर्मोंका फल समय पाकर कर्ताके पास स्वयमेव पहुँच जाता है। जिस प्रकार हजारों गौओंको मैदानमें खड़ी कर दीजिये और किसी एकका बछड़ा खोल दीजिये और देखिये कि वह बछड़ा सभी गौओंके बीच ओढमें छिपी-खड़ी अपनी माताके पास पहुँच जाता है कि नहीं।

एक बात और ध्यान देनेकी है। वह यह है कि यदि देहोत्पत्तिमें कर्मको निमित्त नहीं माना जाय और केवल भौतिक तत्वों (रजोवीर्य) का संयोग ही एकमात्र कारण मान लिया जाय तो फिर संयोगके नाश अर्थात् मृत्युका क्या कारण हो सकता है? विशेष कारणके बिना तो शरीरकी नित्यता और मृत्युकी अनुपपत्ति (असिद्धि) का एक बर्दस्त

प्रश्न उठ खड़ा होता है। इसी आक्षेपके निराकरणके लिये महर्षि गौतमने निम्नस्थ सूत्र लिखा है—

‘नित्यत्वप्रसंगश्च प्रायणानुपपत्तेः ।’ (न्या० सू० ३।२।७१)

इसके भाष्यमें वात्स्यायनका कहना है कि ‘भोगद्वारा कर्माशयका क्षय हो जानेपर एक देहका अन्त हो जाता है। साथ ही दूसरे कर्माशयका फल भोगनेके लिये शरीरान्तर धारण करना पड़ता है। यदि केवल पञ्चभूत ही मृत्युके कारण होते तो फिर मृत्यु क्योंकर होती? इसलिये कि पञ्चभूत नित्य हैं। अथच किसका क्षय होनेपर शरीरान्त होता है?’ इससे सिद्ध हुआ कि शरीरकी उत्पत्ति और विनाश कर्माशयपर अवलम्बित हैं। प्रारब्धकर्मके अनुसार ही फल भोगनेके लिये जन्म होता है और कर्माशयका क्षय हो जानेपर शरीरसे आत्मा निकल जाया करता है। अथच जन्म-मरण कर्मसापेक्ष है—सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं।

इस प्रसङ्गमें नैयायिकोंका ‘तृणजलौका’ न्याय प्रसिद्ध है। इस न्यायका प्रयोग नैयायिक आत्माके एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश करते समय दृष्टान्तरूपसे किया करते हैं। श्रीसद्भागवतमहापुराणमें इसका आशय सुस्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार घासपर रेंगनेवाली बोंक दूसरी घासपर जाते समय अपना अगला पाँव घासकी किसी पँखुड़ीको आधार बनाकर रख लेती है, तब पिछला पाँव पहली घासपरसे उठाती है, उसी प्रकार जीव शरीरान्तरका आधार लेकर ही पूर्वतन शरीरका त्याग कर देता है।

सच तो यह है कि मृत्यु पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मके बीचका प्रवेशद्वार है। यहाँ पहुँचकर नैयायिकोंका ‘देहली दीपकन्याय’ चरितार्थ होता है।

## मनने कभी शान्ति नहीं पायी

कबहुँ मन विध्राम न मान्यो ।

निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिय तान्यो ॥

जदपि विषय-सँग सह्यो दुसह दुख, विषम जाल अरुझान्यो ।

तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहुँ नहिँ जान्यो ॥

जनम अनेक किये नाना विधि करम-कीच चित सान्यो ।

होह न विमल बिबेक-नीर बिनु, वेद पुरान बखान्यो ॥

निज हित नाथ पिता गुरु-हरिसौं हरषि हृदै नहिँ जान्यो ।

तुलसीदास कब तृषा जाय सर खनतहिँ जनम सिरान्यो ॥

—तुलसीदासजी



## जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य

( लेखक—भीमराम माधव विंगले, एम्. ए. )

[ पृष्ठ २०६ से आगे ]

### ५-जन्म-मृत्युका यथार्थ तात्त्विक स्वरूप

‘देह आत्मा नहीं’ यह भारतीय धर्म तथा दर्शनका मुख्य सिद्धान्त या कहिये कि प्राण ही है। इसीलिये इस सिद्धान्तको एक चार्वाक या लोकायत दर्शनके नगण्यसे अपवादको छोड़कर शेष सभी दार्शनिक प्रयत्नपूर्वक सिद्ध करते हैं। देह तो प्रत्यक्षरूपसे जन्म-मृत्यु इत्यादि षड्भाव-विकारोंसे ग्रस्त है। किंतु देहके संदर्भमें भी जन्म और मृत्यु या नाशका अर्थ समझ लेना चाहिये। सत्कार्यवादके सिद्धान्तके अनुसार, जिसे आधुनिक विज्ञानका समर्थन प्राप्त है, किसी भी वस्तुका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता—(‘Nothing is lost’)) होता है—रूपान्तरमात्र। ‘णश अदर्शने’ इस व्युत्पत्तिके अनुसार नाश शब्दका अर्थ है—‘दिखायी न देना।’ अर्थात् व्यक्त रूपसे अव्यक्तरूप प्राप्त कर लेना। वस्तुका कार्यरूप छोड़कर कारणावस्थामें चला जाना ही उसका नाश है। यही बात ‘जन्म’ शब्दकी भी है। ‘जनी प्रादुर्भावे।’—इस व्युत्पत्तिके अनुसार जन्म लेनेका अर्थ है—वस्तुका अव्यक्तावस्थाको छोड़कर व्यक्तावस्था प्राप्त कर लेना, कारणावस्थाको छोड़कर कार्यावस्थामें अभिव्यक्त हो जाना।

पुनश्च, स्थूलशरीरकी लौकिक दृष्टिसे मृत्यु भी ऐसी बात नहीं कि एक बार मरनेपर हमें फिर दूसरा शरीर ही न मिले। ‘नाशुक्तं क्षीयते कर्म।’—इस कर्मसिद्धान्तके अनुसार एक शरीरके छूटनेपर प्रारब्धकर्मनुसार दूसरा शरीर मिलना अवश्यम्भावी है। शरीर तो अज्ञान दशामें मनुष्यको स्वेच्छा या अनिच्छापूर्वक मिलता ही रहता है। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक मनुष्य अपना आध्यात्मिक विकास पूर्ण न कर ले, अर्थात् जबतक कि वह तत्त्वज्ञानके द्वारा अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द-स्वरूपका साक्षात्कार न कर ले। अतएव हमें जो प्रयत्न करना है—वह शरीरकी प्राप्ति के लिये नहीं करना है, किंतु ‘भव’—‘जन्म-मरणके चक्र’से छूटनेके लिये करना है।

श्रीवसिष्ठ महामुनिने योगवासिष्ठमें मृत्यु-विषयक विवेक बहुत ही उत्तमताके साथ किया है। आपके द्वारा की हुई

मृत्युकी निम्न व्याख्या विचारणीय है—‘देहान्तरार्थं देहस्य संत्यागो मरणं स्मृतम्।’ अर्थात् ‘दूसरे देहकी प्राप्ति के लिये जो पहले देहका त्याग किया जाता है—वही मरण है।’ इस-लिये मृत्युसे डरनेका कोई कारण नहीं। मरणभय सर्वथा अविचारितसिद्ध है। इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठ महामुनि ‘अभ्युपगम न्याय’से मृत्युविषयक एक और विचार उपस्थित करते हैं। यदि मरण आत्यन्तिक नाश हो, तब भी मृत्युसे घबरानेकी कोई बात नहीं; क्योंकि तब तो संसाररूपी रोग ही जड़से कट जाय,—‘मृतिरत्यन्तनाशश्चेज्जवाभयसंक्षयः।’ किंतु यदि मृत्युके कारण नये देहकी प्राप्ति होती हो तो फिर यह शोकका विषय न होकर हर्षका ही विषय होना चाहिये; क्योंकि नयी वस्तुको तो सभी खुशीसे चाहते हैं—‘मृत्यञ्च देहलाभश्चेज्जव एव तदुत्सवः।’ अन्तमें श्रीमहामुनि सिद्धान्त बतलाते हैं कि ‘मृत्युका स्वरूप सर्वनाशात्मक नहीं हो सकता। वर्तमान देहविषयक संकल्पका बंद होना और देहान्तर-विषयक संकल्पका स्थिर होना ही मृत्यु है। प्रत्येक जीव देश तथा कालके भेदसे अपनी वासना तथा संस्कारोंके अनुसार किसी-न-किसी देहकी कल्पना करके फिर-फिर उत्पन्न होता रहता है।’ ध्यान रहे योगवासिष्ठ दृष्टि-सृष्टिवादका ग्रन्थ है, जो मुख्यतः वेदान्तके मुख्याधिकारीके लिये है। इसी दृष्टिसे यह प्रक्रिया उपस्थित की गयी है।

विचारवान् पुरुष मृत्युके वास्तविक स्वरूपसे परिचित होनेके कारण देहादिके वियोगकी सम्भावनासे यत्किंचित् भी विचलित या उद्विग्न नहीं होते। पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित देहको वे पञ्चमहाभूतोंकी वस्तु समझकर मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। अज्ञानी मनुष्योंकी स्थिति इससे विपरीत होती है। वे मृत्युके वास्तविक स्वरूप और रहस्यसे अपरिचित होनेके कारण उससे भय खाकर उससे बचनेके हेतु नाना प्रकारके उपायोंका अवलम्ब करते रहते हैं। अज्ञानका प्रभाव कितना प्रबल होता है, इसका प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण हमें मत्स्यदेहको अमर बनानेके हेतु या इस देहकी यौवनरूप क्षणभङ्गुर अवस्था-विशेषको चिरस्थायी रूप देनेके हेतु किये गये अनेकानेक



उचित-अनुचित प्रयत्नोंके रूपमें देखनेको मिलता है। किंतु भीमद्भागवतमें इस विषयमें स्पष्ट निर्णय दिया गया है कि शरीर स्वरूपतः ही विनश्वर होनेसे उसे अमर बनानेके सारे प्रयत्नोंका निष्फल होना अवश्यम्भावी है—

नहि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ।

अन्तवत्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥

( ११।२८।४२ )

शरीरका मरणधर्मसे ग्रस्त होना यह कोई गूढ़ रहस्य नहीं है,—‘यत्कृतकं तदनित्यम् ।’ अर्थात् ‘जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है ।’ इस न्यायसे हम देख सकते हैं कि जब स्वयं यह पृथ्वी, जिसके आधारपर हमारा भौतिक जीवन रहता है और सम्पूर्ण सूर्यादि सृष्टि ही दीर्घकाल अवस्थायी होनेपर भी अन्ततोगत्वा विनश्वर ही है, तब भला इनके आधारपर रहनेवाले क्षुद्र शरीरके विनश्वर होनेमें संदेह ही क्या हो सकता है !

### ६—मृत्यु मनुष्यकी मित्र है, शत्रु नहीं

यदि हम प्रकृतिमें मृत्युके उद्देश्यको भलीभाँति समझ लें तो हमें यह देखते देर न लगे कि मृत्युका भय अविचारमूलक है; क्योंकि मृत्यु मनुष्यकी हित-शत्रु न होकर उसकी सच्ची हितैषिणी है। इस सम्बन्धमें पहले हमें इस महत्वपूर्ण बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि मानव-जीवनका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक विकास है। आनन्दमय प्रभुके विश्वरचना-रूप लीलाविष्करणका मुख्य ध्येय यही है। प्रकृति माता चराचर सृष्टिको इसी एकमेव ध्येयकी ओर अनवरत रूपसे लिये चली जा रही है। नरसे नारायण बननेमें ही इस विकासकी परिसमाप्ति है। अब चूँकि विकासकी लंबी दौड़में एक शरीर, एक जन्म पर्याप्त नहीं, इसलिये प्रकृतिमाता प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही एक जन्म, एक शरीरके विकासके योग्य न रहनेकी स्थितिमें दूसरा जन्म और दूसरा शरीर दे देती है। मृत्यु मनुष्यके आध्यात्मिक विकासकी लंबी दौड़में एक आवश्यक विश्रान्ति-स्थल है। इस मृत्युके कारण ही हमारे वर्तमान जीवनका भार हल्का होकर और विकासके अयोग्य पुराने शरीरादि जाकर नया ताजा शरीर मिलता है और नये उत्साह तथा नयी उमंगके साथ विकासकी नयी दौड़ प्रारम्भ होती है। मृत्यु ही जीवको एक योनिसे, एक शरीरसे छुड़ाकर दूसरी योनिमें, दूसरे शरीरमें ले जाती है। मृत्युके अभावमें जीव एक ही योनिमें

एक ही शरीरमें बँधा रहे। चौरासी लाख योनियोंमेंसे घूमकर मानवदेहकी प्राप्ति आखिर मृत्युके कारण ही तो हुई है। मृत्युकालमें मरनेवाले मनुष्यकी आँखोंके सामने अँधेरा छाने लगता है। इस अँधेरेके द्वारा मानो प्रकृतिमाता विश्व-रंग-मंचपर चलनेवाले जीवनरूपी महानाटकके एक अङ्कके अन्तमें पर्दा डालना चाहती है। यह पर्दा डालनेकी क्रिया नाटकका दूसरा अङ्क प्रारम्भ होनेसे पहलेकी आवश्यक मध्यवर्ती अवस्था है। फिर पिण्ड-प्राणका वियोग हो जाता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर योग्यकालमें प्रारब्ध कर्मानुसार नये पिण्डके साथ प्राणका योग होकर, नये जीवनका और उसके साथ ही विकासकी अगली मंजिलका प्रारम्भ होता है। मनुष्य नया जन्म पाकर नये उत्साह और उमंगके साथ विकासकी ओर चल पड़ता है। मृत्यु होनेपर मनुष्यकी भौतिक सम्पत्ति, पुत्र-परिवारादि जहाँके तहाँ धरे रह जाते हैं। मनुष्यके साथ जाता है—केवल उसका विकास। अपनी विकास-भूमिके अनुसार ही मनुष्य नया शरीर, नया जन्म ग्रहण करता है और अपने विकासके अनुकूल वातावरणमें ही वह जन्म लेता है।

### ७—ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषकी मृत्युमें महान् अन्तर है

आध्यात्मिक विकासकी दृष्टिसे मृत्युके उपर्युक्त आवश्यक संक्रमणकालको विवेकी पुरुष मृत्युके वास्तविक रहस्यसे परिचित होनेके कारण हँसते-खेलते पार कर जाते हैं। वे मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। उससे किंचित् भी भयभीत नहीं होते। इसके विपरीत प्राकृत अज्ञानोंके लिये मृत्यु एक भयावह वस्तु बन जाती है। मृत्युकी कल्पनासे ही इनके मनपर आतङ्क छा जाता है। ऐसे लोगोंको मृत्युके समय अतीव कष्ट होता है; क्योंकि वे प्रकृतिमाताका उद्देश्य न समझनेके कारण उसके साथ सहकार करनेके स्थानपर संघर्ष ठान बैठते हैं। मृत्युकालमें बाह्य जगत् तथा उसके पदार्थोंकी आसक्तिके कारण उनमें और प्रकृतिमें एक तरहकी रस्साकसी शुरू हो जाती है। प्रकृति तो उन्हें उन्हींके विकासके हितमें बाह्य जगत् तथा विकासके अयोग्य शरीरसे छुड़ाना चाहती है और वे उसीके साथ चिपके रहना चाहते हैं। देह-गोहादि पदार्थोंकी आसक्ति जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक कष्ट मनुष्यको मृत्युकालमें होता है। अभयादि शक्तिसे सम्पन्न प्रकृतिके साथ इस संघर्षमें मर्यादित, अल्पशक्ति



मानव आखिर कबतक टिक सकता है ! प्रकृति उसकी चेतनाशक्तिको हरण करके उसके जीवनपर पर्दा डाल ही देती है। प्रकृतिके साथ इस खींचातानीके फलस्वरूप ही मृत्युका दुःख महाभयंकर हो उठता है। इस प्रकारके संवर्षसे विहीन विवेक और वैराग्यशील मनुष्यकी मृत्यु शान्तिपूर्ण होती है।

### ८—प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है

पूर्वजन्ममें संदेह करनेवाले प्रायः यह शङ्का उपस्थित किया करते हैं कि यदि हमारा पूर्वजन्म होता तो हमें उसकी स्मृति होनी चाहिये। मृत्युको 'दीर्घ' निद्रा कहा गया है, हम देखते हैं कि प्रतिदिन सोकर उठनेपर हमारी पूर्वकालीन स्मृति बनी रहती है। किंतु हमें पूर्वजन्मकी इस प्रकारकी कोई स्मृति नहीं होती। पूर्वजन्म माननेवालोंकी ओरसे इस शङ्काका समाधान करना आवश्यक है।

उक्त शङ्काका एक समाधान तो यह है कि विशिष्ट परिस्थितिमें व्यक्तिविशेषमें पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ जगती हैं, इसके अनेक उदाहरण हैं। महाकवि कालिदासने पूर्वजन्मकी स्मृतिका निम्न श्लोकमें नितान्त सुन्दर कान्यमय वर्णन किया है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व-

भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

( अभिज्ञानशाकुन्तलम् ५।२ )

‘परामनोविज्ञान’ने इस प्रकारके आश्चर्यजनक उदाहरणोंका सशास्त्र संकलन और छानबीन की है। यह विज्ञान उत्तरोत्तर प्रगतिपथपर है।

उक्त शङ्काका दूसरा समाधान यह है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकमें आत्यन्तिक साम्य होना आवश्यक नहीं है। आंशिक साम्य अवश्य है। हम देखते हैं कि दीर्घकालतक गहरी नींदसे उठनेपर हम कुछ देरतक निश्चेष्ट स्थितिमें रहते हैं। उस समय पूर्वकालीन कोई स्मृति नहीं जगती। धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उद्बोधक निमित्तको पाकर जगती है। मृत्यु तो अत्यन्त दीर्घनिद्रा है, अतएव उसके टूटनेपर यदि पूर्वस्मृतियाँ उद्बोधक निमित्तके अभावमें न जगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है !

यह साधारण समाधान है। किंतु इस विषयका मुख्य रहस्य यह है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति हेतु-पुरस्सर होती है। ध्यान रहे, प्रकृतिमें पुनर्जन्मका मुख्य हेतु है—मनुष्यका आन्यात्मिक विकास। इसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य नव शरीरको प्राप्त करके नये उत्साह और उमंगोंके साथ अपने नये जन्मकी विकासयात्राका प्रारम्भ करे। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि उसकी पुरानी, अप्रिय तथा अनावश्यक सब प्रकारकी स्मृतियोंका भार हल्का हो जाय। इस विकासके हेतु जितनी आवश्यक बातें हैं, वे तो पूर्वसंस्कारोंके कारण उद्बुद्ध हो ही जाती हैं, यथा नवजात शिशुमें स्तन्य-पानादिकी सहज प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंमें अभिरुचि तथा प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंसे द्वेष तथा निवृत्ति इत्यादि। यदि मनुष्यकी अतीत अनन्त स्मृतियोंका भार हल्का न हो तो नवीन जन्ममें भी मनुष्य अपने अनन्त जन्मोंकी अनन्त प्रिय, अप्रिय सब तरहकी स्मृतियोंके भारसे दबा रहे और यह भार असह्य होकर उसके विकासमें एक बड़ी बाधा, एक बड़ा रोड़ा बन जाय। हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान जन्ममें ही ऐसी अनेक अप्रिय स्मृतियाँ होती हैं जिनके कारण हमें बहुत बेचैनी होती है, हम इन्हें भूल जाना चाहते हैं किंतु भूलते नहीं। किंतु प्रकृति माता मृत्युके अनन्तर इनपर विस्मृतिका परदा डाल देती है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये स्मृतियाँ पूरी तरहसे नामशेष हो जाती हैं और कभी जग ही नहीं सकती, योगबलसे, तपः-सिद्धिसे, भगवद्भक्तिके प्रभावसे या तत्त्वज्ञानके प्रभावसे भी केवल अपने ही नहीं, दूसरोंके भी पूर्वापर जन्मका ज्ञान सम्भव है। ऐसे लोगोंको ‘जातिस्मर’ कहा गया है। महात्मा जडभरत इसके सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं। पातञ्जलयोगदर्शनके दो सूत्र इसी बातको सिद्ध करते हैं—(१) ‘अपरिग्रहस्थैर्यं जन्म-कथन्तासम्बोधः’ (२।३९) ‘अपरिग्रहके दृढ़ होनेपर पूर्वजन्मोंका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है।’ (२) ‘संस्कारसाक्षात्करणत्वं पूर्वजातिज्ञानम्’ (३।१८) ‘संयमद्वारा पूर्वसंस्कारोंको साक्षात् कर लेनेपर पूर्वजन्मोंका ज्ञान हो जाता है।’ ध्यान रहे अज्ञान-दशामें साधारण मनुष्यको इनका ज्ञान ही नहीं होता। इनका ज्ञान तो तब होता है, जब ज्ञान या योगके प्रभावसे मनपर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। प्रकृति माताकी इस बुद्धिमानीपूर्ण योजनाका हमें स्वागत ही करना चाहिये। यदि अज्ञानी मनुष्यको इनका ज्ञान हो जाय तो उसका साधारणरूपसे जीवन-यापन करना ही कठिन हो जाय।



इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सदैवतक है।

## ९—अमरत्वका स्वरूप

अमरत्वका विचार करते समय एक महत्वपूर्ण बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सच्चे अमरत्वमें और किसी भी प्रकारके दीर्घकाल-अवस्थायित्वमें महदन्तर है। यदि अमरत्वसे अभिप्राय केवल दीर्घकालतक बने रहनेसे हो तो ऐसे अमरत्वका न तो व्यावहारिक दृष्टिसे कोई मूल्य हो सकता है और न तात्त्विक दृष्टिसे ही। व्यावहारिक दृष्टिसे किसी भी प्रकारका उपाधिसे अस्तित्व एक निश्चित अवधिके अनन्तर बजाय सुखके दुःखके लिये ही कारण बन जाय। ऐसा जीवन असह्य भाररूप ही हो जाय। स्वर्गस्थ देवादिको 'अमर' कहा गया है। 'अमर' शब्द 'देव' शब्दका पर्यायवाची है। किंतु देवादिका अमरत्व भी केवल दीर्घकाल-अवस्थायित्वका द्योतक है, न कि तत्त्वज्ञानद्वारा प्राप्य सच्चे अमरत्वका, तात्त्विक दृष्टिसे सच्चा अमरत्व दिक्कालाद्यनवच्छिन्न आत्म-तत्त्ववेत्ताओंको ही प्राप्त हो सकता है।

देवादि भोग-योनि है। पुण्यकर्मोंके संचयद्वारा और स्वर्गस्थ भोगोंकी इच्छाके कारण वह प्राप्त होती है और पुण्यकर्मोंके भोगद्वारा समाप्तिके साथ ही उसकी भी समाप्ति हो जाती है और उन्हें फिर वापिस मृत्युलोकमें ही आना पड़ता है। 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (गीता ९, १२१) हमारे शास्त्रकारोंने किसी भी प्रकारकी जन्म-मरण-परम्पराको 'भव' या 'संसार' कहा है। इस घटीयन्त्र-वत् परम्परासे छूटनेमें ही मनुष्यका सच्चा परम पुरुषार्थ है और मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है। सच्चा अमरत्व किसी भी प्रकार कालसे घटित न होकर वह सर्वथा कालसे अस्पृष्ट रहता है। आत्माको काल-परिच्छेद नहीं। वेदान्तदर्शनके अनुसार कालका अर्थ है—ब्रह्म तथा मायाका अनादिकालसे चला आया हुआ सम्बन्ध। यह सम्बन्ध आध्यात्मिक होनेसे काल भी आध्यात्मिक अतएव मिथ्या है। वह अनादि सान्त है। वह 'ज्ञाननिर्वर्त्य' है। तत्त्वतः आत्मा कालमें नहीं है; काल स्वयं आत्मामें है और वह उसपर अभ्यस्त है। इसलिये सच्चा अमरत्व कालसे अवर्धित, कालसे सर्वथा अस्पृष्ट ही हो सकता है।

नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप ही सच्चे अर्थमें अमर है और यही 'अमरत्व'का अर्थ है। उसे छोड़कर अन्य सब काल-सर्पसे ग्रस्त है—'ग्रस्तं कालाहिना जगत्।' अमर आत्मा ही जीवमात्रका सच्चा स्वरूप है। वह नित्य प्राप्त है। अमरत्व कहीं बाहरसे लाना नहीं है; उसके अनुभवमें प्रतिबन्ध करनेवाली अज्ञानमूलक कल्पनाओंको यथार्थ ज्ञानके द्वारा दूर कर देना है। सारा प्रयत्न, शास्त्रोक्त कर्म, उपासना तथा योगादि साधना इत्यादि सब एकमात्र आत्मज्ञानको सम्पादन करनेमें ही चरितार्थ होते हैं। यही सबका अन्तिम प्राप्तव्य है। इसलिये सच्चा अमरत्व मरणोत्तर दशामें प्राप्त होनेवाला न होकर इसी जन्ममें, यथार्थ ज्ञानोदयके साथ ही प्राप्त हो सकता है—

‘ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः।’

‘अत्र ब्रह्म समश्नुते ॥’

इसीलिये मोक्ष दृष्टफल है, जिसे यथार्थ ज्ञानके द्वारा इसी जीवनमें सभी अधिकारी पुरुष प्राप्त कर सकते हैं और जीवन्मुक्त दशाका अनुभव कर सकते हैं। पाश्चात्य तत्त्वचिन्तक भी इस तथ्यसे सहमत हैं। श्रीप्रिंगल पेटिसन कहते हैं—

‘अनन्तत्वका अर्थ अनन्त कालावस्थायित्व न होकर कालातीत वस्तुका अनुभव है।’ इसीलिये धर्मशास्त्र तथा दार्शनिक यह साग्रह प्रतिपादन करते हैं कि 'अनन्त और अमर जीवनका अनुभव मरणोत्तर न होकर यहीं और इसी समय प्राप्त होने योग्य है।' (अमरत्वका विचार पृ० १३४-१३५)

## १०—जीवकी मरणोत्तर स्थिति गति

प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही रोगादि निमित्तको लेकर जीवका सूक्ष्मदेह या लिङ्गशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो जाता है। इसीको 'पिंड' प्राणका वियोग या 'मृत्यु' कहते हैं। यहाँसे जीवकी परलोकयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। जैसे जीवकी इहलौकिक अच्छी या बुरी स्थिति उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित रहती है, वैसे ही उसकी मरणोत्तर स्थिति भी उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित होती है।

‘यथाकारो यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।.....काममय एवायं पुरुष इति स



यथाकामो भवति तत्कृतुर्भवति यत्कृतुर्भवति तत् कर्म  
कुरुते यत् कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ।' (६. उपनिषद् ४।४।५)

‘वह ( मनुष्य ) जैसा करनेवाला और जैसे  
आचरणवाला होता है, वैसा ही हो जाता है। शुभ  
कर्म करनेवाला शुभ होता है और पापकर्मा पापी होता  
है। पुरुष पुण्य कर्मसे पुण्यत्मा होता है और पापकर्मसे  
पापी होता है। यह पुरुष काममय ही है। वह जैसी  
कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है; जैसे  
संकल्पवाला होता है, वैसा ही कर्म करता है और  
जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है ।’

मनुष्यकी शुभाशुभ वासनाओंके अनुसार ही उसके  
संकल्प बनते हैं और ये ही विशिष्ट प्रकारकी शुभाशुभ  
योनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण होते हैं। इस  
विषयमें कठश्रुति भी यही कहती है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥

( २।२।७ )

‘अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कोई  
देहधारी शरीरधारणार्थ विशिष्ट योनिको प्राप्त होते हैं  
और अन्य कोई देहधारी स्थावरभावको प्राप्त होते हैं ।’

मनुष्यके यथार्थ या अयथार्थ एवं दूषित ज्ञान-  
के अनुसार अन्तःकरणमें उत्पन्न होनेवाली वासनाएँ,  
उनकी पूर्तिके लिये किये जानेवाले संकल्प और कर्म  
इत्यादि होते हैं। यह अनुभवसिद्ध है। इनमेंसे विशिष्ट  
प्रबल वासनाएँ, जो जीवनकालमें सुप्त या प्रकट रहती  
हैं, मरनेके समय पूर्वाभ्यासवश जग जाती हैं और ये  
ही मनुष्यके जन्मान्तरकी नियामक बन जाती हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तज्ज्ञावभावितः ॥

( श्रीमद्भगवद्गीता ८।६ )

‘अन्ते मतिः सा गतिः’ का यही अभिप्राय है। ‘यथा-  
प्रज्ञं हि सम्भवाः’ अर्थात् ‘बुद्धिके अनुसार ही जन्म हुआ  
करते हैं ।’ इस श्रुतिमें जन्मान्तरका रहस्य सूत्ररूपसे  
निर्दिष्ट किया गया है। कृतकर्मोंके भोग, वासनाओंका  
प्राबल्य, विशिष्ट हेतुकी पूर्तिकी प्रबल इच्छा, विशिष्ट  
प्रकारकी आसक्ति—इत्यादि सब बातें उपलक्षण तथा यहाँ  
अभिप्रेत हैं और ये ही जन्मान्तरकी नियामक हैं।

मृत्युके साथ ही जीवको देवयान अथवा पितृयाण-  
मार्गसे विभिन्न देवता ले जाते हैं ! इसका वर्णन  
श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्यायमें अच्छी तरह किया  
गया है। इनमेंसे प्रथम मार्गसे जानेवाले उपासक क्रमशः  
को प्राप्त कर लेते हैं। अतएव वे इस मृत्युलोकमें वापस  
लौटकर नहीं आते। दूसरे मार्गसे जानेवाले पुण्यवान्  
लोग स्वर्गादि पुण्यलोकोंमें जाकर वहाँके भोग भोगकर  
वापस इसी लोकमें लौट आते हैं। निषिद्ध पापकर्म  
करनेवाले नरकमें दुःख भोगकर फिर यहाँ आकर जन्म  
लेते हैं। जिनके साधारणसे पाप-पुण्य होते हैं,  
वे इसी लोकमें जन्म लेते हैं। घोर पापी तथा  
उत्कट वासनादिसे युक्त जीव भूत-पिशाचादि  
योनिमें जाते हैं। स्थूलशरीरसे रहित होनेके कारण ये  
सब तरहके मानवोचित भोगोंसे वञ्चित रहते हैं। यह  
भोग-योनि है। इस प्रकार जीवकी मरणोत्तर स्थिति-  
गतिके विभिन्न प्रकार हैं। हमने इनका संक्षेपमें निर्देश  
किया है।

## ११—परलोक है और अवश्य है

परलोक है या नहीं ?—यह विवाद्य प्रश्न है; क्योंकि  
इस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी सम्भावना बहुत ही कम  
है। वैज्ञानिक अभी अन्य ग्रहोंके साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क  
स्थापित करनेमें प्रयत्नशील हैं; किंतु अभीतक वे इस  
दिशामें सफलता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। अतएव शब्द-  
प्रमाण ही इस विषयमें एकमेव महत्वपूर्ण प्रमाण है।  
जो लोग परलोक नहीं मानते, उन्हें हमारे शास्त्रकार  
उन्हींके हितमें कहते हैं—

संदिग्धे परलोकेऽपि त्याज्यमेवाशुभं जन्मैः ।

नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः ॥

‘परलोक है या नहीं—यह सदेहका विषय होनेपर  
भी अशुभ कर्मोंका त्याग ही करना चाहिये; क्योंकि यदि  
परलोक न हो तो शुभ कर्म करनेवाले आस्तिक पुरुष-  
को किसी हानिकी कोई सम्भावना नहीं। किंतु यदि परलोक  
हो, तो इस सम्भावनाकी ओर ध्यान न देनेवाले नास्तिक-  
की दुर्गति हुए बिना न रहेगी ।’

हमारे शास्त्र-ग्रन्थोंमें परलोककी सत्यता प्रतिपादन  
करनेवाले अनेकानेक उल्लेख हैं। अनुमानसे भी हम  
‘परलोक है’—इसी निर्णयपर पहुँच सकते हैं। अनन्त प्रकृति



के राज्यमें इतनी कृपणता नहीं कि उसमें यह छोटा-सा पृथ्वीमण्डल ही एकमात्र लोक हो। हमारे यहाँ परमात्माको 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक' कहा गया है। परमात्मा स्वयं अनन्त हैं। उनकी 'अवटितवटनापटीयसी' मायाशक्तिद्वारा निर्मित सृष्टि भी अनन्त और अगणित होनी चाहिये। सारी सृष्टि कर्ममय है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही विभिन्न सृष्टियोंकी रचना करते हैं। इसीलिये विभिन्न लोकोंमें तारतम्य होना चाहिये। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। इसलिये जीवोंके कर्म भी त्रिगुणोंके न्यूनाधिक्यसे अनेक प्रकारके हो जाते हैं। ये प्रकार अनन्त हैं। कोई 'शुद्ध सत्त्व-प्रधान' पुण्यलोक है, कोई 'दिव्य भोगप्रचुर सुखमय लोक' है, तो कोई 'दुःखबहुल लोक' है। इसी सृष्टिमें, इसी अवनीतलपर हम स्यावरादिसे लेकर ज्ञानी या भगवद्भक्त अथवा जीवन्मुक्त तत्त्वदर्शी महात्मातक कर्ममूलक अनेक योनियाँ पाते हैं; तो फिर, लोकान्तरमें इस प्रकारके विभेद होनेमें बाधा ही क्या हो सकती है? इन्हें ही हमारे यहाँ ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या वैकुण्ठ, शिवलोक, स्वर्गलोक, नरकलोक इत्यादि संज्ञाएँ दी गयी हैं। हमारे यहाँके त्रिकालदर्शी शास्त्रकारोंने तो स्वर्गलोक या नरकलोकसे इस मर्त्यलोकमें आनेवाले मनुष्योंके लक्षण भी बतला रखे हैं। स्वर्गसे लौटे हुए पुरुषोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये गये हैं—

स्वर्गच्युतानामिह जीवलोकं  
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे ।  
दानप्रसंगो मधुरा हि वाणी  
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥

'स्वर्गलोकसे इस मनुष्य-लोकमें आये हुए पुरुषोंमें चार लक्षण रहते हैं—(१) दानादिमें प्रवृत्ति, (२) मीठे वचन, (३) ईश्वरोपासना, (४) ब्राह्मणोंका भोजनादिद्वारा सत्कार ।'

इसके विपरीत नरकादिसे लौटे हुए पामरजनोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये हुए हैं—

कार्पण्यवृत्तिः स्वजनस्य निन्दा  
दुःशीलता नीचजनेषु संगः ।  
अतीव रोषः क्रुद्धता च वाचि  
नरस्य चिह्नं नरकागतस्य ॥

'कृपणता, आत्मीय जनोंकी निन्दा, दुराचारमें अभिरुचि, नीचजनोंकी संगति, अत्यन्त कोष, क्रुद्धे वचन—ये हैं नरकलोकसे आये हुएोंके लक्षण ।

उपर्युक्त लक्षणोंके द्वारा हम अपने स्वयंकी परीक्षा भलीभाँति कर सकते हैं कि हम किस कोटिके जीव हैं। ध्यान रहे, शास्त्र एक प्रकारका दर्पण है, जिसमें हम अपने जीवनका रूप देख सकते हैं और उसमें इष्ट दिशामें परिवर्तन करनेका मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं। यह है—संक्षेपमें परलोक-विषयक विचार।

## १२-उपसंहार-भारतीय ब्रह्मविद्याका सार-सर्वस्व

नरदेह अत्यन्त दुर्लभ है। यह तीन प्रकारकी गतियोंका द्वार है। एक तो 'देवादि पुण्ययोनि', दूसरी 'स्यावरादि अधम योनि' तथा तीसरी शास्त्रविहित कर्माचरण, भगवदुपासना तथा तत्त्वज्ञानद्वारा 'भोक्षप्राप्ति'। प्रथम द्वार पुनरावर्ती होनेके कारण बुधजनके द्वारा अनादरणीय है। दूसरा घोर पतनका द्योतक होनेके कारण सर्वथा त्याज्य ही है। तीसरा ही मनुष्यमात्रका लक्ष्य होना चाहिये। जो इस दुर्लभ नरदेहको प्राप्त करके आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न नहीं करते, उन्हें श्रीमद्भागवतमें 'आत्महा'—'आत्मघाती' कहा गया है। सनत्सुजातीयमें इसे सबसे बड़ा पाप और इसे करनेवालेको 'चोर' और 'आत्मापहारी' कहा गया है—

बोऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।  
किं तेन न कृतं पापं चौरिणात्मापहारिणा ॥

ईशोपनिषद्में इन्हें 'आत्महन्ता जनाः' कहा गया है, इसीलिये भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको निमिष बनाकर मनुष्यमात्रको आदेश देते हैं कि 'वह आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न करे और अपने-आपको सब तरहकी अवोपतिसे बचावे ।'—

उद्धरेद्वात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

( गीता ६ । ५ )

भगवान्ने स्वयं ही यह आश्वासन दे रक्खा है कि शुभ कर्म करनेवाला कभी अवोपतिको प्राप्त नहीं होता। 'हे पार्थ ! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। प्रिय अर्जुन ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें



नाश होता है और न परलोकमें ही (६।४०)।<sup>१</sup> इसके विपरीत अशुभ या पाप-कर्म करनेवाला अपने कर्मोंके दुष्परिणामोंसे बच नहीं सकता। जैसे हजार गौओंमें भी बछड़ा ठीक अपनी माँको ढूँढ़ लेता है वैसे ही कृतकर्म अपने कर्ताको ढूँढ़ लेता है और उपयुक्त समयपर उसका फल देता है। मनुष्य पापकर्म हँसते हुए करता है; किंतु रोते हुए उसका फल भोगना पड़ता है—

हसन्निः क्रियते कर्म रुदन्निः परिपच्यते ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इसलिये मनुष्यको अधर्म और पापके भावी दुष्परिणामोंको ध्यानमें रखकर शास्त्रविहित धर्माचरण ही करना चाहिये। योगवासिष्ठकार कहते हैं—

पापस्य हि अयाद्धोको राम धर्मे प्रवर्तते ॥

अपना सच्चा कल्याण चाहनेवालेके लिये उचित है कि वह भौतिक पदार्थोंकी क्षणभङ्गुरता, परलोक, पुनर्जन्म तथा आत्मज्ञानद्वारा मोक्षप्राप्तिकी ओर ध्यान देकर ही सारे कर्म करे। ध्यान रहे, प्रकृतिमाता सबको गिरते-पड़ते विकासकी ओर लिये चली जा रही है। वह मनुष्यको तबतक चैन न लेने देगी, जबतक कि वह अपने आत्मसाक्षात्काररूपी मंजिल-मुकामतक न पहुँच जाय। सार-सर्वस्व है।

नदी अन्ततोगत्वा समुद्रमें मिलकर ही विश्रान्ति पा सकती है। विकासकी रेखा सीधी न होकर टेढ़ी-मेढ़ी होती है; किंतु एक-न-एक दिन सबका उद्धार अवश्यम्भावी है। विषयजन्य सुख-दुःख पर्यवसायी होता है। दुःखके कारण मनुष्यमें विचार-जाग्रति होती है; विचार-जाग्रतिके कारण विषयोंमें दोषदर्शन होने लगता है। विषय-दोष-दर्शनसे वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्यसे मनुष्य परमार्थ-पथपर अग्रसर होता है। किसी भी निमित्तसे परमार्थ-पथपर अग्रसर होनेपर एक-न-एक दिन ब्रह्मज्ञानद्वारा परम पुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है; क्योंकि यही उसका वास्तविक स्वरूप है। अज्ञानकालीन मरणधर्मा मनुष्य ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञानके प्रभावसे नरका नारायण हो जाता है और स्वयं जीवन्मुक्त होकर औरोंको भी अपनी कृपाद्वारा नरसे नारायण बनाता है। प्रारम्भकर्मोंकी समाप्तिके साथ ही यह जीवन्मुक्त महाभाग विदेहमुक्त हो जाता है। उसके प्राणोंका उल्लमण नहीं होता। वे अपने मूलकारण परब्रह्म सत्तामें एकीभावसे लीन हो जाते हैं। उसके नरदेहका पाना सार्थक हो जाता है। यही भारतकी ब्रह्मविद्याका सार-सर्वस्व है।

## श्रुतिका सदुपदेश

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। × × × × सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भृत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। × × × × अन्नया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। द्विया देयम्। भिया देयम्। संधिदा देयम्। (तैत्तिरीय उपनिषद्)

‘तुम सत्य बोलो, धर्मका आचरण करो, स्वाध्यायसे कभी न चूको; × × × × तुमको सत्यसे कभी नहीं ढिगना चाहिये; धर्मसे नहीं ढिगना चाहिये; शुभ कर्मोंसे कभी नहीं चूकना चाहिये; उन्नतिके साधनोंसे कभी नहीं चूकना चाहिये; वेदोंके पढ़ने और पढ़ानेमें कभी भूल नहीं करनी चाहिये; देवकार्यसे और पितृकार्यसे कभी नहीं चूकना चाहिये।

‘तुम मातामें देव (ईश्वर) बुद्धि करनेवाले बनो; पिताको देवरूप समझनेवाले होओ; आचार्यको देवरूप समझनेवाले बनो; अतिथिको देवतुल्य समझनेवाले होओ; जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हींका तुम्हें सेवन करना चाहिये। दूसरे (दोषयुक्त) कर्मोंका कभी आचरण नहीं करना चाहिये। हमारे आचरणोंमेंसे भी जो-जो अच्छे आचरण हैं, उनका ही तुमको सेवन करना चाहिये, दूसरोंका कभी नहीं। श्रद्धापूर्वक देना चाहिये; अश्रद्धासे नहीं देना चाहिये; आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये। लजासे देना चाहिये; भयसे भी देना चाहिये; विवेकपूर्वक देना चाहिये।’



## कौन कर्मबन्धनसे मुक्त होते तथा स्वर्गको जाते हैं

जो मनुष्य सब प्रकारके बाहरी बनावों—चिह्नोंसे रहित, सत्य-धर्मके परायण तथा शान्त हैं; जिनके सभी संशय नष्ट हो गये हैं, वे अधर्म या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं, वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राणि-संहारसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अप्रियको समान समझनेवाले—तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंसे नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण वर्तावका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो परस्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा वर्ताव करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते; ऋतुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषयसुखोंके उपभोगमें आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंकी ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रखा करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंको सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये, जो वासनाद्वारा निर्मित न हो, जिसमें किसीका भी अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्या, शील, शौच और दयाभावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त बात नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका अथवा धर्मके लिये या स्वेच्छासे ही कभी असत्यभाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वागतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर, कड़वी तथा निष्ठुर बात मुँहसे नहीं निकालते, चुगली नहीं

खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके प्रति सम एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शठोंसे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर विनम्र वाणी मुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह वाणीद्वारा पाला जानेवाला धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

निर्जन वनमें रखे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकान्तमें पाकर मनके द्वारा भी कामवश उन्हें नहीं ग्रहण करते, जो शत्रु और मित्रको सदा एकचित्तसे अपनाने, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्यप्रतिष्ठ होते और अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं; जिनसे दूसरे जीवोंको कभी कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियावान्, क्षमावान्, सुदृढ़, प्रेमी, धर्माधर्मके ज्ञाता और शुभाशुभ कर्मोंके फलसंग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पापियोंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी एवं गौओंकी सेवामें संलग्न रहते और गुणजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत-सम्मान करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं।

जो शुभ कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे सदा दूर रहता है; जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न मारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है; जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। यह बड़ी आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यात्मा मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है।



जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुखी और आतुर आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है; जो यशमण्डप, धर्मशाला, पौंसला तथा पुष्करिणी बनवाता है; मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करता है; आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतीकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा ही शान्तचित्तसे दान करता है; ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। जो दानशील महाभाग प्राणी हैं, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रिय बतलाया है।

जो न दम्भी है न मानी है; जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकहितैषी, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, क्रोधस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत्

सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पुरुषोंको मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अग्रभाग अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है।

जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है; सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है; पिताके समान निर्वैर होता है; दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न मारता ही है; जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं; जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है; रस्ती, डंडा, डेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता; शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है—ऐसे शील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्यक्षयके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें बलेशरहित एवं निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशील होता है। वह सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है।

जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब सुखी तथा बुद्धिमान् होते हैं।

( ब्रह्मपुराणके भावारपर )

## प्रेमसुधाका भंडार खोल दो

प्रकृति जगत्के भोग सभी हैं अशुचि, अपूर्ण, अनित्य, असार।  
दुःखयानि—सब भाँति शान्ति-सुखहर, अघ-आकर, दोषागार॥  
इनमें सुखकी आस्था-आकाङ्क्षा-आशा करना बेकार।  
किंतु इन्हींके मोहजालमें फँसा कराह रहा संसार॥  
जबतक नहीं हटेगा पूरा मोहजालका विष-विस्तार।  
बढ़ती नित्य रहेगी ज्वाला, मचा रहेगा हाहाकार॥  
प्रभुकी प्रेम-सुधा ही कर सकती, इस ज्वालासे उद्धार।  
प्रेम-भास्करके उगते ही हो जाता तमका संहार॥  
अतः खोल दो तुरत प्रेमकी सरस सुधाका उर-भण्डार।  
पल-पल उसे बढ़ाओ—होगा दिव्य भागवत-सुख साकार॥



## सम्मान्य काका कालेलकरजीका स्नेहपूर्ण पत्र

प्रिय सम्पादकजी 'कन्याण'।

परबोक और पुनर्जन्माद्द निकालनेका आपने सोचा, जिसके लिये आपका अभिनन्दन करना चाहिये। लेकिन दो-सौ-ढाई सौ विषयोंकी सूची देखकर मैं तो घबड़ा गया।

मैं स्वयं पूर्वजन्म और पुनर्जन्म याने जन्मपरम्परा मानता हूँ। कर्म और कर्मफलके सिद्धान्तपर मेरी असीम भद्धा है। 'कर्मके सिद्धान्तको बनाकर भगवान् सो गये हैं' सो भी नहीं। इसलिये तमाम व्यक्तियाँ पूर्वकर्मानुसार कर्म तो करती ही हैं। उपरान्त अपने नव-संकल्पसे प्रेरित होकर भी कर्म करते हैं।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस तरह स्वयं भगवान् का आदि और अन्त हो नहीं सकता, उसी तरह इस विश्वाल्, सनातन सृष्टिका न सर्वप्रथम आदि हो सकता है, न उसका कभी आत्यन्तिक अभाव हो सकता है।

जन्मान्तरका ज्ञान सर्वज्ञ भगवान्को होना ही चाहिये; क्योंकि 'सर्वज्ञ'की व्याख्या ही ऐसी है। लेकिन एक भगवान्को छोड़कर दूसरा कोई भी ऋषि, मुनि, संत, महात्मा, योगी, नबी, पयगंबर या अवतारी पुरुष इस तरहके सर्वज्ञ अथवा त्रिकालज्ञ है, ऐसा मानना मेरे लिये कठिन है। हम सब और वे सब, गीताके अर्जुनके ही प्रतिनिधि हैं। ऐतिहासिक कृष्ण भी उसीमें आ गये।

आपने जो विषय-सूची दी है इसमेंसे बहुतसे विषयों-के बारेमें बचपनसे कमीबेश पढ़ता आया हूँ। बहुत-सी बातें उपयोगी कल्पनाएँ हैं। लेकिन आखरी हैं तो कल्पनाएँ ही। और पुराणोंमें इहलोक-परलोक, विष्णुलोक, गोलोक आदि जो अनेक प्रकारके लोक बताये हैं और उनके इतिहास, भूगोल दिये हैं, इनमेंसे अधिकतर तो केवल ढकोसले ही हैं।

सनातनी लोग जितने ग्रन्थोंको 'धर्मग्रन्थ' मानते हैं वे सब-के-सब अनुभवकी सच बातें लिखते हैं, ऐसा कोई मान नहीं सकता। बहुत-सी बातें गाँववालोंकी लोककथाओंसे अधिक विश्वसनीय तो हैं नहीं, किंतु आदरणीय भी नहीं हैं। अमुक स्थानपर मरनेसे अथवा अमुक जलाशयमें स्नान करनेसे अथवा फलानी मूर्तिका दर्शन करनेसे मोक्ष मिलता

है, पुनर्जन्म नहीं होता। इत्यादि वर्णन कभी-कभी इतने सस्ते हैं कि पढ़कर चिढ़ आती है।

भोले सनातनी लोग ऐसी बातोंपर अविश्वास भी नहीं कर सकते, और विश्वास करके चलते भी नहीं। लोगोंके आचरणसे ही सिद्ध होता है कि उनके 'विश्वास' पर उनका सचमुच और दृढ़ विश्वास नहीं होता।

आप जो जानकारी इकट्ठा करेंगे और असंख्य मान्य-ताओंका समर्थन भी इकट्ठा करेंगे, इससे संशोधकोंकी सहाय्यत होगी सही। किंतु मुझे डर है कि न्यादातर कचरे-से भरे हुए समुद्रमेंसे आप करीब-करीब इतना ही बड़ा कचरेवाला समुद्र तैयार करेंगे, जिसमें संशोधनके लिये डुबकी लगाना भी आसान नहीं होगा।

मैं देखता हूँ कि ऐसा किये बिना आपके लिये चारा ही नहीं था, इसीलिये आपका अभिनन्दन करता हूँ। जो कुछ भी मसाला आप इकट्ठा करेंगे, उसमेंसे विश्वासपात्र बातें कौन-सी, संशयास्पद कौन-सी और विश्वासपात्र बिल्कुल नहीं, ऐसी कौन-सी इसका वर्गीकरण अगर आप करवा सकें तो धर्मकी और जनताकी सेवा होगी।

सनातन हिंदूधर्मका विरोध करके अपने-अपने धर्मका प्रचार करनेवाले मतलबी लोगोंके लिये भी आपका संग्रह बहुत मदद कर सकेगा। वह कह सकेंगे कि इतनी-इतनी बे-बुनियाद, बेवकूफीभरी और धर्म-विरोधी बातें भारतके करोड़ों सनातनियोंकी विश्वासपात्र बन बैठी हैं। जो हो आपका अभिनन्दन जरूर करता हूँ।

मेरा यह पत्र आपके विशेषाङ्कमें आप प्रकाशित करें तो मुझे एतराज नहीं है। मैं तो आपको धन्यवाद ही दूँगा। चंद पाठक शायद गालियाँ देंगे तो हर्जा नहीं। किसी भी कारण उन्होंने यह पत्र पढ़ा तो उसकी बातें और उसकी दृष्टि लोगोंके मनमें उगेगी सही।

आपने भी जन्मपरम्पराके सिद्धान्तको लेकर समाजमें कितनी ठगी चली है, इसका व्यौरा भी तो माँगा ही है।

आपका—काका कालेलकर

उत्तरमें नम्र निवेदन

परम सम्मान्य आचार्य काका कालेलकर महोदयका



उपयुक्त पत्र उनके इच्छानुसार यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। काकाजी गाँधीवादी विचारधाराके प्रमुख चिन्तक, दुराग्रहशून्य, विलक्षण प्रतिभाशाली, भारतके एक प्रबुद्ध मनीषी हैं। 'कल्याण' पर उनका स्नेह सदावे है।

इन पंक्तियोंके लेखकपर तो काकाजीकी बहुत पुरातन प्रीति है। पूज्य बापू जब साधरमती आश्रममें थे, तभीसे इसको काकाजीका स्नेह मिलता रहा है। अतः उनका यह 'अभिनन्दन' उनके स्नेहपूर्ण वात्सल्यका ही प्रतीक है।

मैं जानता हूँ, पूज्य काकाजीका जन्मपरम्परामें विश्वास है और कर्म तथा कर्मफलके सिद्धान्तपर तथा सर्वश्रमभगवान्पर उनकी असीम श्रद्धा है। अतएव मुझे कुछ कहना तो नहीं चाहिये; पर मनकी दो-चार बातें नम्रतापूर्वक काकाजीकी सेवामें निवेदन करनेकी धृष्टता की जा रही है। वे इससे प्रसन्न ही होंगे।

जो भाव इन्द्रियगम्य नहीं है, वहाँ तर्क कभी सफल नहीं होता। मनुष्यकी बुद्धिकी भी एक सीमा होती है। उस सीमासे परे कुछ है ही नहीं; जितना उसकी बुद्धि स्वीकार करती है, उतना ही निर्भ्रान्त सत्य है; ऐसा कहना बड़े साहसका काम है। ऐसी बहुत-सी बातें होती हैं, जहाँ बुद्धि काम नहीं करती, पर जो सत्य होती हैं। वातावरण, महात्मा या दुरात्माओंके रहने, सत्कर्म और कुकर्म बननेके स्थान आदिका प्रभाव तो बुद्धिगम्य तथा विज्ञानसम्मत भी है; पर इससे भी परे तर्कातीत तत्त्व हैं, जिनपर आस्था रखनी पड़ती है। आस्थाके साथ तर्कका सामञ्जस्य नहीं है; अतएव सभी वर्णनोंको ढकोसले अथवा कल्पना ही नहीं कहा जा सकता। अतीन्द्रिय-तथ्यका वर्णन लाक्षणिक हो सकता है, इतना ही कहा जा सकता है। लाक्षणिक वर्णन अनेक रूपोंमें हो सकता है और ऐसे एक वर्णनके अर्थ भी बहुत-से किये जा सकते हैं। किंतु वर्णनमात्रको काल्पनिक मानना कहाँतक उचित है—यह विचारणीय है। पूज्य बापूजीकी रामनाममें अलौकिक श्रद्धा थी, पर वे कहते थे कि यह श्रद्धाका—आस्थाका विषय है, बुद्धिवादसे परे है।

जहाँतक हमलोगोंकी बात है, भले ही किन्हींकी दृष्टिमें यह हमारा अज्ञान ही हो—हम 'ऐतिहासिक श्रीकृष्ण' और 'परमात्मा श्रीकृष्ण'को अभिन्न मानते हैं। परमधामस्वरूप वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक आदि सब तथ्य हैं—ऐसी हमारी आस्था है। सनातनधर्मके मान्य धर्मग्रन्थोंकी कोई

बात हमारी समझमें नहीं आती, तो हम उसे अपने अन्तःकरणकी अशुद्धि तथा बुद्धिकी दुर्बलता मानते हैं; उसे अविश्वसनीय या असत्य नहीं मानते। यों शास्त्रोंमें प्रक्षेप भी हुआ है, यह सत्य है; पर वह दूसरी बात है। इसका सत्य तथ्यसे सम्बन्ध नहीं। शास्त्रकी भाषा बहुत स्वर्णपर 'समाधि-भाषा' है, अतः सर्वत्र लोकभाषा न होनेसे वह दुर्बोध है। पूज्य काकाजी लिखते हैं कि 'ज्यादातर कचरेसे भरे हुए समुद्रमेंसे—आप करीब-करीब इतना ही बड़ा कचरेवाला समुद्र तैयार करेंगे, जिसमें संशोधनके किये हुबकी लगाना भी आसान नहीं होगा।' मैं तो इसे काकाजीका विनोद ही समझता हूँ। पर यह भी सम्भव है कि शायद कुछ लोग इसे बहुमूल्य रत्नोंके अपार अम्बारमेंसे चुनकर बनाया हुआ—हमारी अल्पज्ञताके कारण अल्प-मूल्य—रत्नोंका हार भी देख पायेंगे और यह भी सम्भव है, उन्हें इसमें उनके परम लाभके उपयुक्त कोई रत्न मिल भी जाय।

यों सिद्धान्तके नामपर प्रायः सर्वत्र ही ठगी भी चलती है। ढकोसले, कल्पना तथा अतिरंजित वर्णन भी होते हैं और उनसे यथासाध्य सबको बचना-बचाना भी चाहिये। इस दिशामें लोगोंको सचेत करनेके लिये काकाजीका यह पत्र निश्चय ही उपयोगी होगा। काकाजीने बड़े सद्भावसे पत्र लिखा है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

इस पत्रमें सम्मान्य काकाजीने एक बात बहुत महत्त्वकी कही है और वह हम सबके लिये धारण करने योग्य है—

'भोले सनातनी लोग ऐसी बातोंपर अविश्वास भी नहीं करते और विश्वास करके चलते भी नहीं।'

देशका, समाजका और मनुष्यका यही दुर्भाग्य है पूज्य बापूके द्वारा निर्दिष्ट सत्य, अहिंसा, सदाचार, प्रार्थना, रामधुन आदिपर कोई भला अविश्वास भी कैसे कर सकता है? और उसपर विश्वास करके उनके अनुयायी (कहलाने-वाले, जो राष्ट्रके कर्णधार हैं) भी चलते तो आज देशमें भ्रष्टाचार, अनाचार और घर-घर कलह-कड़ुवा क्या नाम भी सुनायी पड़ता!

'अपने विश्वास'पर सचमुच हमारा दृढ़ विश्वास नहीं है।' यही हमारी—समाजके अधिकांश लोगोंकी दुर्बलता



है। अपनी इस दुर्बलताको त्यागकर हम अपने 'विश्वास'पर सचमुच दृढ़ बनें—सर्वसमर्थ दयामय भगवान्से यही प्रार्थना है। अस्तु।

इस अङ्कका सनातन हिंदूधर्मके विरोधी, आलोचना-आक्षेपके व्यसनी मतलबी लोग दुरुपयोग कर सकते हैं। यह सर्वथा सत्य है। पर ऐसा तो प्रत्येक प्रयत्न और पदार्थका ही दुरुपयोग करनेवाले स्वभाववश करते ही हैं, इस भयसे सत्यप्रयत्नका त्याग नहीं किया जा सकता।

फिर, सभी आरम्भ कुछ-न-कुछ दोषयुक्त भी होते ही हैं—सर्वारम्भा हि दोषेण भूमेनाग्निरिवावृताः। (गीता)

इसपर हमारा यह प्रयत्न तो अपनी अल्पज्ञता, अल्पबुद्धि-के कारण निश्चय ही त्रुटिपूर्ण है ही। इसमें कहीं कोई अच्छापन है तो उसका सारा भेय अनुभवी पुरुषों तथा विचारशील विद्वानोंको है, जिन्होंने अपने विचार प्रकट करनेकी कृपा की है। शेष दोष-त्रुटियाँ तो सारी हमारी हैं।

आचार्यजीसे सविनय निवेदन है कि वे मेरे इन धृष्टतापूर्ण शब्दोंको स्नेहसे निरीक्षण करें, वात्सल्यपूर्ण हृदयसे सदा शुभ चेतावनी देते रहें और शुभाशीर्वाद दें, जिससे जीवनके शेष श्वास भगवच्चिन्तनमें ही बीतें।

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार

## नरकसे बचना हो तो—

कभी न करो किसी भी प्राणीकी हिंसा तन मनसे भूल !  
बोलो कभी न व्यर्थ-झूठ-सुगली-छल-परुष-वचन उर-शूल ॥  
तन-मन-वाणीसे न चुराओ कभी किसीकी धन-सम्पत्ति ।  
नीच स्वार्थ-साधन-हित, ढालो नहीं किसीपर दुःख-विपत्ति ॥  
पर-नारी पर-पुरुष त्यागकर सेवन करो शुद्ध गृह-धर्म ।  
निज-पर धर्मनाशके साधक, करो कभी भी नहीं कुकर्म ॥  
अंडे-मांस-मद्यका खाना-पीना कर दो बिल्कुल त्याग ।  
तामस वस्तु नशैली जूँटनसे रक्खो परहेज-विराग ॥  
माता-पिता-देवता-गुरुका गुरुजनका न करो अपमान ।  
सुख पहुँचाओ सबको संतत, मनमें रख श्रद्धा-सम्मान ॥  
बुरे संगका, बुरे व्यसनका कभी न रक्खो मनमें मोह ।  
क्रोध-लोभको छोड़, करो सब जीवोंपर स्वाभाविक छोह ॥  
भोग-वासना त्याग करो श्रीप्रभुचरणोंमें दृढ़ अनुराग ।  
बचे रहोगे नरकोंसे तुम, भक्त बनोगे शुचि बड़भाग ॥

## दिव्यलोक—स्वर्गमें पहुँचना हो तो—

दया करो तुम जीव मात्रपर, सबको करो स्नेहका दान ।  
बोलो—सत्य-मनुर-हितकर-मित, जपो नाम हरिका निर्मान ॥  
प्रभुकी सब सम्पत्ति मानकर, करो नित्य पर-हित उपयोग ।  
दुःख हरो दुखियोंके, दे निज सुख, रख प्रभुमें मन-संयोग ॥  
पालन करो धर्म-वर्णाश्रम, रखकर मनमें शुचि उत्साह ।  
धर्म बचाओ, शान्ति दानकर सबका हरण करो उर-दाह ॥  
सात्विक भोजन करो अहिंसक, छोड़ो सभी जीभके स्वाद ।  
लो भगवत्प्रसाद प्रतिदिन तुम, मिट जायें सब शोक-विषाद ॥  
श्रद्धायुक्त सरस सेवासे सुख पहुँचाओ, दो सम्मान ।  
गुरुजन-मात-पिता-गुरु-सुरको अपने मनमें ईश्वर जान ॥  
नित स्वाध्याय, नित्य हरि-पूजन, करो नित्य सात्विक सत्संग ।  
क्षमा, त्याग, गो-आतुर-सेवा—सहज बना लो अपने अंग ॥  
प्रभु-चरणोंमें रक्खो निरन्तर तुम अनन्य ममता-अनुराग ।  
पहुँचोगे तुम दिव्य स्वर्गमें बनकर हरि-सेवक बड़भाग ॥



## सम्पादकका नम्र निवेदन

भगवान्, धर्म, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफलभोग आदिपर उत्तरोत्तर विश्वास कम होता रहनेके कारण आज मानव-जीवनमें उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचारिता, भोगपरायणता, सत्कर्मोंमें उपेक्षा, दुष्कर्मोंमें प्रीति आदि महान् दोष आ गये हैं और क्रमशः उनकी वृद्धि हो रही है। यही कारण है—जगतमें इतनी वैज्ञानिक उन्नति होनेपर भी दुःख-क्लेश, मानस-अशान्ति उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। इस पतनके प्रवाहको वस्तुतः रोकना तो भगवान्‌के ही हाथ है। उन्हींकी कृपासे जब मनुष्यकी बुद्धिका ठीक निर्णय होगा और जब वह असत्-भोगोंके भविष्य-भीषण किंतु आपातरमणीय क्षेत्रसे हटकर भगवान्‌की सेवाके पथपर आरूढ़ होगा, तभी वह धर्मक्षेत्रको अपना नित्य निवास-स्थान बना सकेगा। तथापि भगवान्‌के तथा शास्त्रोंके आदेशानुसार प्रयत्न करना आवश्यक है और धर्म तथा कर्तव्य भी है। इसी दृष्टिसे 'कल्याण'का यह 'परलोक और पुनर्जन्माहु' प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें आये हुए विषयोंका ठीक-ठीक अध्ययन किया जानेपर, परलोक तथा पुनर्जन्ममें एवं कर्मफलभोगके सिद्धान्तमें विश्वास बढ़ना अनिवार्य है और उस विश्वाससे पतनके प्रवाहमें किसी अंशमें कुछ रुकावट आना भी सम्भव है। यद्यपि पतनके प्रवाहका वेग इतना प्रबल और भयानक है कि छोटी-मोटी बाधासे उसका रुकना सम्भव नहीं है, तथापि यदि कुछ लोग भी इससे बचेंगे तो उनको तो लाभ होगा ही, फिर, उनके संसर्गसे दूसरोंको भी परम्परागत लाभ होना सम्भव है।

इस अङ्कमें ऐसे कई प्रसंग आये हैं, जिनपर आस्था-रहित बुद्धिवादी पुरुषोंको संदेह हो सकता है। यह भी सम्भव है, हमारे प्रमादसे उनमें कुछ श्रांत कल्पनाकी आ गयी भी हो। परंतु सभी बातें सबकी समझमें आ जायँ, यह सम्भव नहीं है; क्योंकि सभी विषयोंसे सब लोग समान परिचित नहीं होते। फिर, बहुतसे ऐसे अतीन्द्रिय विषय हैं, जिनके अनुभवी जानकार इस समय नहीं हैं; पर वे सत्य हैं। सत्य किसीकी स्वीकृतिकी अपेक्षा नहीं करता; क्योंकि वह 'है'।

रामायणमें 'पुष्पकविमान'का वर्णन आता है, जो स्वयंचालित था, सर्वत्र जा सकता था और जिसमें सहस्रों लोग बैठ सकते थे। श्रीमद्भागवतमें कर्दमऋषिके स्वयंचालित विशाल विमानके लिये कहा गया है कि 'वह इच्छानुसार सब लोकोंमें जा सकता है; सब प्रकारके भोग-

सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न, महान् रत्नोंसे विभूषित, हीरे-पन्ने-नीलम-माणिक्य-मणि आदिसे निर्मित; बहुतसे कमरों तथा प्रत्येक कमरेमें पलंग, शय्या, पंखे और आसनादिसे तथा सुविधानुसार खेलनेके स्थान, शयनगृह, आँगन और चौक आदिसे युक्त अत्यन्त सुन्दर तथा समृद्धियुक्त है। उसमें सभी ऋतुओंमें रहनेकी सुविधा है इत्यादि।' तथा इसी प्रकार पुराणों आदि ग्रन्थोंमें आये हुए सर्वत्रगामी विमानोंके अन्यान्य वर्णन मिलते हैं, साथ ही विविध प्रकारके विमानोंके तथा विमान-निर्माणकी प्रविधियोंके उल्लेख भी पाये जाते हैं, जिनको पहले लोग काल्पनिक बताते थे, पर अब जब कि विमान-राकेट चलने लगे, तब वह बात नहीं रही।

यही नहीं, प्राचीन ग्रन्थोंमें पृथ्वीके मनुष्योंके सदेह विभिन्न लोकोंमें जाने-आनेके तथा दशरथ, दुष्यन्त, अर्जुन आदिके स्वर्ग जाकर देवताओंकी सहायता करनेके प्रसङ्ग भी मिलते हैं, जिनको बुद्धिवादी कहलानेवाले लोग निरी कपोलकल्पना मानते थे, यद्यपि अब उनकी मान्यतामें कुछ परिवर्तन हो रहा है।

मान लीजिये, कभी कोई ऐसा समय आ जाय, जिसमें वर्तमान विज्ञान तथा विज्ञानवेत्ता सर्वथा न रहें, केवल ग्रन्थोंमें वेतारके तार, रेडियो, टेलीविजन आदिके साथ यह वर्णन रहे कि 'पृथ्वीसे लाखों मील दूर आकाशमें स्वचालित विमान उड़ते थे और वहाँसे वे चित्र तथा संवाद आदि प्रेषित करते थे और ऐसे बहुत लंबे-चौड़े-ऊँचे, सैकड़ों मन वजनदार, सब सुविधाओंसे युक्त विमानोंपर इस पृथ्वीके जीवित मनुष्य, प्रति घंटे बीस-पच्चीस हजार मीलकी रफ्तारसे उड़ते हुए पाँच-सात दिनोंमें ही पूर्वनिश्चित क्रमानुसार पृथ्वी तथा चन्द्रमाकी दसों-बीसों परिक्रमा करके, लाखों मीलकी यात्रा पूर्णकर निश्चित समयपर सकुशल पृथ्वीपर लौट आते थे; लाखों मील दूरसे चित्र तथा संवाद भेजते थे और उन लोकोंकी जानकारी प्राप्त करके वहाँ उतरते थे।' तो उस समयके इस विज्ञानसे सर्वथा अपरिचित लोग यही कहेंगे कि 'यह सब कल्पनामात्र है; ढकोसला है। भला ऐसा भी कभी हो सकता है?' पर जैसे उनके इन विचारों तथा उद्गारोंसे सत्य नहीं मिटता, इसी प्रकार परलोक, प्रेत-पितृलोक, स्वर्ग-नरकादि विविध योनियोंमें तथा लोकोंमें कर्मफलभोग, भगवत्प्राप्ति, परमधाम-वैकुण्ठ-गोलोक-साकेतादिकी बातें प्रत्यक्ष न होनेसे तथा उनका प्रत्यक्ष अनुभव न होनेसे उनके सम्बन्धमें स्वाभाविक ही ऐसा कहा जा सकता है कि 'यह सब मिथ्या कल्पनामात्र है।' पर वास्तवमें सत्य तो सत्य ही रहेगा। अतएव इस अङ्कमें



आये हुए ऐसे प्रसंग किन्हीं तार्किक पुरुषोंकी दृष्टिमें कल्पनाप्रसूत और किन्हीं आस्थावान् सज्जनोंकी दृष्टिमें सर्वथा सत्य प्रतीत होंगे। इस विषयमें सबको एक-सी भ्रष्टा और अनुभूति करानेमें हम असमर्थ हैं और अपनी इस असमर्थताके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस अङ्कके विभिन्न प्रसङ्गोंमें विभिन्न प्रकारसे सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, सरलता, सेवा, संयम, नियम, ब्रह्मचर्य, त्याग, अस्तेय, अपरिग्रह, सदाचार, सार्विक दैन्य, विनय, निःस्वार्थभाव, निष्कामभाव, विवेक, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति आदि विश्वमानवके चरित्रको उन्नत करनेवाले दैवी-सम्पदाके गुणोंके ग्रहण तथा सेवन करनेके लिये; तथा इसके विपरीत असत्य, हिंसा, क्रूरता, भोग, छल-कपट, मिथ्या-स्वामित्व, असंयम, यथेच्छाचार, ब्रह्मचर्यके खण्डन, विषयासक्ति, चोरी, परिग्रह, दुराचार, अभिमान-मद, स्वार्थ, सकामभाव, अविवेक, आसक्ति, अज्ञान, भक्तिशून्यता आदि विश्वमानव-चरित्रका पतन करानेवाले आधुरी-सम्पदाके दोषोंके सर्वथा त्यागकी बात ही कही गयी है और मानवमात्रको परम विशुद्ध उच्च-चरित्र होकर मनुष्य-जीवनके चरम तथा परम एकमात्र लक्ष्य 'भगवत्प्राप्ति'के साधनमें लगनेके लिये ही येन-केन प्रकारेण प्रोत्साहन दिया गया है, जो सभी प्रकारसे परम शान्ति तथा परम सुखका मूल है। अतएव सम्मान्य पाठक-पाठिकाओंसे हमारा यही विनम्र निवेदन है कि वे इसी दृष्टिसे इस अङ्कका अध्ययन करें और हमारी भूल-बुद्धि-प्रमाद तथा अपराधोंको क्षमा करते हुए पतनकारी पापकर्मोंसे बचे रहकर, मानव-चरित्रको उच्च बनानेवाली जो वस्तु समझमें आवे, उसे ग्रहणकर अपने जीवनमें उतारें और जीवनके परम लक्ष्य परमात्माकी ओर अग्रसर हों।

इस अङ्कमें 'परलोक तथा पुनर्जन्म' सम्बन्धी बहुत-से आवश्यक विषयोंपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया गया है। कितनी क्या सफलता हुई है, यह तो इसके पाठकगण ही निश्चय कर सकेंगे। कई आवश्यक विषय हमारे अज्ञान अथवा अन्यान्य कारणोंसे छूट भी गये हैं। इस अङ्कके निर्माणमें हमें श्रद्धेय पद्मविभूषण महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्० से बड़ी सहायता मिली है। उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। उनके अतिरिक्त, हमारे कई पुराने तथा प्रायः सभी नये साथी-सहयोगी सज्जनोंसे

बहुत सहायता मिली है। हमारे ये पुराने-नये साथी सदा ही यथासाध्य सहयोग-सहायता देते रहे हैं और ये सभी इतने अपने हैं कि इनके नाम प्रकाशितकर प्रशंसा करना अपनी ही प्रशंसा करना है और इन्हें संकोचमें डालना है। अतएव किसीका नाम नहीं दिया जा रहा है।

सबसे बड़ी सहायता की है—लेखक महानुभावोंने, जिनके सक्रिय सहयोगसे ही इस अङ्कका निर्माण हो सका है। हम उन सभी लेखकोंके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं। पर साथ ही हम लेखक महानुभावोंके सामने बड़े दोषी तथा अपराधीके रूपमें भी उपस्थित हैं। पता नहीं, लेखकोंकी कितनी कृपा तथा प्रीति है—'कल्याण'के प्रति, जो बिना ही माँगे महान् परिश्रम करके महानुभावगण लेख लिखकर भेजते हैं। हम हृदयसे उन सभीका सम्मान करते हैं। पर सब लेखकोंको प्रकाशित करना हमारे लिये सर्वथा असम्भव है। अपनी जानमें हमने प्रयत्न किया है, पर सैकड़ों लेख बिना छपे रह गये हैं। उनमें ऐसे लेख भी हैं जो बड़े उपयोगी हैं और जिनके लेखकोंके प्रति हमारी हार्दिक भ्रष्टा है। बहुतसे ऐसे लेख भी हैं, जो केवल लिखनेके लिये ही लिखे गये हैं। कई ऐसे भी हैं, जिनका लेखके शीर्षकों तथा विषयोंसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है; इधर हिंदी-संसारमें लिखनेके उत्साही सज्जन बहुत बढ़ गये हैं। इसीका यह परिणाम है तथापि प्रायः प्रत्येक लेखक ही अपने लेखको प्रकाशित देखना चाहते हैं और प्रकाशित न होनेपर उन्हें दुःख तथा रोष भी स्वाभाविक ही होता है। यह भी सम्भव है कि उनमेंसे कई उत्तम लेखोंकी अपेक्षा निम्न कोटिके लेख छप गये हों और उनके उच्चकोटिके रह गये हों। पर हम इस विषयमें इतने असहाय हैं कि हाथ जोड़कर क्षमा माँगनेके अतिरिक्त और कुछ भी करनेमें असमर्थ हैं। विषय प्रायः एक-से ही हैं। पुनरावृत्ति स्वाभाविक ही बहुत हुई है, होती है। जो लेख छपे हैं, उनमें भी पुनरावृत्ति बहुत है। यद्यपि सम्पादन करनेमें ऐसे बहुतसे वाक्य लेखोंसे निकाल दिये गये हैं और इस अपराधके लिये भी हम लेखकोंसे करबद्ध क्षमायाचना करते हैं। जो लेख बचे हैं, उनमें भी प्रायः वही बातें हैं, जो छपे लेखोंमें आ चुकी हैं। अतएव उन सबका परिशिष्टाङ्कमें या अगले अङ्कमें प्रकाशित करना भी



सम्भव नहीं है। इस स्थितिमें हम पुनः-पुनः लेखक महानुभावोंके चरणोंमें प्रणाम करते हुए उनसे विनीत क्षमा-प्रार्थना करते हैं। हमारी परिस्थितिको समझकर वे महानुभाव क्षमा करें। हमसे सम्पादनके कार्यमें, लेखकोंमें यदि कहीं प्रमादवश अनुचित काट-छाँट हुई हो तो उसके लिये भी क्षमा करें।

‘कल्याण’में जीवित व्यक्तियोंके चित्र प्रकाशित करनेका नियम नहीं है। पर इस बार इस अङ्कमें विशेष प्रयोजनकी दृष्टिसे कुछ छायाचित्र, जिनमें अधिकांश छोटी उम्रके बच्चोंके हैं, प्रकाशित किये गये हैं, जिनका पूर्वजन्मकी घटनाओंके बतानेसे सम्बन्ध है। यह नियमभङ्ग नहीं है, विशेष कारणवश अपवादके रूपमें यह किया गया है। नियम वही है; अतएव कोई सज्जन जीवित व्यक्तियोंके चित्र प्रकाशित करनेके लिये कृपया आग्रह न करें।

इस अङ्कमें जितने और जैसे बहुरंगे तथा सादे चित्र देनेका विचार था, उतने और वैसे चित्र नहीं दिये जा सके,

यद्यपि जो दिये गये हैं; वे भी कम नहीं हैं। और कई तो बहुत सुन्दर भी हैं; परंतु हमारे चित्रकार श्रीभगवानदासके बीमार हो जानेके कारण योजनाके अनुरूप चित्र नहीं बन पाये। इसका हमें खेद है।

अङ्कके प्रकाशनमें भी अनिवार्य कारणवश देर हो गयी है, इसके लिये ग्राहक महोदय क्षमा करें।

इस अङ्कमें जो कुछ सामग्री दी गयी है, उसपर ध्यान देकर पढ़नेके लिये तथा अपने लाभकी सार चीजोंका ग्रहण करनेके लिये पाठकोंसे विनीत अनुरोध है। यह अङ्क विशेष प्रयोजनसे ही निकाला गया है। इसके सम्पादनकालमें जो भगवानकी स्मृति तथा उनकी कृपाके बार-बार दर्शन होते रहे हैं, यह हमारा परम सौभाग्य है। आशा है, पाठकगण इस अङ्कके अध्ययनसे पर्याप्त लाभ उठावेंगे।

निवेदक

हनुमानप्रसाद पोद्दार } सम्पादक  
चिम्पनलाल गोस्वामी }

## प्रभु ! अपनी वस्तु जानकर स्वीकार कर लो

मनमें चाह जगी थी प्रियतम ! हो प्रभुका महिमा-विस्तार ।  
सबके दुःख-दाह मिट जायें पा प्रभुके पदकमल उदार ॥१॥  
पता नहीं, क्यों जगी चाह यह ? क्यों बदला जीवनका 'ग' ?  
क्यों तुमने नित नये दिखाये, फिर निज विविध रूप-रस-रंग ? ॥२॥  
धमकी परम दिव्य बिजली-सी, बही सरस शुचि साधन-धार ।  
उमड़ी, बढ़ी, चली हो टेढ़ी, रंग बदलती बारंवार ॥३॥

क्यों तुमने छीना सब, क्यों फिर दिया अनोखा प्यार-दुलार ? ।  
क्यों विरोधिनी दी तुमने प्रक्याति निम्नगामिनि निस्सार ? ॥४॥  
यह तो निश्चित है तुम जो करते उससे होता कल्याण ।  
पर क्यों बारंवार करते परिवर्तन ? लीलामय ! भगवान् ! ॥५॥  
बचे-बुचे जीवनको कर लो, अब, बस, अपनेमें ही लीन ।  
निर्मल शान्त बना लो, रखो कभी न रंचक हीन-मलीन ॥६॥

पुनर्जन्म-परलोक तुम्हीं सब तुम्हीं एक सबके आधार ।

अपनी वस्तु जान कर लो, इस क्षुद्र अङ्कको प्रभु ! स्वीकार ॥ ७ ॥



## कल्याणके नियम

**उद्देश्य**—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

### नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सजन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ९ रुपये और भारतवर्षसे बाहरके लिये रु० १३.३५ (१५ शिलिंग) नियत है। सजिल्द विशेषाङ्कका भारतमें रु० १०.५० तथा विदेशके लिये सजिल्दका १७ शिलिंग (१५.१३ पैसे) है। 'कल्याण'के आजीवन ग्राहकका चंदा अजिल्द विशेषाङ्कका १२५ तथा सजिल्दका १५०) है।

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं; किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी ढरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये। महीने-दो-महीनोंके लिये पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रवन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक महीने-महीने ११ अङ्क मिला करेंगे। सबका मूल्य रु० ९.०० है। किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही वर्षका चंदा समाप्त समझना चाहिये; क्योंकि केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य ९ रुपये है।

(८) ५० पैसे एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ५० पैसे वाद दिये जा सकते हैं।

### आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण' की किसीको एजेंसी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये। बी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) प्रेस-विभाग तथा कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १ रु० से कमकी बी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी संख्या, रुपये भेजनेका उद्देश्य, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१६) प्रवन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक-"कल्याण", पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि सम्पादक-"कल्याण", पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता।

व्यवस्थापक—"कल्याण", पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)



## हित-साधन-द्वादशी

नरकसे बचने, स्वर्ग प्राप्त करने तथा मोक्ष या परमपद पानेके साधन

- १-पर-धन, पर-स्त्री या पर-पुरुष, पर-निन्दा, पर-अहितको सदा भयानक दुःखपरिणामी समझकर इनसे सर्वथा बचे रहो ।
- २-कभी कड़वे, रूखे, उद्वेग पैदा करनेवाले, मिथ्या, पर-सुख तथा पर-हितका नाश करनेवाले शब्दोंका उच्चारण मत करो, ऐसे काम मत करो और मनमें कभी ऐसे विचार भी मत आने दो ।
- ३-काम, क्रोध और लोभको नरकके द्वार तथा आसुरी योनि-प्राप्तिके कारण समझकर इनसे सदा सावधानीसे बचे रहो ।
- ४-माता, पिता, देवता, गुरुजनों आदिका कभी अपमान, अवहेलना न करके सदा विनम्र भावसे श्रद्धापूर्वक सत्कार-मान-पूजन करते रहो ।
- ५-मनमें अभिमान, मद, दम्भ, द्वेष, विषाद आदि दूषित भाव न रखकर सदा विशुद्ध भाव रखो, जीभसे सदा भगवान्‌का नाम लेते रहो, शरीरसे होनेवाले सब कामोंमें भगवत्सेवाका भाव रखो ।
- ६-नित्य-निरन्तर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक अपनी निष्ठाके अनुसार भगवान्‌के स्वरूप, तत्त्व, लीला, गुण तथा नामका स्मरण-चिन्तन करते रहो ।
- ७-अपने पास जो कुछ हो, उसे भगवान्‌की वस्तु समझकर, भगवत्स्वरूप प्राणियोंकी सेवामें यथायोग्य निरभिमान-निष्काम होकर समादरपूर्वक लगाते रहो । सबके हितमें ही अपना हित समझो ।
- ८-सत्य, सदाचार, संयम, सेवा, समता, संतोष, सर्वभूतहित, सद्‌व्यवहार तथा सात्त्विक त्यागका सदा सेवन करो ।
- ९-प्राणीमात्रमें भगवान् समझकर कभी किसीका अनादर न करो, किसीको दुःख मत दो तथा अहित न करो ।
- १०-सबको सदा सुख पहुँचाओ, सबका सदा हित करो ।
- ११-जीवनको क्षणभंगुर समझो और किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें आसक्ति-ममता मत रखो । केवल भगवान्‌में ही आसक्ति, ममता रखो ।
- १२-अपने प्रत्येक पवित्र कर्मके द्वारा सदा भगवान्‌की पूजा करते रहो ।



